शहीदों की टोली

परिवर्द्धित संस्करण

लेखक

श्री० प्रबोधचन्द्र मिश्र, वैद्य शास्त्री

श्री० हर्ष वर्द्धन शुक्ल

...ीयनार] १९४६ [मूल्य ३)

प्रकाशक—
श्री हर्ष वर्द्धन शुक्ल
मातृ भाषा मन्दिर
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—
जीवन सखा प्रेस,
प्रयाग।

भूमिका

क्रान्तिकारी आन्दोलन और क्रान्तिकारियों के इतिहास के सम्बन्ध में इस समय जनता में विशेष कर नवयुवक समाज में बड़ी उत्सुकता और लालसा है। क्रान्तिकारी आन्दोलन का युग किस समय से आरम्भ होता है यह कहना कठिन है और इसकी खोज करना भी ऐतिहासिक विषय है।

सन् १८५७ के गदर के बाद अंग्रेजी शासन का भारत पर सुदृढ़-शासन प्रारम्भ होता है। इस विप्लव के शान्त हो जाने पर भी, उस समय ऐसे लोगों का दल वर्तमान था जो परास्त होने पर भी अंग्रेजी राज्य की सत्ता को मानने के लिये तैयार न था। अपनी यथा शक्ति अंग्रेजी राज्य की जड़ को खोदने में संलग्न था। इधर अंग्रेजी शासकों ने भी अपना आतंक जमाने की दृष्टि से दमन नीति का प्रयोग किया। उस दमन नीति से क्षुभित होकर कुछ लोगों ने उसके प्रतीकार का यत्न किया। इस प्रतीकार की मूल-भावना को ही क्रान्तिकारी आन्दोलन का रूप दे दिया गया।

सन् १९१४ के लगभग महात्मा गांधी का अफ्रीका से भारत में आना हुआ, उस समय भारत की राजनीति में लोक मान्य तिलक का विशेष हाथ था। उनके बाद महात्मा गांधी का युग आया। महात्मा जी ने भारत की परिस्थिति और राजनीति का एक विशेष अध्ययन किया और उन्होंने अपनी कार्य शैली का नवीन रूप निर्धारण किया। कुछ लोगों ने महात्मा गांधी जी के सिद्धान्तों का प्रारम्भ में विरोध भी किया, किन्तु उनके सिद्धान्त सत्य की सुदृढ़ भित्ति पर स्थिर होने के कारण टिक

न सके, प्रतिकूल वातावरण भी उनकी क्षति न कर सका। यह बात सब अन्तःकरण से स्वीकार करते हैं कि महात्मा गांधी वर्तमान जगत के एक महान पुरुष हैं। भारत का यह परम सौभाग्य है कि ऐसे महापुरुष के नेतृत्व में मातृभूमि की सेवा करने का सब लोगों को ऐसा शुभ-अवसर प्राप्त हुआ है। महात्मा जी के महान व्यक्तित्व के पीछे सत्यवादिता और सरलता के दो अभूतपूर्व गुण विद्यमान हैं महात्मा जी ने आज संसार के सभी मनुष्यों का हृदय अपने आत्मबल, सदाचरण और अलौकिक मेधा शक्ति के कारण वश में कर रक्खा है। महात्मा जी ने किसी शक्ति का विनाश करके अक्षुब्ध यश प्राप्त नहीं किया है किन्तु उन्होंने अपने उद्भूत गुणों के बल पर संसार में महान विजय प्राप्त की है।

सन १९२१ में असहयोग आन्दोलन हुआ बहुत से लोगों ने उसमें सक्रिय भाग लिया, किन्तु देश के पूर्ण रूप से तैयार न होने के कारण महात्मा जी को वह आन्दोलन स्थगित करना पड़ा। महात्मा जी ने उस समय के क्रान्तिकारियों का ध्यान असहयोग आन्दोलन की ओर आकर्षित किया। परन्तु भावुक नवयुवकों ने उसमें सफलता न देखकर उस समय महात्मा जी के सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से स्वीकार न किया। सरकार ने भी दमन चक्र अपनी पूर्ण शक्ति से चलाना शुरू किया जिसके परिणाम स्वरूप हजारों नवयुवक अपनी क्षणिक उमंग और भूल के कारण फाँसी के तख्तों पर लटका दिये गये और बहुत बड़ी संख्या में जेलों के अन्दर पड़ कर अपना जीवन कष्टमय बिता रहे थे।

ये नवयुवक कोई पागल नहीं थे। इनके मस्तिष्कों में कोई

उन्माद नहीं था। ये स्वतन्त्रता के पुजारी थे, भारत माता के लाल थे उन्होंने अपने फूल से कोमल शरीर को, फलती फूलती हंसती-खेलती जवानी को भारत माता के चरणों में बलिदान कर दी। वे युवक थे उनकी स्नायुओं में भारतीयता का प्रबल रक्त था उनमें वीरता, त्याग और देश-प्रेम के उच्च भाव थे। उन्होंने किसी स्वार्थ या किसी व्यक्तिगत उद्देश्य की सिद्धि से ऐसा नहीं किया। देश की परतन्त्रता उनके हृदय में चुभती थी। भारत के व्याकुल, भूख से तड़पते किसान और उनके बच्चों की करुणामयी दशा को देखकर वे तिलमिला उठे और उनके हृदय में इतनी गहरी चोट लगी कि उसके आगे घर का मोह, बन्धु बान्धवों के स्नेह और मित्रों की कुतूहल पूर्ण बातें भी उन्हें अपने मार्ग से न रोक सकी। ये लोग सचमुच देश भक्त थे। सरकार चाहे इन्हें कुछ भी समझे परन्तु इनके उद्देश्य और आदर्श देश की सद्भावना से परिपूर्ण थे।

समय आया और बहुत कुछ त्याग करने के बाद नवयुवकों में जागृति हुई। महात्मा जी के अहिंसात्मक सिद्धान्त को इन लोगों ने अपनाया, अपनी बड़ी भूल का अनुभव किया आतंकवाद के सिद्धान्त ने हमारे देश की जो क्षति की है वह कभी भी पूर्ण नहीं की जा सकती। भारत के लिये आतंकवाद का सिद्धान्त सामयिक नहीं। इस समय तो भारत अहिंसात्मक आन्दोलन से संसार में विजयी होगा।

हमने इस पुस्तक में उन क्रान्तिकारी नवयुवकों के जीवन चरित्र और उनके जीवन सम्बन्धी घटनाओं का संकलन किया है। इसका उद्देश्य यह कदापि नहीं कि हमको उनकी कार्य

शैली और आदर्श का अनुसरण करना चाहिये। परन्तु वे देश की विभूति हैं, देश की महान आत्माएं हैं उन्होंने जो कुछ भी किया उसे हमें स्मरण रखने का अधिकार प्राप्त ही है। उनकी स्मृति रूप में पुस्तक पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। जिन महानुभावों का हमें परिचय मिल सका है, हमने इस पुस्तक में देने का प्रयत्न किया है। जिन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से इस सम्बन्ध में सहायता मिली है हम उनके कृतज्ञ हैं।

बाबू सतीश कुमार जी दारागंज प्रयाग तथा पं० सेवकराम नागर ने भी हमें इस कार्य में सहायता दी थी।

हमारे कांग्रेसी सहयोगी श्री सतीश कुमार जी श्रीवास्तव से हमें पहिले एडीशन में भी सहायता मिली थी। और इस एडीसन में तो अमर शहीद मणीन्द्र की जीवनी उत्साहपूर्वक उन्होंने ही लिखी है।

प्रकाशक की ओर से—

दूसरा एडीसन अच्छे ढंग से निकालना चाहते थे किन्तु जप्ती का आर्डर बहुत देर में हटा। हैलेट शाही ने इस पुस्तक को जब्त कर लिया था। हैलेट शाही के गुलाम अब भी इससे जब्ती का आर्डर नहीं हटाना चाहते थे। किन्तु योग मेम्बरों के कारण मुंह की खानी पड़ी।

आदरणीय डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह जी ने इस पुस्तक को कांग्रेस अधिवेशन तक छाप कर दे देने में जो उत्साह और परिश्रम किया है मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

श्री प्रबोधचन्द्र मिश्र शास्त्री

श्री हर्ष वर्द्धन शुक्ल।

समर्पण

स्वर्गीय सखे ! विद्या भास्कर शुक्ल

तुम वहाँ हो मैं यहां। जब तक तुम यहां थे क्रान्ति देवी के पुजारी रहे। अब न जाने तुम वहीं रह रहे हो, या यहाँ किसी योनी में हो। यह विषय तुम्हारा है तुम्हीं -इसका आनन्द लूटो प्रेम से इसे आलिंगन करो अध्ययन कर विचार करो क्योंकि प्रेम को सुपात्र या कुपात्र अथवा भले बुरे देश काल का विचार नहीं होता है। प्रेम से जो वस्तु समर्पित की जाती है वह समय, कुसमय, संक्रांति, संगम और संयोग नहीं ढूँढता है। तुम्हारे लिये इस पोथे में कोई नई बात तो नही है किन्तु इसे अपने उन मित्रों को सुनाना जिन्होंने, इस पददलित दकिया-नूसी, अन्धविश्वासी हिन्दू जाति तथा देश के लिये अपने ऊपर असह्य वेदनाएँ सही हैं। मुलायम सूत की रस्सी में हँसी खुशी से लटक कर प्राण दिये हैं। उन्हीं की इसमें जीवनियाँ हैं, उन्होंने इसे पसन्द किया या नहीं पूँछ कर खबर देना।

तुम्हारा वियोगी मित्र
हर्ष वर्द्धन शुक्ल

विषय सूची

महाराज नन्दकुमार

अंगरेज लोग भारत की भूमि पर पदार्पण कर चुके थे। और भारत में अपनी सत्ता एवं अधिकार स्थिर करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। यवन शासन-सूत्र शिथिल हो रहा था और हिन्दू शासन भी पारस्परिक वैमनस्यता और उच्छृंखलता के कारण सुदृढ़ न था। दक्षिण में महाराष्ट्र कुछ संगठित और सबल थे। उत्तरीय भारत (पंजाब) में सिक्ख लोग कुछ शक्ति-शाली थे। किन्तु इन दोनों दलों की शक्तियाँ इतनी परिमित थीं कि ये लोग कुछ इच्छा रखते हुए भी नहीं कर सकते थे। एक साथ मिलकर किसी काम को पूर्ण करने की इनमें क्षमता न थी। सब लोग जहाँ पर थे अपने परिमित क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। इसी का परिणाम था कि भारत एकता के सूत्र में न बँध सका। छोटे-छोटे जागीरदार अपने-अपने क्षेत्र के शासक थे। आपस में कलह और वैमनस्य होने के कारण इन लोगों को दूसरे की मदद की जरूरत रहती थी। अंगरेजों के लिये अपने कार्य

साधन करने का यह शुभ अवसर था। उन्होंने उस अवसर को हाथ से न जाने दिया और अपनी कूटनीति से राज्य शासन की नींव डालनी प्रारम्भ कर दी थी। अंगरेजों ने सबसे प्रथम बंगाल प्रान्त को इस कार्य के लिये अपना उपयुक्त क्षेत्र समझा। उस समय बंगाल की दशा अत्यन्त शोचनीय थी, बंगाल अनेक शासकों के हाथों विभक्त था। महाराज नन्दकुमार के पूर्वज भी इसी प्रकार के एक शासक के यहां नौकर थे।

महाराज नन्दकुमार का जन्म मुर्शिदाबाद जिले के भद्रपुर नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम पद्मनाभ था। ये श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। उस समय मुर्शिदाबाद में मुर्शिद कुली खां का शासन था। मुर्शिद कुली खां का शासन अत्यन्त सराहनीय था। जहां अन्य स्थानों में अराजकता फैली हुई थी। उसके राज्य में प्रजा अपने जीवन के दिवस, सुख और शान्ति के साथ व्यतीत कर रही थी। पद्मनाभ नवाब के यहाँ अर्थ विभाग (फाइनेन्स) में बड़ी कुशलता और योग्यता से काम कर रहे थे। इनकी विलक्षण बुद्धि और असाधारण कार्य क्षमता को देखकर नवाब ने इन्हें अमीन के कार्य पर नियुक्त किया और दो तीन परगनों की मालगुजारी वसूल करने का भार सौंपा। पद्मनाभ ने अपने पुत्र नन्दकुमार को कार्य में लगाने की दृष्टि से अपना सहायक नियुक्त किया। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि नन्दकुमार अच्छे कार्य में लग जायेगा और दूसरा यह कि वह राज-कार्यों में चतुर हो जायेगा। भविष्य में अपने अनुरूप कार्य को कर सकेगा। अवसर मिलने की देर थी। प्रतिभा चमक उठी, नन्दकुमार ने थोड़े ही समय में कार्य दक्षता से सबको

चकित कर दिया। नवाब ने दो और परगनों की मालगुजारी वसूल करने का भार इनको दिया। यह बड़ी चतुरता से काम करते रहे। यह बड़े खरे स्वभाव के थे। और बड़ी सच्चाई के साथ अपना काम करते थे। खरे स्वभाव के कारण लोग इनसे सन्तुष्ट न रह सके, और विरोधी बन गये। प्रजा में असन्तोष देखकर इन्होंने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया और हुगली की ओर जीविका के लिए चल दिये। सिराज की मदद से हुगली के फौजदार के पास इन्हें कुछ काम मिल गया किन्तु वह इनको धीरे-धीरे कष्ट देने लगा। सौभाग्य से थोड़े ही दिन बाद फौज-दार की बदली हो गई। उसके बाद जो फौजदार हुआ उसने नन्दकुमार को अपना दीवान बनाया। इसके बाद लोग इनको 'दीवान नन्दकुमार' कहने लगे तीन वर्ष तक इस पद पर काम करने के बाद फौजदार पदच्युत कर दिया गया। वह इन्हें साथ लेकर मुर्शिदाबाद हिसाब चुकता करने के लिये आया परन्तु वहाँ इन लोगों को एक वर्ष लग गया इधर अलीवर्दी खां की मृत्यु हो गई और उसकी जगह सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठा।

उस समय हुगली का कोई फौजदार न था। शेख उल्ला वहाँ का फौजदार नियुक्त हुआ। और नन्दकुमार उसके दीवान बनाये गये परन्तु थोड़े ही दिन के बाद शेख उल्ला पदच्युत कर दिया गया और नन्दकुमार अपनी कार्य दक्षता और प्रखर-बुद्धि के कारण उसके स्थान पर फौजदार नियुक्त किये गये। यह वह समय था जब कि नवाब से अंग्रेजों की छेड़-छाड़ शुरू हो गई थी और अंग्रेज नवाब को पदच्युत करने का प्रयत्न कर रहे थे। उनकी इच्छा थी कि चन्द्रनगर पर आक्रमण

किया जाय. किन्तु चन्द्रनगर पर नन्दकुमार के रहते आक्रमण करना कोई साधारण बात न थी। इसलिये अंग्रेजों ने यह सोचा कि जब तक अपनी ओर नन्दकुमार को न मिलाया जायगा, अपने कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, उन्होंने नन्दकुमार को अपनी ओर मिलाना चाहा, परन्तु नन्दकुमार ने नवाब को धोखा देना पसन्द नहीं किया, चन्द्रनगर में जो अंग्रेजों के विरुद्ध सेना भेजी गई थी उसे वापस बुला लिया और नवाब को लिख भेजा कि अंग्रेजों का विरोध करना ठीक नहीं। सिराज को नन्दकुमार का यह व्यवहार पसन्द न आया, इसलिये उसने हुगली में दूसरा फौजदार भेजा। इसके बाद प्लासी के युद्ध में हार कर सिराज भाग खड़ा हुआ और मीरजाफर गद्दी पर बैठा। मीरजाफर ने राय दुर्लभ को अपना दीवान बनाया। इधर क्लाइब ने नन्दकुमार को अपना मुन्शी और दीवान बनाया। नन्दकुमार की योग्यता तथा कार्यों से क्लाइब बहुत सन्तुष्ट रहता और उन्हें सर्वदा अपने साथ रखता। इनकी प्रसिद्धि इतनी बढ़ी की लोग इन्हें 'काला कर्नल' कहते थे। क्लाइब ने नवाब से इनको हुगली का दीवान बनाने का अनुरोध किया तदनुसार यह वहाँ के फौजदार तथा अमीर बेगमों के दीवान नियुक्त हुए। इनके कामों से संतुष्ट होकर कम्पनी ने वर्दवान जिले का तहसीलदार बनाया।

प्लासी युद्ध के बाद मुर्शिदाबाद में नवाब के यहाँ एक रेजीडेन्ट रखना निश्चय हुआ। वारेन हेस्टिंग्स रेजीडेन्ट नियत हुए। वर्दवान की मालगुजारी के सम्बन्ध में वारेन हेस्टिंग और नन्दकुमार में विवाद उठ खड़ा हुआ यह विवाद शत्रुता में

परिशिष्ट हो गया और अन्त में इनकी जान लेकर शान्त हुआ। पहले ऐसा होता था कि नदिया और बर्दवान की आय मुर्शिदाबाद के कोष में जमा होती थी और फिर वहां से कलकत्ता को भेजी जाती थी। किन्तु कौंसिल के मेम्बरों ने यह तय किया कि ऐसा करने से असुविधा होगी। इसलिये इन दोनों ज़िलों की मालगुज़ारी एक ही आदमी वसूल किया करे। यह काम क्लाइव के अनुमति से हुआ था और उसी के अनुरोध से नन्दकुमार को यह भार सौंपा गया था और साथ ही कम्पनी की ओर से उन्हें जीविका के लिये कुछ भूमि भी दी गई थी। उस समय वह हुगली के दीवान थे। जब नन्दकुमार ने बर्दवान के महाराज को ख़ज़ाना दाखिल करने के लिए कहा तब उन्होंने मुर्शिदाबाद ख़बर भेजी। हेस्टिंग्स जो वहां का रेज़ीडेन्ट था वह नन्दकुमार से बिगड़ खड़ा हुआ। नन्दकुमार ने इसी समय हेस्टिंग्स को कौंसिल की आज्ञा तथा भूमि देने की बात लिख भेजी। इस पर हेस्टिंग्स और भी चिढ़ गया। यहीं से नन्दकुमार के प्रति उसके हृदय में हिंसा का बीज पैदा हुआ जो बढ़ते-बढ़ते एक वृक्ष रूप में हो गया।

हेस्टिंग्स ने नन्दकुमार के सम्बन्ध में क्लाइव से बहुत लिखा पढ़ी की किन्तु क्लाइव ने उसके पक्ष का समर्थन किया जिससे वह और भी नाराज़ हो गया। क्लाइव के विलायत चले जाने पर वन्सिटार्ट गवर्नर हुए। पहले तो वन्सिटार्ट नन्दकुमार के कार्य से संन्तुष्ट हुए किन्तु पीछे से अंगरेजों के कान भरने से अप्रसन्न हो गए। वन्सिटार्ट ने मीरजाफ़र को गद्दी से उतार कर मीरकासिम को नवाब बनाया। मीरजाफ़र कलकत्ता आकर

रहने लगा नन्दकुमार यहां पहले से मौजूद थे। मीरजाफर ने अपनी दुख कहानी और अँगरेजों की सारी कथा कह सुनाई। इन बातों को सुनकर उन्हें बहुत दुःख हुआ, वे अँगरेजों की बढ़ती हुई कूटनीति को भली भांति समझ रहे थे। उनकी समझ में यह अच्छी तरह से आ रहा था कि धीरे-धीरे अँगरेज ही इस देश के कर्त्ता-धर्त्ता बने जा रहे हैं जिसे मन में आता है उसे नवाब बनाते हैं और जिसको चाहते हैं उसको तुरन्त उतार देते हैं। इस तरह से नवाब की सत्ता दिन पर दिन क्षीण होती जा रही है। और अंगरेजों का प्रभुत्व कायम हो रहा है। बिदेशियों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर एक देश-भक्त के हृदय में ग्लानि स्वभाविक ही है। यही भाव नन्दकुमार के हृदय में जागृत हुए और उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि जिस तरह से हो इनकी क्षमता कम करने का उपाय करना चाहिए। दूसरी ओर इनके प्रति हेस्टिंग्स भीतर ही भीतर षड़यंत्र कर ही रहा था। ताकि नन्दकुमार की शक्ति न बढ़ सके।

नन्दकुमार ने मीरजाफर के बहुत आग्रह करने पर वचन दिया कि वह उसको गद्दी पर बैठाने का पूरा प्रयत्न करेंगे। किन्तु मीरजाफर एक डरपोक व्यक्ति था। उससे जो भी काम करने को कहा जाता था उसमें वह आनाकानी करता था। नन्दकुमार को विवश होकर उसका सारा भार अपने ऊपर लेना पड़ा। इधर मीरजाफर फ्राँसीसियों और अन्य लोगों से अंगरेजों के अत्याचार का बदला लेने के लिये गुप्त मंत्रणा करने लगा। दुर्भाग्य से नन्दकुमार का एक पत्र अंगरेजों के हाथ पड़ गया, उस पत्र के कारण इन पर सन्देह रहने लगा और उनके

देख-रेख के पहरेदार भी नियुक्त कर दिये गये। हेस्टिंग्स को अपना वैर भाव दिखाने का अच्छा मौका मिल गया। इस छोटी सी बात को लेकर बहुत उछल-कूद मचाई गयी। अन्त में नन्दकुमार ने किसी तरह इस बवाल से अपना पिण्ड छुड़ाया।

उधर मीरकासिम ने अँगरेजों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। नन्दकुमार ने उसको मदद देनी चाही। इसी समय एक पत्र और अँगरेजों के हाथ लगा वह पत्र भी नन्दकुमार ही का लिखा बतलाया गया। और उस पर फिर पहरेदार नियुक्त कर दिये गये। नन्दकुमार के इन्कार करने पर भी कि वह पत्र उसका लिखा नहीं है। गवर्नर ने उसकी बात पर तनिक ध्यान नहीं दिया। मीरकासिम से लड़ाई छिड़ जाने के कारण मीरजाफर को पुनः गद्दी पर बैठाया। मीरजाफर ने नन्दकुमार को छोड़ देने और उन्हें अपना दीवान बनाने के लिए कौंसिल को लिखा। पहले तो कौंसिल के सदस्य राजी न हुए किन्तु जब नवाब ने बहुत दबाव डाला तो मीरजाफर को नंदकुमार को दीवान बनाने की अनुमति दे दी गई। जब नवाब के साथ सन्धि हुई तो नवाब ने विशेष अनुरोध करके नंदकुमार को 'महाराज' की उपाधि दिलवाई, इस समय से वे 'महाराज नन्दकुमार' कहे जाने लगे।

नन्दकुमार मीरजाफर के साथ बिहार गए, वहाँ बादशाह और नवाब के साथ सन्धि हो जाने पर दोनों मुर्शिदाबाद लौट आये और राज्य का प्रबन्ध करने लगे। नन्दकुमार ने बड़ी कुशलता से राज्य का शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया, पिछली मालगुजारी को वसूल किया और जितनी गड़बड़ी थी उसको

शान्त किया। मीरजाफर नन्दकुमार से बहुत प्रसन्न था और, वह उन पर इतना विश्वास करता था कि वह इन्हीं को कर्त्ता-धर्त्ता बनाकर निश्चिन्त रहता था। यह अँगरेजों से नवाब के अधिकारों के बारे में सदैव तर्क-वितर्क किया करते थे। नन्दकुमार की इच्छा थी कि नवाब यदि स्वतन्त्र रूप से रह सकें तो अच्छा हो। यह नहीं चाहते थे कि अँगरेज लोग नवाब के हर एक कामों में हस्तक्षेप करें। नन्दकुमार नवाब के अधिकारों के लिये सदैव सचेष्ट रहे, यह बात अँगरेजों को मन ही मन खलती थी। इसी कारण वे नन्दकुमार से वैमनस्य मानते थे। सन् १७६५ ई० में मीरजाफर की मृत्यु हुई। नवाब के मर जाने से नन्दकुमार का एक बड़ा भारी सहारा टूट गया। नवाब के मरने का नन्दकुमार को बहुत दुःख हुआ और वे उदासीन भाव से रहने लगे।

हेस्टिंग्स तथा बर्क ने इसे स्वीकार किया कि मीरजाफर के प्रति इतना प्रेम दिखाने के कारण तथा देश की आजादी के लिये प्रयत्न करने के कारण अंग्रेज इनके शत्रु हो गए थे। वन्सिटार्ट के विलायत जाने पर क्लाइव गवर्नर होकर आए। वन्सिटार्ट ने नन्दकुमार के प्रति क्लाइव को बहुत भड़काया और उनके दोषों की एक लिस्ट बनाकर क्लाइव को दिखलाई, इससे क्लाइव बहुत अप्रसन्न हुआ। और उसने नन्दकुमार को नन्दगाँव में निर्वासित करना चाहा, किन्तु उसने कुछ सोचकर ऐसा नहीं किया और इनको कलकत्ते में ही नजरबन्द करके रक्खा। इसके बाद नन्दकुमार छुटकारा पा गये। और एकान्त में अपना समय बिताने लगे। क्लाइव को कुछ ही दिनों में असली बातों का पता

चला और वह अच्छी तरह समझ गया कि यह सब दोषारोपण मिथ्या था और द्वेष-बुद्धि के कारण ही नन्दकुमार के प्रति ऐसे आक्षेप किये गये थे।

मुहम्मद रज़ा खाँ कम्पनी का नौकर था। उसके अत्याचार के कारण प्रजा में बड़ा असन्तोष था। कम्पनी ने चाहा कि उसके कार्यों की निष्पक्ष जाँच हो। बंगाल गवर्नर ने इस काम का भार दो व्यक्तियों पर डाला एक तो वारेन हेस्टिंग्स पर, और दूसरे नन्दकुमार पर। नन्दकुमार मुहम्मद रज़ा खाँ के अत्याचारों से भली भाँति परिचित थे क्योंकि अत्याचार पीड़ित लोग इन्हीं की शरण में आकर अपना दुःख बयान करते थे। मुहम्मद रज़ा खाँ को भय था कि नन्दकुमार के रहते हुए मेरी सारी कलई खुल जायेगी और न मालूम अन्त में क्या परिणाम हो। उसने एक चाल चली, कि हेस्टिंग्स को रिश्वत देकर अपनी ओर कर लिया, हेस्टिंग्स ने रज़ा खाँ को दोषी होते हुए भी निर्दोषी बतलाया। रज़ा खाँ के निर्दोषी होने की बात जनता में प्रकट हुई तो सब लोगों को बड़ा दुख हुआ इसके फल-स्वरूप प्रजा पर अत्याचारों की और वृद्धि हो गई, चारों तरफ़ हाहाकार मचने लगा। अत्याचार पीड़ित नन्दकुमार के पास आने लगे। नन्दकुमार इस सम्बन्ध में लाचार थे। इस अत्याचार को रोकने का उनके पास कोई साधन न था। हेस्टिंग्स को यह पता चला कि नन्दकुमार को मेरी इस कार्य-वाई का पता चल गया है, किसी दिन मेरा भन्डा फोड़ न हो जाय इस कारण वह नन्दकुमार से सतर्क रहने लगा, और उनके विरुद्ध मन में सोचने लगा। इधर नन्दकुमार भी इन बातों

की परवाह न करके अत्याचार को कम करने और रोकने के उपाय सोचने लगे। सहसा एक अच्छा मौका हाथ लगा।

सन् १७७४ ई० में रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कौंसिल के चार सदस्य नये नियुक्त हुए। इन सदस्यों के आते ही हेस्टिंग्स के मनमानी करने और रिश्वत लेने के प्रमाण मिलने लगे, इसी समय इन लोगों का महाराज नन्द-कुमार से परिचय हो गया। इन लोगों ने महाराज नन्दकुमार से हेस्टिंग्स के दोषों की तालिका बनाने का अनुरोध किया। अकस्मात् बर्दवान के मृत राजा की स्त्री ने इसी समय हेस्टिंग्स के अत्याचारों के विरुद्ध कौंसिल में अभियोग चलाया। इसके बाद महाराज ने हेस्टिंग्स के विरुद्ध प्रत्यक्ष रूप से एक लम्बा आवेदन पत्र दिया, जिसमें यह प्रकट किया कि किस तरह रज़ा खाँ के विरुद्ध अभियोग लगाये गये और वह साफ छोड़ दिया गया। काशी नरेश से कम्पनी को २४ लाख पाने थे। जिसे हेस्टिंग्स ने रिश्वत लेकर छोड़ दिए आदि बहुत सी बातें लिखीं। जब महाराज का पत्र कौंसिल में पढ़ा गया तो हेस्टिंग्स आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबा कर रह गये और उन्होंने उसी दिन महाराज के सर्वनाश का दृढ़ निश्चय किया।

महाराज ने कौंसिल में एक और पत्र पेश किया, जिसमें पहले पत्र में लिखी हुई बातों का समर्थन था, और स्वयं उपस्थित होकर सब बातों का प्रमाण देने का अनुरोध किया था। इस पत्र के पढ़े जाने पर मान्सन ने नन्दकुमार को सभा में उपस्थित होने का प्रस्ताव किया, किन्तु हेस्टिंग्स और बार्वेल

ने इसका घोर प्रतिरोध किया। हेस्टिंग्स ने तो यहाँ तक कहा कि वह मरते तक भी महाराज नन्दकुमार की सभा में उपस्थित होने की बात सहन नहीं कर सकता। अन्य सदस्यों ने हेस्टिंग्स की बात नहीं सुनी और नन्दकुमार को बुलाने के लिये कहा। तब हेस्टिंग्स सभा भंग का प्रस्ताव करके, क्रोध में भर कर सभा भवन को छोड़ कर चला गया। उनके पीछे बारवेल साहब भी चले गये। नन्दकुमार सभा में बुलाये गये और उन्होंने सप्रमाण हेस्टिंग्स को दोषी सिद्ध किया। इस प्रकार अपमानित होकर हेस्टिंग्स नन्दकुमार पर इतना बिगड़ा कि वह उनके प्राण तक लेने का उपाय करने लगा।

मोहनप्रसाद नामक एक व्यक्ति नन्दकुमार का शत्रु था। वह हेस्टिंग्स के पास आया जाया करता था। यह मुर्शिदाबाद के सेठ बुलाकीदास का आम मुख्त्यार था। मीरकासिम के समय महाराज ने एक लड़ी मोती की कण्ठी, एक सिर पेंच, और ४ हीरे की अंगूठी बेचने के लिये भेजा इनका मूल्य ४८०२१ रु० तै हुआ। जब मीरकासिम के साथ अंगरेजों की लड़ाई हुई उस लूट-पाट में बुलाकीदास का मकान लुट गया। इसमें वे जवाहिरात भी लुट गये, तब इन रुपयों के लिये सेठ ने महाराज को एक इकरारनामा लिखा कि कम्पनी से मुझे दो लाख रु० मिलने हैं मिलने पर ४८००२१ रु० महाराजा को दे दूंगा। इस पर महताब राय तथा मुहम्मद कमल तथा बुलाकीदास के वकील के हस्ताक्षर गवाह रूप में हुए। सेठ की मृत्यु होने पर कम्पनी के पावना से उस पत्र के बल पर बुलाकीदास के एक्जीक्यूटर पद्म मोहनदास की सम्मति

से उन रुपयों को वसूल कर लिया। यह हाल मोहनदास जानता था।

हेस्टिंग्स ने मोहनदास से मिल कर एक जाली मुकदमा खड़ा किया कि नन्दकुमार ने जाली इकरारनामा बनाकर बुलाकीदास के उत्तराधिकारियों से झूठ-मूठ रुपये वसूल किये। सरकार ही वादी हुई सन १७७५ ई० को ६ मई को सुप्रीम-कोर्ट के जजों ने नन्दकुमार को जेल भेज दिया। ८ जून को सुप्रीम-कोर्ट में जालसाजी का मुकदमा आरम्भ हुआ। फरियादी पक्ष की ओर से यह दिखलाने की चेष्टा की गई कि जिन तीन आदमियों के हस्ताक्षर हैं वे तीनों जाली व्यक्ति थे। उनमें शीलाबत की मृत्यु हो गई। महताब नामक कोई व्यक्ति ही नहीं था। और मुहम्मद कमल ही कमालउद्दीन खां है। कमालउद्दीन ने अपनी गवाही में कहा कि नन्दकुमार ने धोखे से मेरी मुहर मुझसे मंगवा कर इकरारनामे पर लगा दी, मैंने कोई दस्तखत नहीं किये हैं। इसके बाद नवकृष्ण, मोहनप्रसाद आदि की गवाही हुई। इन लोगों ने भी कोई ठीक गवाही नहीं दी। इसके बाद अभियुक्त पक्ष के गवाहों ने गवाही दी महताब राय के भाई तेजराय की गवाही हुई जिन्होंने अपने भाई के हस्ताक्षर पहचाने और उन्हें स्वीकार किया। इसके बाद बर्दवान की रानी के पेशकार रूप नारायण चौधरी, चैतन्यनाथ लाला डोमनसिंह तथा यार मोहम्मद की गवाही हुई, जिन्होंने बयान किया कि बुलाकीदास ने कागज मेरे सामने लिखा था। अन्त में कृष्ण जीवन को जो दोनों पक्ष के माने हुए गवाह थे और उस समय मोहनदास के आधीन काम करते थे साक्षीरूप में उपस्थित किये गये। इनसे बहुत जिरह

की गई। इनकी गवाही से मुकदमे पर अच्छा प्रकाश पड़ा, इन्होंने कहा कि "पद्म मोहनदास के हाथ का लिखा हुआ एक इकरारनामा बुलाकीदास ने स्वयं लिखा था। उसमें बुलाकीदास ने नन्दकुमार के ४८०२१ रु० के एक तमस्सुक के सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा था"। इस गवाही से हेस्टिंग्स और उसके सहायक इम्पे साहब बहुत घबराये। काम बिगड़ता देख कर आजिमअली नामक एक व्यक्ति को गवाही के लिये तैयार किया गया।

आजिमअली बड़ा चालाक पुरुष था। वह साक्ष्यकला में बहुत सिद्धहस्त था। उसने कहना आरम्भ किया कि मैं जूते की दूकान करता हूं मैं चैतन्य बाबू से तकाजा करने के लिये महाराज नन्दकुमार के घर पर गया था। उसके चन्द रोज पहले बुलाकीदास मर चुके थे। वहां चैतन्य बाबू किसी खास काम में फँसे हुए थे। पूछने पर उन्होंने कहा 'इस समय महाराज एक जाली दस्तावेज बना रहे हैं उसी में व्यस्त हैं। इसके बाद देखा कि महाराज बैठक में नाक पर चश्मा चढ़ाकर बक्स में से कई मुहरें निकालकर उनका नाम जोर-जोर से पढ़ रहे हैं। एक मुहर को उन्होंने कमालउद्दीन की कह कर चैतन्यदास को दिखाया भी था" इतना सुनना था कि इम्पे साहब और हेस्टिंग्स उछल पड़े वे कहने लगे "हां, आगे कहो।"

आजिमअली ने कहा कि तमस्सुक पर मुहर छाप दी गई। महाराज ने चैतन्य बाबू से कहा कि जहां मुहर लगाई है वहां कमालउद्दीन का नाम भी लिख दो, उन्होंने लिख दिया। इस गवाही से चैतन्य बाबू बहुत घबराये। जज कहने लगे, अच्छा

आगे क्या हुआ ? आजिम अली ने कहा "हुजूर महाराज ने कहा पढ़ कर उसे बक्स में रख लिया, इसके बाद एक मुर्गी बोली और मेरी नींद टूट गई। मेरी बीबी ने कहा, मियां आज सोये ही रहोगे, कितना दिन चढ़ आया है" जब दुभासिये ने ये बातें जजों को समझाई तो जज लोग आजिमअली का मुंह देखने लगे। आजिमअली कहता गया मैंने बीबी से रुपये की बात कही। वह बोली तुम बड़े लोगों के पास जाया करते हो इस-लिये सपने में भी वही बातें देखा करते हो। तब जज ने पूछा कि क्या तुमने सपने की बातें कही हैं ? आजिम ने कहा कि हुजूर सपने में जो बात देखी थी, उसे सच सच कह दी। थोड़े दिन हुए मैंने सपने की बात मोहनप्रसाद से कही उन्होंने कहा कि तुम्हें गवाही देनी पड़ेगी। मैंने गवाही देना मंजूर कर लिया। इस गवाही को सुनकर अदालत सन्नाटे में आ गई। जब महाराज के वकील ने इस गवाही को प्रामाणिक मानने में आपत्ति की तो जज महोदय ने कहा कि यह गर्म मुल्क है। यहाँ पूरी-पूरी नींद शायद ही किसी को आती हो। प्रायः लोग आधी नींद में रहा करते हैं। ऐसी दशा में यदि कोई आँख, कान आदि इन्द्रियों द्वारा कोई बात ग्रहण करे तो उसकी बात को साक्षी रूप में मानने में आपत्ति न होनी चाहिए।

तब जजों ने जूरियों को मुकदमा समझाया। इस पर जूरी लोग दूसरे कमरे में उठ गए आध घंटे के बाद उन्होंने लौट कर कहा—"महाराज नन्दकुमार अपराधी हैं" यह सुनते ही न्याय-मूर्ति इम्पे ने महाराज को फाँसी का हुक्म दे दिया, महाराज बन्दी करके जेल भेज दिये गए। महाराज के कुछ

प्रेमियों ने इस बात का प्राथना-पत्र दिया, कि जब तक इगंलैण्ड के बादशाह की सम्पति न आ जाय तब तक महाराज को प्राण दण्ड न दिया जाय। किन्तु इसका कुछ भी परिणाम न निकला।

महाराज की मृत्यु का दिन निकट आने लगा, लेकिन महाराज ने धैर्य न छोड़ा अन्त तक वे पर्वत-खण्ड की भाँति अचल बने रहे फाँसी के दिन सबेरे उठे पूजा-पाठ किया। महाराज जेल दरोगा के कमरे में आकर बैठ गये। महाराज ने तीन ब्राह्मणों को अपना शव ले जाने को कहा। नियत समय पर महाराज जेल फाटक की ओर ले जाये गये उनके साथ हजारों की भीड़ थी। महाराज तख्ते के पास पहुँचे, सेरिफ ने पूछा "क्या आप अपने मित्रों से मिलना चाहते हैं? महाराज ने कहा "मित्र तो बहुत हैं पर न उनसे मिलने का यह स्थान ही है और न समय है।" इसके बाद सहज भाव से बध्यमंच पर जाकर खड़े हो गये उस समय भी उनके चेहरे पर शान्ति विराज रही थी। देखने वालों का कथन था कि जैसी शन्ति तथा दृढ़ता महाराज ने उस समय दिखाई थी उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता है।

महाराज ने नश्वर शरीर त्याग कर अर आत्मा उनकी अमरत्व में जा मिली, तीनों ब्राह्मणों ने शव का दाह संस्कार किया। इस दृश्य को देखकर और हृदय द्रावक बात को सुनकर बहुतों का बहुत मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव हुआ। सारा बंगाल महाराज के प्राण-दण्ड से दुखित था इस प्रकार एक-एक न्याय-प्रिय ब्राह्मण की आहुति हुई।

मैकाले ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि—

"कोई भी विचारवान पुरुष इस बात में सन्देह नहीं कर सकता है कि इम्पे साहब ने यह नीच काम हेस्टिंग्स को खुश करने के लिये किया था। और महाराज की इस तरह करुणाजनक मृत्यु का उत्तरदायित्व हेस्टिंग्स पर से कदापि दूर नहीं हो सकता।

बहादुरशाह के बेटे

गदर का समय था, अंग्रेजों के विरुद्ध बलवाई अनेक प्रकार के प्रयत्न कर रहे थे। उनकी इच्छा थी कि हिन्दुस्तान से अंग्रेजों का आतंक उठा दिया जाय, वे उनकी कूट-नीति से घबरा उठे थे। इसी का परिणाम यह हुआ कि विद्रोहियों में द्वेषाग्नि धधक उठी। वे अपनी स्वतन्त्रता के लिये उन्मत्त हो उठे। एक ओर से दूसरे छोर तक एक लहर सी फैल गई, बच्चों, बूढ़ों और जवानों के रग-रग में बिजली सी दौड़ने लगी। कायरों के हाथ भी फड़क उठे, निर्बलों के हृदय में वीरता का संचार हो उठा, चारों ओर अशान्ति फैल गई, जगह-जगह खून-खच्चर होने लगा। दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फौजी सेनायें भी इस विप्लव को शान्त

करने के लिये अपनी तोपों, तलवारों और बन्दूकों का भरपूर प्रयोग कर रही थी। उन दिनों दिल्ली में तैमूर वंश का अन्तिम बादशाह बहादुरशाह सिंहासन पर विराजमान था। विद्रोहियों की सेना के भीषण आतंक से अंग्रेजी सेना को दिल्ली नगर में घुसने का साहस न होता था, क्योंकि जब जब अंग्रेजी सेना भीतर घुसने का प्रयत्न करती विप्लवकारियों द्वारा दाँत खट्टे कर दिये जाते थे। इतना होने पर भी विप्लवकारी अन्त में क्यों असफल हुए? इसका एक बड़ा कारण था कि बलवाई भली प्रकार संगठित न थे। उनका कोई नेता न था, जो उनको रास्ते से ले चलता, शक्ति होते हुये भी भिन्न-भिन्न टुकड़ों में बँटे हुए थे। बहादुरशाह बलवाइयों की इस कमी को अच्छी तरह अनुभव करते थे। किन्तु स्वयं अत्यन्त बूढ़ा होने के कारण सेनापतित्व ग्रहण करने में असमर्थ था। बहादुरशाह की हार्दिक इच्छा थी कि भारत से अंग्रेजों का शासन निर्मूल हो जाय। जयपुर, जोधपुर, सींधिया और होल्कर जैसे नरेश राष्ट्रीय विप्लव का साथ देने में हिचक रहे थे। दिल्ली में सब सामग्री रहने पर भी कोई उसका परिचालन करने वाला न था। बहादुरशाह ने जो पत्र नरेशों के नाम काँपते हुए हाथ से लिखा था उससे उसके हृदय के सच्चे उद्गारों का पता चलता है। वह लिखता है—

मेरी यह दिली इच्छा है कि जिस तरह भी हो फिरंगियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। मेरी जबरदस्त इच्छा यह है कि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो जाय। अंग्रेजों के

निकाल दिये जाने के बाद अपने निजी स्वार्थ के लिए हिन्दुस्तान पर राज्य करने की मेरी ज़रा भी इच्छा नहीं। यदि आप सब देशी नरेश दुश्मन को निकालने की गरज़ से अपनी तलवारें खींचने के लिए तैयार हों तो मैं इस बात के लिये राज़ी हूँ कि तमाम शाही अधिकार और हक़ आप लोगों के किसी ऐसे गिरोह को सौंप दूँ कि जिसे इस काम के लिये चुन लिया जाय।"

खेद है कि उस वृद्ध की बात पर किसी ने उस समय ध्यान नहीं दिया। भारत के दुर्भाग्य की काली घटायें घिर आई थीं उसको तो अपने दुर्दिन स्वयं अपनी आँखों देखने बदे थे। भारत के प्रति इतना शुभेच्छा और उदारता भरा पत्र भी देशी नरेशों के संदिग्ध हृदय पर प्रभाव न डाल सका। वर्ना इसके बाद का विप्लव का मानचित्र बिल्कुल बदल गया होता।

बहादुरशाह बड़ा नेक और उदार प्रकृति का बादशाह था वह एक अच्छा कवि और पहुँचा हुआ फकीर था। उसकी कविता अधिकतर आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण होती थी हिन्दू, मुसलमान दोनों को वह समान भाव से देखता था। वह बड़ा ही कर्मनिष्ठ तथा अपने देश का सच्चा शुभ-चिन्तक और स्वाभिमानी पुरुष था यही कारण था कि जब उसने देखा कि अब उद्धार का कोई उपाय नहीं है तो वह स्वयं अपनी फकीरी पर लात मार कर विप्लवकारियों के साथ हुआ और अपनी उम्र का आखिरी हिस्सा तमाम झंझटों और मुसीबतों में हँसते-हँसते वीरों की तरह बिताया।

विप्लवकारियों का दिल्ली में जिस समय अंग्रेजी सेना से संग्राम हो रहा था, उस समय अंग्रेजों की सेना में साढ़े तीन हजार अंग्रेज, पाँच हजार सिक्ख, ढाई हजार काश्मीरी, झींद का महाराजा और उसकी सेना थी। इन सब का प्रधान सेनापति हडसन था। दोनों ओर से युद्ध छिड़ गया अंग्रेजों की सेना हारने लगी विप्लवकारियों की महत्वाकाँक्षा बढ़ने लगीं। विजय की क्षीण रेखा धूमिल क्षितिज उस पार अस्पष्ट रूप से दीखने लगी। परन्तु किसे क्या मालूम था कि घर के सगे लोग ही 'आस्तीन के साँप' बन कर डस लेंगे।

शहर में विश्वास-घातक पैदा हो गये और तो और बहादुरशाह का समधी मिरजा इलाही बख्श चुपके-चुपके पूरी तरह से कम्पनी से मिलकर बहादुरशाह और विप्लवकारियों को मिटाने की पूरी कोशिश करने लगा। यह हर समय बहादुरशाह के साथ रहता ही था। तमाम बातों और सलाहों की खबरें हडसन तक पहुँचाने लगा। कम्पनी सेना का मुख्य सेनापति जनरल विलसन जो बार-बार दाँत खट्टे होने पर भी बड़ी बहादुरी और चालाकी से दाँव खेल रहा था और मैदान में डटा था। निरन्तर कई दिन घोर संग्राम होने के बाद शहर पनाह कहीं-कहीं टूट गया विप्लवकारी सेना में मत-भेद हो चला था। इलाही बख्श के द्वारा सब खबरें कम्पनी सेना को मिल रही थी। इधर कोई अच्छा सेना-नायक न था। परिणाम यह हुआ कि दिल्ली में अंग्रेजी सेना ने प्रवेश कर लिया बड़ा घमासान युद्ध हुआ। एक-एक इंच भूमि के लिए न मालूम कितना रक्त पानी की तरह बह गया।

बहादुरशाह की ओर से तैनात किया हुआ उसका विश्वास-पात्र बख्त खां विपल्वी सेना का संचालन कर रहा था। वह बड़ा बहादुर और दिलेर था। वह बहादुरशाह के पास आकर बोला बादशाह! शत्रुओं ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया है और दिल्ली हमारे हाथों से निकला सा जा रहा है दिल्ली हाथों से निकल जाने पर भी अभी हमारा अधिक कुछ नहीं बिगड़ा। दिल्ली से तमाम देश में आग लगी हुई है। आप मेरे साथ निकल चलिए। युद्ध की दृष्टि से दिल्ली की अपेक्षा और भी कई महत्वपूर्ण स्थान हैं। मुझे विश्वास है कि अन्त में हमारी ही विजय होगी।

बहादुरशाह बख्तखां की बात पर राजी हो गया। कहा अच्छा कल सवेरे आना। बख्तखां तो चला गया। इधर अंग्रेजों ने विश्वास-घातक इलाहीबख्श को जोर दिया कि किसी तरकीब से बहादुरशाह को दिल्ली से बाहर जाने से रोको. साथ ही इलाहीबख्श को बहुत सा इनाम देने का वायदा किया गया। बख्त खां के जाने के बाद ही इलाही बख्श आया और उसने बहादुरशाह को बहुत समझाया कि विप्लव तो असफल रहेगा और अंग्रेज लोग विजयी होंगे, बख्तखां तुमको दिल्ली से बाहर ले जाकर कष्ट में डाल देगा उसके साथ आपको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ेगा और सिवाय हानि के कुछ हाथ न लगेगा। यदि आप दिल्ली में रह गए तो मैं वायदा करता हूँ कि अंग्रेजों से समझौता करा दूंगा। आप या आपके कुटुम्बियों पर किसी तरह की आंच न आयेगी, आप अंग्रेजों के साथ सुलह करके इस बुढ़ापे में सुख की नींद सोवें। व्यर्थ में अपने जीवन को खतरे में डालने से क्या लाभ?

दूसरे दिन बादशाह बख्त खां हुमायूं के मकबरे में मिलने आया—उसी समय इलाहीबख्श भी आ गया। बख्तखां समझा रहा था कि दिल्ली से निकल चलो इलाही बख्श कहता था मत जाओ। अन्त में बहादुशाह पर इलाहीबख्श की बातों का असर हो गया और वह उसके चाल में आ गया। विश्वास जमाकर गला काटने में क्या बहादुरी है। बहादुरशाह धोखे में मारा गया। बख्त खां तो अपनी सेना सहित निकल गया। उधर मिर्जा इलाहीबख्श ने तुरन्त अंग्रेजों को सूचना दे दी। कप्तान हडसन चुने हुए पचास सवारों को लेकर मकबरे के दरवाजे पर पहुँच गया और उसने बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया। बहादुरशाह को इलाहीबख्श की नीचता का पता चल गया, अब वे कर ही क्या सकते थे। बन्दी होकर चलते समय उन्होंने जिस घृणा-मय दृष्टि से उसे देखा, उससे इलाहीबख्श का सिर झुक गया। अन्त में बादशाह ने कहा "तुमने मुझे बख्त खां के साथ जाने से रोका" क्या यही तुम्हारी इच्छा थी। बहादुरशाह, बेगम जीनत महल, शाहजादे जवां बख्त को कैद कर लाल किले में बन्द कर दिया गया।

बूढ़े बाप को धोखे से कैद किये जाने का उसके लड़कों को बहुत दुःख हुआ, किन्तु विपत्ति का प्रतीकार ही क्या था। कहा जाता है कि बहादुर की सन्तान भी बहादुर ही होती है। शेर के बच्चे शेर ही होते हैं। मिरजा मुगल, मिरजा अख्जर सुल्तान तथा एक पोता मिरजा अबूबकर ऐसे ही बहादुर और शेर दिल थे उनमें वीर बहादुरशाह के गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे। वे भी बागी करार दिए गए। कहा जाता है कि इन्होंने

कितने ही अंग्रेजों को मार डाला था। इसका बदला इनको गोली का निशाना बनाकर लिया गया। खैर जो कुछ भी हो घटना इस प्रकार है। जैसा कि मुन्शी जका उल्ला साहब का बयान है कि बहादुरशाह की गिरफ्तारी के दूसरे दिन इलाही-बख्श ने हडसन को खबर दी कि मिरजा मुगल, मिरजा अख्तर सुल्तान और मिरजा अबूबकर अभी हुमायूं के मकबरे में मौजूद हैं। हडसन को इस खबर का पता चला उन्होंने जनरल विलसन से कत्ल की आज्ञा लेकर सौ सवारों के साथ इलाही-बख्श को साथ लिये हुये मकबरे की ओर चले।

तीनों शाहजादे मकबरे के भीतर थे। हडसन ने मकबरा घेर लिया, शाहजादों को बाहर आने की सूचना दी गई और कहा गया कि इन लोगों की गिरफ्तारी होगी। गिरफ्तारी का सन्देश सुन कर शाहजादों की आंखे लाल-लाल हो उठी, वे वीर की भांति एकबार तड़प उठे, उनके हृदय में शत्रुओं के प्रति एक बार द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी। चूंकि शाहजादे स्वयं भी लड़ाकू थे और उनके पास भी लड़ाके वीर सिपाही मौजूद थे इसलिए हडसन को भीतर जाने की हिम्मत न पड़ी। शाहजादों ने एकाएक बाहर न आने का ही निश्चय किया। इस तरह बराबर दो घण्टों तक वाद-विवाद चलता रहा। शाहजादों ने कहा कि हम अपना आत्म-समर्पण कर सकते हैं अगर हमारे जानों की जिम्मेदारी ली जाय। हडसन ने कहा—मुझे इसका अधिकार नहीं है। न मैं आप लोगों की जिम्मेदारी ले ही सकता हूँ। आप लोग विलसन के पास चलें, उन्हीं के हाथ में सब कुछ है। शाहजादों ने जब अपने मित्रों से सलाह ली,

तो उन्होंने कहा कि तैमूरी खानदान के लोग इस तरह मजबूर होकर कैद नहीं हुआ करते। तलवार उठाते हैं, वीरता के साथ लड़ते हैं और जो किस्मत में लिखा होता है उसका फैसला करते हैं।

मरना तो है ही, आदि में मरें या अन्त में मरें, फिर बहादुर की मौत क्यों न मरा जाय, जिससे लोग उन्हें भविष्य में स्मरण तो करेंगे। शहजादों ने यही निश्चय किया। किन्तु मिरजा इलाही बख्श ने उनसे कहा कि आप लोग ऐसी भूल न करें। तुम लोगों की ताकत थोड़ी है। व्यर्थ में जान देने से क्या लाभ है? उसकी बातों में आकर शहजादों ने लड़ने का विचार छोड़ दिया और विश्वास-घाती इलाही बख्श की सलाह में आकर बिना किसी शर्त के अपने मित्रों को बिदाई देकर निर्भय होकर हडसन के समीप चले गए और आत्म-समर्पण कर दिया।

हडसन ने शहजादों को रथों पर सवार होने के लिये कहा। शहजादे सवार हो गए रथ शहर की ओर चल दिये, जब दिल्ली एक मील रह गया। रथ सहसा रोक लिये गये और हडसन ने शहजादों को रथ से उतर आने और शाही कपड़े उतार देने को कहा। शहजादे यह हुक्म सुनकर ताज्जुब में आ गए और आश्चर्य के साथ एक दूसरे को देखने लगे। उन्हें यह ख्याल स्वप्न में भी न था कि उनके साथ दगा की जायेगी, क्योंकि इलाहीबख्श ने विश्वास दिलाया था कि अन्तिम फैसला विल्सन के हाथ में है और वह सिफारिस करने पर बादशाह की तरह तुमको भी जीवन-दान देगा। हडसन को न मारने का अधिकार है और न छोड़ने का।

शहजादे रथों से उतर आये और उन्होंने अपने कपड़े उतार दिये तथा हडसन की ओर उत्सुकता से देखने लगे। उन्हें ख्याल था कि हडसन शायद यहाँ से उन्हें बन्दी के वेश में पैदल ले चले। परन्तु वहाँ तो कुछ और ही बात थी। इतने में हडसन ने एक सवार से कडाबीन माँगी और एक ही साँस में एक, दो, तीन धाँय, धाँय, तीन फायर किये। शहजादे इतना ही कह सके, "हाय हमारे साथ धोखा किया गया" उन बेचारों के कोमल शरीर जमीन पर क्षण भर में लोट गये। वे अनन्त पथिक की भाँति एक साथ ही इस मर्त्यलोक से चल दिये। हडसन उनके तड़पते हुए शरीर को प्रसन्न चित्त से खड़ा-खड़ा देख रहा था। हृदय की कठोरता का इससे अधिक और क्या भीषण रोमान्चकारी दृश्य हो सकता है। इस नीचता का यहीं अन्त हो गया हो सो नहीं उनके सिर काट कर पहले बहादुर-शाह को दिखाये गये और फिर बाजार में टाँग दिये गए।

यह घटना इस तरह से बहुत काल से देहली में मशहूर है और बराबर एक ही तरह से सुनने में आ रही है। घटना के कथानक में कुछ भी परिवर्तन नहीं मिलता इस आधार पर इस घटना में कुछ भी सत्यता नहीं है या यह काल्पनिक है ऐसा कहना कठिन है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि हडसन ने इन लोगों को मार कर इनका गरम-गरम रक्त पान किया था जब लोगों ने हडसन से उसके ऐसे व्यवहार करने का कारण पूछा तो उसने कहा कि "मैं इनका खून पीता तो पागल हो जाता।"

इसके बाद शहजादों की लाशें कोतवाली के सामने लटकाई

गई और सिर जेलखाने के खूनी दरवाजे पर लटका दिये गये, जिन्हें हजारों आदमियों ने देखा। अगले दिन इन लाशों को जमुना में फेंकवा दिया।

इस प्रकार देश की रक्षा में जीवन देने वाले वीर शहजादों का करुणा-जनक अन्त हुआ। हडसन की इस निर्दयता से अंग्रेज जाति का मुख कभी उज्ज्वल नहीं हो सकता। यह कलंक की अमिट-पंक धोई नहीं जा सकती।

राजा कुँवर सिंह

आरा (बिहार) जिले के जगदीशपुर नामक एक छोटी सी रियासत में सन् १७८२ ई० के लगभग राजा कुंवर सिंह का जन्म हुआ था। यह रियासत इनके पूर्वजों को बादशाह शाह-जहाँ ने उनकी वीरता और वफादारी से प्रसन्न होकर दी थी, और साथ ही "राजा" की उपाधि भी दी थी। कुंवर सिंह के पिता का नाम राजा शाह बाजाद सिंह था।

कुंवर सिंह बचपन से ही बहादुर थे। इनका मन पढ़ने की ओर विशेष न लगता था। ये बड़ी ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे। लड़ाई, झगड़ा, तथा वीरता के कामों में इनकी अभिरुचि थी, इसी कारण इनकी विशेष शिक्षा न हो सकी, राजा कुंवर सिंह को घोड़े पर चढ़ने का, बन्दूक चलाने का और इसी प्रकार की

बहादुरी के कामों को करने का शौक था। अपने इन गुणों के कारण छोटी ही उम्र में विख्यात हो चले थे, और आसपास के इलाके में अत्यन्त सर्व-प्रिय बन चुके थे।

सन् १८५७ के गदर के प्रभाव से विहार भी न बच सका था। विप्लवकारी उस समय पटने में अपना आँतक बढ़ा रहे थे, नित्य गुप्त सभाएं हुआ करती थीं, उन सभाओं में वहाँ की पुलिस तक शामिल थी। जब अंग्रेजों को इस बात का पता चला तो उन्होंने सिक्ख सेना पटने की रक्षा के लिए भेज दी। पटना ही विप्लवकारियों का केन्द्र समझा जाता था। पटने में कुछ विप्लव हुआ किन्तु सिक्ख सेना की सहायता से उसे दबा दिया गया। वहाँ का मुख्य नेता पीरअली था। उसको पकड़ कर फाँसी दे दी गई। इसी तरह दरभंगा जिले के विप्लवकारी पुलिस के जमादार वारिसअली को सन्देह पर पकड़ कर फाँसी दे दी गई।

विप्लव की आग दावाग्नि की भाँति बड़ी शीघ्रता से फैलती हुई दिखाई दे रही थी। कुंवर सिंह के पास भी इसकी खबर पहुँची, वे भी व्याकुल हो उठे। वीर कब रण-भेरी सुनकर सोता रह सकता है। देश की रक्षा के लिये कुंवर सिंह का दिल उमड़ आया और वे प्राणपण से रक्षा के लिये कटिबद्ध हो गए। पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा उस समय कुंवर सिंह की आयु ८० वर्ष की थी, उस अस्सी वर्ष के बूढ़े में बिजली की सी तड़प थी। जिस समय दानापुर की विप्लवकारी सेना जगदीशपुर पहुँची, बूढ़े कुंवर सिंह ने तुरन्त अपने महल से निकल कर हथियार उठा कर इस सेना का नेतृत्व ग्रहण किया।

लोगों का कहना है कि बिहार के विप्लवकारियों में राजा कुंवर सिंह का प्रमुख हाथ था, और वे उस समय के प्रबल नेता समझे जाते थे, उनकी वीरता की अनेक कहानियां अब तक कही और सुनी जाती हैं।

कुंवर सिंह विप्लवकारी सेना के साथ आरा पहुंचे, यहां पर इन्होंने सरकारी खजाना लूटा, जेलखाने के कैदियों को रिहा कर दिया। आरे के किले को घेर लिया जो तीन दिन तक घिरा रहा। चौथे दिन कप्तान डनवर लगभग ४०० सौ सिपाही लेकर आरा की रक्षा के लिये चल दिया। आरा के पास एक आम का बाग था, कुंवर सिंह ने अपने कुछ आदमी आम के पेड़ों में छिपा दिए, रात का समय था। कप्तान डनवर अपनी सब सेना के उस आम के बाग से होकर गुजरे। जिस समय सेना ठीक पेड़ों के नीचे पहुंची, अंधेरे में ऊपर से दनादन गोलियां बरसने लगीं। इस तरह से कुछ समय तक गोलियों की घनघोर वर्षा करके सेना के लगभग सभी सिपाहियों का खात्मा कर दिया गया। कहा जाता है कि करीब ५० जिन्दा रहकर लौटे। कप्तान डनवर यहीं पर मारे गये। इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना लेकर आये। बीबीगंज के निकट कुंवर सिंह की सेना से मेजर की सेना का मुकाबला हुआ। पहले तो कुंवरसिंह की सेना ने बड़ी वीरता दिखलाई और यह मालूम होने लगा कि मेजर साहब की सेना के पैर उखड़ जायेंगे किन्तु थोड़े ही समय में युद्ध का रंग बदल गया और कुंवर सिंह की सेना को पीछे हटना पड़ा, आठ दिन के घेरे के बाद आरा नगर तथा किला फिर से अंग्रेजों के हाथ में आ सका। कुंवर सिंह जगदीश-

पुर की ओर लौट आये, मेजर आयर ने कम्पनी के साथ उनका पीछा किया। कई दिन संग्राम होने के बाद कुंवर सिंह को फिर भी हारना पड़ा। मेजर ने जगदीशपुर के महल पर कब्जा कर लिया।

वृद्ध कुंवर सिंह १२०० बारह सौ सैनिकों के साथ अपने महल की स्त्रियों को साथ लेकर जगदीशपुर से निकल पड़े। उन्होंने आजमगढ़ से पचास मील की दूरी पर अतरौलिया नामक स्थान पर डेरा जमाया। जिस समय अंग्रेजों को यह समाचार मिला उन्होंने तुरन्त मिल मैन के आधीन कुछ सेना और दो तोपें हवाले करके कुंवरसिंह के मुकाबले को भेज दिया। अत-रौलिया के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का आमना सामना हुआ। थोड़ी ही देर बाद कुंवरसिंह अपनी सेना सहित पीछे को हटने लगे। अंगरेजी सेना समझ गई कि कुंवरसिंह हार कर मैदान से भाग गये। जीत की खुशी में मिल मैन ने अपनी सेना को एक आम के बाग में ठहर कर भोजन करने की आज्ञा दे दी। मिल मैन की सेना जब भोजन करने में लगी हुई थी। कुंवर सिंह मय अपनी सेना के उन पर अचानक टूट पड़े। थोड़ी देर के संग्राम के बाद विजय कुंवर सिंह की हुई। मिलमैन के अनेक सिपाही काम आये और बहुतों ने अतरौलिया से भाग कर कौशिला में आश्रय लिया। कुंवरसिंह ने मिलमैन का पीछा किया। मिलमैन मैदान छोड़ कर अपनी जान लेकर भागा इस विजय में कुंवरसिंह के हाथ बहुत सा सामान लगा और तोपें आदि भी पल्ले पड़ीं।

पीछे पता चला कि मिलमैन आजमगढ़ की ओर चले

गये। मिलमैन की पराजय का जब समाचार अँग्रेजों को पता चला तो उनको बहुत घबराहट पैदा हुई मिलमैन की सहायता के लिये एक सेना बनारस से और दूसरी गाजीपुर से आजमगढ़ भेजी गई।

इधर कुंवर सिंह को भी सेनाओं के आने की खबर लग गई थी वे भी सतर्क हो गये। अंगरेजों की संयुक्त सेना कर्नल डेम्स के नेतृत्व में आगे बढ़ी। आजमगढ़ से कुछ दूर कुंवर सिंह और कर्नल डेम्स में युद्ध हुआ, इसमें कुंवर सिंह की विजय हुई। कुंवर सिंह ने आजमगढ़ में प्रवेश किया आजमगढ़ को विजय कर अपनी सेना के एक दल को आजमगढ़ के किले के घेरे को छोड़ कर बनारस की ओर बढ़े। इतिहास लेखक मालेसन का कहना है कि कुंवर सिंह की विजयों और उनके बनारस पर चढ़ाई करने की खबर सुन कर लार्ड कैनिंग घबरा उठा। कैनिंग ने लार्ड मार्ककर को सेना और तोपों के साथ कुंवर सिंह के मुकाबले के लिये भेजा। लार्ड मार्ककर और कुंवर सिंह में संग्राम हुआ। इतिहास लेखक का कहना है कि उस दिन ८० वर्ष के बूढ़े ने जो रण कौसल दिखलाया उसका वर्णन करना कठिन है एक सफेद घोड़े पर एक बूढ़ा सवार होकर ठीक घमासान लड़ाई के भीतर बिजली की तरह इधर से उधर लपकते हुए दिखाई दिया। लार्ड मार्ककर की पराजय हुई, उसे अपनी तोपों सहित पीछे हटना पड़ा वह आजमगढ़ की ओर भागा। कुंवर सिंह ने उसका पीछा किया। कुंवर सिंह ने लार्ड मार्ककर और उसकी सेना को किले में कैदकर किले पर घेरा डाल दिया।

पश्चिम की ओर से सेनापति लार्ड, ल्मार्ड मार्क की सहायता के लिये आजमगढ़ की ओर बढ़ा। कुंवर सिंह को इस बात का पता चल गया। कुंवर सिंह ने लेगर्ड की सेना को छकाने की सोची। वे आजमगढ़ से चल दिये। लेगर्ड की सेना तानू नदी के पुल से आजमगढ़ आने वाली थी। कुंवर साहब ने अपनी सेना का एक दल उस पुल पर लेगर्ड की सेना से मुकाबला करने को भेज दी। और अपनी शेष सेना लेकर कुंवर सिंह गाजीपुर की ओर बढ़े। यह छोटा सा दल बड़ी बहादुरी के साथ उस सेना का मुकाबला करता रहा जब दल ने देखा कि हमारी मुख्य सेना काफी दूर निकल गई है तो उसने रास्ता छोड़ दिया और स्वयं भी वह दल अपनी सेना से जा मिला। लेगर्ड को पहले तो इस चाल का पता न चला किन्तु पीछे से जब उसे ज्ञान हुआ तो उसने बारह मील तक कुंवर सिंह का पीछा किया किन्तु कुंवर सिंह हाथ न आ सके। इसी तरह सेनापति डगलस से नघई नामक ग्राम के निकट एक करारी मुठभेड़ हुई। इसमें भी कुंवर सिंह की विजय हुई। किन्तु बहुत सा सामान इनका शत्रु के हाथ लगा।

कुंवर सिंह लगातार बहुत समय तक युद्ध करते-करते कुछ थक से गये थे। कुछ समय के लिये इन्होंने विश्राम करने को सोचा। परन्तु इन्हें विश्राम करने का मौका कहां था? इन्होंने गंगा पार करके जगदीशपुर जाने का निश्चय किया। किन्तु इस तरह से गंगा पार करके जाना आसान न था, डगलस कुंवर सिंह का पीछा बराबर कर रहा था। वह इस बात की फिराक में था कि किस तरह कुंवर सिंह की ताकत कम

की जाय। कुंवर सिंह ने गंगा के पास पहुँच कर यह अफवाह उड़ा दी कि मेरी सेना बलिया के पास हाथियों पर गंगा पार करेगी। अंगरेजी सेना उसी स्थान पर जाकर कुंवर सिंह को रोकने के लिये डट गई, किन्तु कुंवर सिंह उस स्थान से सात मील दक्षिण शिवपुर घाट से रात के समय नावों से पार उतर गये। अंगरेजी सेना को जब इस चाल का पता चला तो वह शिवपुर पहुँची। कुंवर सिंह की समस्त सेना गंगा पार हो चुकी थी केवल एक अन्तिम नाव रह गयी थी, कुंवर सिंह इसी नाव में थे। ठीक जिस समय नाव बीच धारा में पहुँची, अंगरेजी सेना के किसी सिपाही का चलाया हुआ गोला, कुंवर सिंह की दहिनी कलाई में आकर लगा। कुंवर सिंह का दाहिना हाथ निकम्मा हो गया। समस्त शरीर में विष फैल जाने के डर से बायें हाथ से तलवार खींच कर अपने घायल दाहिने हाथ को स्वयं एक बार में कुहनी से काट कर गंगा में फेंक दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर कुंवर सिंह ने गंगा पार किया। अंगरेजी सेना उस पार उनका पीछा न कर सकी। गंगा के उस पार कुछ दूरी पर जगदीशपुर राजधानी थी।

आज से आठ मास पहले जिसे अपनी भूमि को छोड़ कर चला जाना पड़ा था, उसके दर्शन करके कुंवर सिंह को अपार हर्ष हुआ। आठ महीने तक जगदीशपुर अंगरेजों के कब्जे में रहा। भाई अमर सिंह की सहायता से कुंवरसिंह ने फिर जगदीशपुर पर कब्जा किया। आरा के अंगरेज अफसर चकित हो गए। वे लोग इस विजय को सहन न कर सके अभी कुंवरसिंह को जगदीशपुर विजय किये हुए २४ घण्टे ही हुए थे। ली ग्रैण्ड

के आधीन एक सेना आरा से जगदीशपुर के लिये चल दी। कुंवरसिंह को आठ महीने लगातार युद्ध करते हुए बीता ही था. उनका दाहिना हाथ खराब हो चुका था। पास में एक हजार से अधिक सेना भी न थी। उनके मुकाबले में लीं ग्रैण्ड की सेना सुसज्जित और नई थी। तोपें भी इस सेना के साथ थीं। कुंवर सिंह के पास कोई तोप न थी। जगदीशपुर से डेढ़ मील की दूरी पर लीं ग्रैण्ड और कुंवर सिंह की सेना में संग्राम हुआ। विजय कुंवर सिंह की हुई और बहुत सा सामान उनके हाथ लगा।

इस प्रकार सन् १८५८ ई० को विजयी राजा कुँवर सिंह फिर से अपनी रियासत पर शासन करने लगे, इस विजय की प्रसन्नता के दिन देखना उनके भाग्य में बदा न था। घाव अभी तक अच्छा नहीं हुआ था, २३ अप्रैल को तो जगदीशपुर में प्रसन्नता व उत्सव मनाये जा रहे थे, किन्तु २६ अप्रैल को कुँवरसिंह की तबियत अकस्मात् खराब हुई और महल के भीतर ही उनकी मृत्यु हो गई। कुँवर सिंह की मृत्यु के समय स्वाधीनता का हरा झण्डा उनकी राजधानी के ऊपर फहरा रहा था। राजा कुँवर सिंह अँगरेजों के आधिपत्य से अपनी रियासत और प्रजा को स्वतन्त्र कर चुके थे।

राजा कुँवर सिंह का चरित्र अत्यन्त पवित्र था। उनकी समस्त प्रजा उनका बहुत आदर करती थी, और और वे भी प्रजा को प्राणों से अधिक प्यार करते थे। युद्ध कौशल में तो अपनी शान ही नहीं रखते थे। जैसा कि पाठकों को उनके इस वृत्तान्त से पता चलेगा। उनमें अपूर्व साहस, अगम्य उत्साह और आत्मा-

किक रण-चातुरी थी। उन्होंने उस वृद्धावस्था में जो कार्य किया वह एक आदर्श था। उनकी देश-प्रियता का इससे अधिक और क्या प्रमाण मिल सकता है।

महारानी लक्ष्मीबाई

भारत के स्वतन्त्रता के इतिहास में लक्ष्मीबाई का भी एक प्रमुख स्थान है, जिस प्रकार भारत के सुपुत्रों ने समय-समय पर अपने को बलिदान किया है उसी तरह भारत की वह पुत्रियों ने भी अपना उत्सर्ग किया है। ऐसी ही प्रातःस्मरणीया श्री महारानी लक्ष्मीबाई भी थीं।

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८३५ ई० में बनारस में हुआ। उनके पिता का नाम श्री मोरोपन्त ताम्बे था। वे महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। अन्तिम पेशवा जब पदच्युत होने पर बिठूर भेजे गये तो उनके भाई चिमन्न जी आपा काशी चले आये। आपा जी के साथ ही मोरोपन्त ताम्बे भी काशी आए थे। महारानी का जन्म का नाम मनूबाई था। ज्योतिषियों ने कन्या के ग्रहों को देख कर यह भविष्यवाणी की थी कि वह कन्या बड़ी तेजस्विनी होगी और किसी की रानी होगी।

थोड़े ही दिन बाद आपा जी का देहान्त हो गया, ताम्बे जी निराश्रय हो गये उनके सहारे एक मात्र आधार स्वरूप आपा जी

चल बसे, ऐसी हालत में वे काशी कैसे रह सकते थे। वे बिठूर उनके भाई के पास चले आये और वहीं पर रह कर अपना समय बिताने लगे, तीन, चार वर्ष की आयु में मन्नूबाई की मां मर गईं। पिता को ही मन्नू बाई की देख रेख करनी पड़ी। पेशवा का मन्नू बाई पर विशेष प्रेम था। मन्नू बाई अत्यन्त रूपवती थीं। मन्नू बाई और पेशवा का दत्तक पुत्र नाना साहब दोनों साथ ही साथ खेला करते थे। साथ ही साथ पढ़ा लिखा करते थे। जो काम नाना साहब करते थे, मन्नू बाई भी उसका अनुकरण करती थीं। नाना साहब घोड़े पर चढ़ना सीखते, शिकार करने जाते, तलवार चलाना सीखते, मन्नू बाई भी वे ही सब काम करती और सीखती थीं। और नाना साहब से जल्दी सब काम में निपुणता तथा हस्तलाघ प्राप्त कर लेती थी। एक दिन नाना साहब को हाथी पर चढ़ते देख मन्नू बाई भी हाथी पर चढ़ने की जिद्द करने लगीं। पेशवा ने कहा—"तेरे भाग्य में हाथी की सवारी कहां बदी है" उसे बात लग गई फौरन उत्तर दिया—मेरे भाग्य में एक नहीं दस हाथी बदे हैं" थोड़े ही समय में पढ़ने लिखने के साथ साथ युद्ध कला में भी प्रवीण हो गई।

मन्नूबाई जब आठ वर्ष की हुई तो झांसी के राजा गङ्गाधर राव से उनका विवाह हो गया, विवाह के दिन से ही उनका नाम लक्ष्मीबाई पड़ गया। १६ वर्ष की उम्र में लक्ष्मीबाई के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, पर वह शीघ्र मर गया, जिससे राजा गंगाधर को बड़ा दुख हुआ और उसी पुत्र शोक के कारण उनका शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा तथा उसी प्रगाढ़

शोक के कारण उनकी मृत्यु भी हो गई। मरने के पूर्व उन्होंने एक दत्तकपुत्र गोद लिया था।

महारानी लक्ष्मीबाई ने पति का विधिवत् क्रिया कर्म किया। इस समय रानी की उमर अठारह वर्ष की थी। ऐसे समय में उन पर ऐसा महान् दुःख आ पड़ा। एक तरफ महान् राज्य शासन भार था दूसरी ओर पति वियोग की असह्य वेदना हृदय को आहत कर रही थी। रानी का यदि उस समय कोई सहारा था, वह उसका दत्तक-पुत्र ही था। रानी ने ब्रिटिश सरकार की सेवा में एक खरीता भेजा कि सरकार उनके दत्तक-पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकृत कर ले, किन्तु सरकार ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया, फिर रानी ने दूसरा खरीता भेजा लेकिन उसका भी कोई उत्तर नहीं मिला। वहां तो कुछ दूसरा ही रहस्य था। सरकार रानी के दत्तक-पुत्र को स्वीकार करना नहीं चाहती थी यदि वह स्वीकार कर लेती तो झांसी का राज्य उसके कब्जे में कैसे आता। लार्ड डलहौजी ने रानी को एक आज्ञा पत्र भेजा, उसमें उसने लिखा कि झांसी को सरकार ने ब्रिटिश राज्य में मिला लिया है, लक्ष्मीबाई किला खाली कर दें, उन्हें पांच हजार रुपया महीना पेन्शन दी जाय। वह अपनी सेना तोड़ दें, और नौकर घटा दिए जायं, रानी लार्ड का पत्र पाकर व्याकुल हो गई, उसको मर्मान्तिक पीड़ा हुई। पति-पुत्र के वियोग का दुःख उस पर से अभी दूर न हो सका था, उस पर इस घटना ने उसके कोमल हृदय को बहुत आघात पहुँचाया। रानी मुर्च्छित होकर गिर पड़ी पर चारा ही क्या था? विवश होकर पेन्शन स्वीकार करनी पड़ी।

महारानी लक्ष्मी बाई ने एक पवित्र सती स्त्री की भाँति अपना वैधव्य जीवन बिताना शुरू कर दिया। प्रातः काल चार बजे उठना, स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ, आदि से आठ बजे तक निवृत्त होकर महल के भीतर ही भ्रमण करती थी, उसके बाद भोजन करके कुछ विश्राम करती और अपने दैनिक कार्य में लग जाती थी। इसके बाद अपने हाथ से ग्यारह सौ राम नाम की आटे की गोलियां बनाकर मछलियों को खिलाती फिर रात के आठ बजे तक शास्त्र पुराणादि को सुनती थीं तत्पश्चात् भोजन करके ईश्वर का स्मरण करते हुए सो जाती थी यही उनका नित्य का काम था। उनके पिता मोरोपन्त घर का काम करते थे।

रानी के साथ किये गये इस प्रकार के व्यवहार का जनता पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। लार्ड डलहौजी ने जिस स्वार्थ परायणता का परिचय दिया था वह सभी के हृदयों में काँटे की तरह खटक रहा था। मध्य भारत और उत्तर भारत के बीच झाँसी ही ऐसा एक स्थान था जहाँ से सींधिया तथा अन्य राजाओं को परास्त किया जा सकता था और मध्य भारत की बड़ी बड़ी रियासतों पर काबू रक्खा जा सकता था। भला अंगरेज लोग ऐसे कीमती स्थान को कब छोड़ने वाले थे। इन्हीं स्वार्थों से प्रेरित होकर दत्तक पुत्र को अमान्य करार देकर झाँसी को सब के देखते देखते अपने आधीन कर लिया अँगरेजों की यह नीति लोगों ने पसन्द न की प्रत्युत इसके विपरीत लोगों में उनके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। यह घृणा दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी। इसी बीच में सन् १८५७

ई० में विद्रोह की आग भभक उठी और वह आग धीरे-धीरे चारों तरफ फैलने लगी झाँसी भी इस विद्रोहाग्नि से कब अछूता रह सकता था झाँसी में भी हलचल मचने लगी। अँगरेजों को भी भय उत्पन्न हुआ उन्होंने रानी से विद्रोह शान्त करने के लिये कहा—परन्तु रानी बेचारी इस अवस्था में सरकार की क्या सहायता कर सकती थी, रानी अब वह रानी अब वह कहाँ थी न तो उसके पास अस्त्र शस्त्र थे न फौजें थीं वह क्या करती ? इस पर भी वह जो कुछ कर सकती थी उसने बैर-भाव भुलाकर किया। अँगरेज स्त्री बच्चों को अपने किले में शरण दी लगभग सौ आदमी भी मदद के लिये भेजे इस सबसे क्या हो सकता था बलवाई जोर पकड़ते गए। उन्होंने कितने ही अँगरेजों को क्रूरता के साथ वध किया और महारानी के किले को घेर कर उनसे तीन लाख रुपये माँगे। रानी ने उन्हें समझाया पर वे कब मानने वाले थे रानी से रुपयों के लिये आग्रह करने लगे। रानी को मारने तक की धमकी देने लगे और किले में आग लगाने तक को तैयार हो गये तब तो रानी को बहुत दुःख हुआ और उसने विवश होकर कोई उपाय न देखकर अपने गहने दे दिये। और किसी तरह उनसे अपनी जान उस समय छुड़ाई। अब झाँसी में अँग्रेजों का कोई प्रभाव न रह गया था और एक तरह शासन उठ सा ही गया था। बलवाइयों का आतंक तो चारों ओर छा ही गया था। कुछ शान्ति मिलने पर रानी ने इस बलवे की सूचना सागर के कमिश्नर को दी। अंगरेजों ने भी जब तक कोई अंगरेज झाँसी न पहुँचे तब तक के लिये इसी को ही झाँसी का शासन सौंप दिया।

ज्योंही रानी ने शासन की बागडोर सम्हाली त्योंही शिव-राव ने झांसी पर आक्रमण किया। रानी के पास कोई भी साधन न थे। इस पर भी रानी ने जिस चतुरता से शत्रु पर विजय पाई वह एक आश्चर्य की बात थी शिवराव अपना मुंह लेकर लौट गया। इतने में ओरछा के दीवान नत्थे खाँ ने बीस हजार सवार लेकर हमला कर दिया। रानी ने ब्रिटिश सरकार से सहायता चाही पर सब व्यर्थ। नत्थे खाँ बड़े जोरों पर था। इस पर भी रानी ने हिम्मत न हारी। किले में रानी ने एक बड़ी सभा की और सभी को समझाया उनको लड़ाई के लिये उत्साहित किया, किन्तु कायरों पर कब रंग चढ़ सकता था॥ मारे क्रोध से रानी की आँखें अग्नि वर्षा करने लगीं और होंठ फरफराने लगे। वह क्रोध में आकर बोली "धिक्कार है तुम लोगों के मानव जीवन को। मैं तो स्त्री होकर अपने साहस, धैर्य और बल पर विश्वास करके रण से विमुख कदापि नहीं हो सकती। चाहे तुम लोग कायर बने रहो।"

भाषण सुनते ही सभी बहुत लज्जित हुए और सब में एक बड़ी उत्तेजना फैल गई। सभी युद्ध की तैयारियां करने लगे। तलवारें खिंचने लगीं। किले के बुर्ज ठीक किये गये, उन पर तोपें लगा दी गईं। रानी ने मर्दाना वेश धारण किया और विद्युत की भांति सब में एक अपूर्व जोश पैदा कर दिया कायर वीर बन गये।

नत्थे खां ने बड़े वेग से आक्रमण किया और अपनी सारी शक्ति लगा दी किन्तु रानी के आगे उसकी एक न चली। तल-वार की धार से रण-क्षेत्र चमचमा उठा। सैकड़ों रण बांकुरों

की लोथों से भूमि पट गई। नत्थे खां अपनी जान लेकर भागा रानी की विजय हुई किले पर विजय का झन्डा फहराया गया।

रानी ने जान पर खेल कर अंग्रेजों के राज्य की रक्षा की, और झांसी को विद्रोहियों के पंजे से बचाये रक्खा। झांसी को छोड़ कर अन्य स्थानों पर विप्लवकारियों ने अपना कब्जा जमा लिया था। अंग्रेजों को रानी की जीत से प्रसन्न होना चाहिए था। किन्तु किसी के बहकाने से और यह अफवाह उड़ाने से कि रानी अंग्रेजों के विरुद्ध हैं। अंग्रेजों ने बिना इस बात की जांच किये हुए ही उस अबला पर अक्रमण कर दिया। रानी को जब यह पता लगा कि मेरे विरुद्ध अंग्रेजों को किसी ने भड़काया है तो उसने तुरन्त आगरे के कमिश्नर को एक खरीता भेजा और लिखा कि गलतफहमी दूर हो जाय, पर इस बात पर ध्यान कौन देता है। अंगरेजों को झांसी अपने कब्जे में करनी थी, भला उस पर वे किसी का शासन किस प्रकार देख सकते थे। हुकम हुआ कि "किला फौरन खाली कर दो गोला बारूद सब हवाले करके सामने हाजिर हो"। स्वाभिमानिनी रानी को यह अपमान कब सह्य था, रानी अंगरेजों के स्वार्थमय अभिप्राय को समझ गई। इधर सर ह्यूरोज एक बड़ी सेना लेकर चढ़ आया। रानी को यह विश्वास न था कि अंगरेज इतनी शीघ्रता करेंगे, वे क्षण भर भी न रुकेंगे। रानी अचेत थी, उसे क्या मालूम था कि मुझे फिर रणभेरी बजानी पड़ेगी, सिर पर सर ह्यूरोज की सेना को चढ़ा देख कर रानी की आँखें खुलीं। वह तिलमिला उठी, मुट्ठी भर वीरों को लेकर रणांगण में कूद पड़ी। कर्नल मैलेसन ने स्वयं लिखा है

कि "अंगरेजों के दुर्व्यवहार के कारण महारानी को बलवा करना पड़ा।

रानी के थोड़े से सिपाहियों पर ह्यूरोज का अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित दल टूट पड़ा। परन्तु रानी के रणबाकुरों का भी रण-कौशल देखने लायक था। थोड़े से लोगों ने ही दाँत खट्टे कर दिये। अंगरेजी सेना के छक्के छूट गये। दूसरों की तो कथा ही क्या? स्त्रियाँ तक गोला बारूद तैयार करती थीं। अंगरेजों ने किला लेने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु सब निष्फल रहा। इतने में एक विश्वासघाती ने यह भेद बता दिया कि किस ओर से आक्रमण करने से किला कब्जे में आ सकता है, फिर क्या था वैसा ही किया गया। शहर की दीवार बेध दी गई और अंगरेज भीतर घुस आए। रानी ने जब कोई रक्षा का उपाय न देखा तो नंगी तलवार लेकर निकल पड़ी, और क्षण भर रण ताण्डव करके और सैकड़ों को स्वर्गधाम भेज कर फिर किले में घुस गई।

रानी ने सोचा अब यहाँ से निकल चलना ही श्रेयस्कर है। दत्तक पुत्र को अपनी पीठ पर लाद कर और स्वयं घोड़े पर सवार होकर १०-१२ वीर बहादुर अंग रक्षकों को लेकर जब अंगरेजी सेना के जाल से महारानी निकल गई तो ह्यूरोज को बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने एक लेफ्टिनेंट को पकड़ने के लिये भेजा। रानी एक गाँव में अपने उस पुत्र को खाना खिला कर आगे चलने की तैयारी में ही थी कि इतने में लेफ्टिनेन्ट पहुँच गया। उसके साथ में सेना थी। रानी अकेली थी पर भिड़ गई। रानी का रण-कौशल अद्भुत था, उसने कमाल कर

दिया उस क्षण वह साक्षात् दुर्गा के रूप में देखी गई। साहब पर एक ऐसा वार किया कि वह छटपटा कर गिर गया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई और रानी पुत्र सहित बिना कुछ खाए पिये १०२ मील बराबर घोड़ा दौड़ाती हुई काल्पी जा कर रुकी तथा पेशवा से मिल गई।

जब रानी पर कुछ वश न चला तो खिसिया कर अंगरेज तरह-तरह के अत्याचार करने लगे। इधर रानी के पिता साम्बे को पकड़ कर गोरों ने फाँसी दे दी। शहर में आग लगा दी गई, तीन चार दिन तक झाँसी खूब लूटी गई जितने अत्याचार किये जा सकते थे किये गये। रोमांचकारी दृश्यों को देख कर हृदय थर्रा उठता था, छोटे-छोटे बच्चों से लेकर अस्सी वर्ष तक के बूढ़े, स्त्री पुरुषों को निर्दयता पूर्वक मारा गया। झांसी की इस घटना का उल्लेख स्वयं अंगरेज ग्रन्थकारों ने किया है।

सर ह्यू रोज को इतने से ही सन्तोष न हुआ जब उसने सुना कि रानी काल्पी पहुँच कर पेशवा से जा मिली है तो उसने काल्पी पर चढ़ाई की। पेशवा की सेना खूब लड़ी पर अन्त में जब पैर उखड़ ही गए तो रानी ने अपना घोड़ा मँगवाया और अपने सिपाहियों सहित अंगरेजों पर आक्रमण किया। रानी को इस बार भी विकराल रूप धारण करना पड़ा उसने ऐसा रण-युद्ध किया कि जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। संसार के पर्दे पर उस वीरांगना की समता नहीं की जा सकती उसने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिए। पर रानी अकेली कहाँ तक क्या करती पेशवा की सेना का

संगठन ठीक न था इसी से हारना पड़ा। रानी भी साफ निकल गईं।

इधर अवसर पाकर पेशवा की निर्बलता का अनुभव करके सींधिया चढ़ आया। बलवाई पहले तो जी जान से लड़े, किन्तु सींधिया के सामने उनके पैर जम न सके. बलवाइयों की सेना भागना ही चाहती थी कि महारानी ने अपने दो तीन सौ जवान बुलाये और सींधिया की सेना पर भूखे शेर की तरह टूट पड़ीं। रानी की लपलपाती तलवार से सींधिया घबड़ा गया। स्वयं सींधिया जान बचाकर भागा। रानी के पराक्रम से पेशवा जीता। और ग्वालियर का किला अपने हाथ आया।

सर ह्यूरोज को कब चैन थी, वह फिर एक बड़ी सेना लेकर आ धमका उसे पेशवा से डर न था। अगर उसे डर था तो महारानी लक्ष्मीबाई का। कर्नल मैनसिल का कहना है कि महारानी के अतिरिक्त किसी में इतनी बुद्धि और रण-कुशलता न थी कि जो सब तरह की तरकीबें समय पर सुझातीं। रानी सिपाहियों को लेकर आगे बढ़ीं और तोपें दागने की आज्ञा दे दी। अँगरेज घबड़ा गए दोनों में खूब युद्ध हुआ। अन्त में अँगरेजों ने चारों ओर से घेर लिया। दनादन गोलियाँ बरस रहीं थीं उस घेरे से निकल जाना आसान काम न था। महारानी अपने कुछ साथियों सहित उस विकट व्यूह से निकलने का प्रयत्न कर रहीं थीं। शत्रुओं के घनघोर प्रहार होने पर भी अपनी दासियों और स्वामि-भक्त सरदार रामचन्द्र राव सहित बाहर निकल ही तो आईं। कुछ सवारों ने रानी का पीछा किया, निर्दय होकर उन पर अंधाधुन्ध गोलियाँ बरसाई गईं।

एक गोली रानी के पीठ में लगी जिससे उनका शरीर शिथिल हो गया, इतने में गोरे समीप आ पहुँचे। रानी ने भी उन्हें उनकी करनी का फल चखा दिया।

गोली मारने वाले को तलवार के घाट उतार दिया, वह जरा आगे बढ़ी ही थी कि एक दासी चिल्लाई। पीछे फिर कर देखा तो एक गोरा दासी पर आक्रमण कर रहा था उसे फौरन काटा और आगे बढ़ी।

महारानी ने तो कोई कसर बाकी न छोड़ी पर दुर्भाग्य को कोई क्या करे। एक नाले को देखकर घोड़ा अड़ गया। इतने में महारानी के एक गोली और लगी। इतने में एक सवार ने धोखे से वार किया जिससे महारानी के सिर का दाहिना हिस्सा छिन्न-भिन्न हो गया उनकी आँख निकल आई।

इतने में एक निर्दयी ने छाती में किर्च भोंक दी। इतने भीषण प्रहारों पर भी रानी ने अपनी तलवारों से उन गोरों के दो-दो टुकड़े कर ही दिये। उनके शरीर में अब कुछ शक्ति न थी वह धराशायी हो रही थीं। उन्होंने रामचन्द्र राव को इशारा किया। वह नेत्रों से आँसू बहाता हुआ आया और रानी को एक कुटिया में ले गया। महारानी को प्यास लगी हुई थी गंगा जल पीकर अपने प्यारे पुत्र को प्यार किया, भारत की स्वतंत्रता का स्मरण करती हुई उसने प्राण त्याग दिये। ऐसी देवियों को स्मरण करके भारत अपना मुखोज्ज्वल कर सकता है। किसकी वीरता की कहानी आज भी कायरों में वीरता, आलसियों में स्फूर्ति डरपोकों में निर्भयता भर रही है।

तांतिया टोपी

तांतिया टोपी वीरता और युद्ध-कौशल्य में अपने समय का एक असाधारण पुरुष था इसका जन्म एक मामूली घर में हुआ था। वीरता किसी जाति विशेष व देश विशेष की सम्पत्ति नहीं, वह तो ईश्वर की देन है, परमात्मा की ओर से वह किसी को भी प्राप्त हो सकती है। नेलसन और नैपोलियन पर अगर यूरोप के साम्राज्य गर्व कर सकते हैं तो शिवाजी, वीर प्रताप और तांतिया टोपी ऐसे वीरों पर हमारा देश भी गर्व कर सकता है। किसी कार्य की सफलता या असफलता पर किसी के गुणों की परीक्षा नहीं की जा सकती है। सफलता और असफलता के लिये अन्य सापेक्ष साधनों की आवश्यकता है। जब तक सभी प्रकार के साधन अनुकूल न हों कार्य की सिद्धि नहीं होती। तांतिया टोपी ने जिस महान् कार्य को उठाया था जिसके लिये उसने अपने को उत्सर्ग कर दिया। हमारी सम्मति में तो वह अपना कार्य कर चुका। भारतीय इतिहास के रंग-मंच का वह अन्तिम वीर जिसने विदेशियों की छत्र छाया में रहना स्वीकार नहीं किया, वह विदेशियों को देश से बाहर निकालने का एक प्रबल प्रयत्न कर रहा था। उसने अपनी वीरता का लोहा सबको मनवा दिया उसने सबके छक्के छुड़ा दिये। इस वीर की प्रशंसा उसके शत्रुओं तक ने अपने मुख से की है। इसकी वीरता का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि वह कितना साहसी, दिलेर, और बहादुर था।

तांतिया का जन्म पूना में हुआ था बाल्यावस्था में उसकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी, मराठी की शिक्षा के वह संस्कृतवाद पढ़ने लगा, थोड़े ही समय में संस्कृत का ज्ञाता हो गया, रामायण महाभारत वह बड़े चाव से पढ़ता था वीरों की वीरता को पढ़ते-पढ़ते उसका हृदय फड़क उठता था। भारत के प्राचीन बल वैभव और तत्कालीन भारत की पौरुषहीनता, दरिद्रता और वशाता की तुलना करता था तो उसका उसका हृदय विदीर्ण होने लगता था वह सोचता कि महाराष्ट्र जाति क्या फिर शिवा जी और महाद जी सींधिया आदि वीरों को पैदा नहीं कर सकती, जो देश को स्वतन्त्र करने का बीड़ा उठायें। वह चारों तरफ निगाह डालता था किन्तु उसे सब तरह निराशा ही निराशा दीखती थी। फिर भी वह निराश होने वाला व्यक्ति न था। कभी वह यह सोचता कि मैं ही स्वयं इस काम को क्यों न करूँ। तांतिया के पितामह पेशवाओं के अत्यन्त विश्वास-पात्र नौकर थे जिस समय पेशवाओं की तूती बोलती थी, उस समय इनकी दशा अच्छी थी। सबका समय एक सा नहीं रहता। तांतिया के पास किसी प्रकार के साधन उपस्थित न थे कि वह जो चाहता कर सकता। उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। घर में वृद्धा माता थी। उसका कोई आश्रयदाता न था परन्तु वह कहा करता था कि अनुकूल समय आने पर मैं विदेशियों को भारत से निकाल बाहर करूँगा। इसी विचार से वह विवाह के बंधन में फंसना नहीं चाहता था वह विवाह को एक बन्धन समझता था उसका विचार था कि इसमें फँस कर आजाद करने की सारी स्कीम यों ही रह जायगी।

परन्तु माता के अत्यन्त आग्रह और अनुरोध करने पर उसे विवश होकर विवाह करना पड़ा। आर्थिक स्थित अनुकूल न थी इसलिये परिवार की चिन्ता के कारण उसे नौकरी के लिये इधर-उधर भटकना पड़ा किन्तु प्रयत्न करने पर भी वह नौकरी न पा सका। अन्त में वह पेशवा की सेवा में उपस्थित हुआ। उस समय नाना साहब पेशवा बिठूर में रहते थे। यहीं पर ताँतिया भी रहने लगा।

ताँतिया को बाल्यावस्था ही से सैनिक जीवन से प्रेम था। उस उमंग को कार्य रूप में परिणित करने का उसे अवसर ही न मिला था। पर इस मौके से उसने लाभ उठाने की ठानी। थोड़े ही समय में उसने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया, नाना साहब उसकी योग्यता पर मुग्ध हो गए और उन्होंने उसको एक अच्छा पद दे दिया। नाना ने उसी को अपना सेनापति बनाया इधर अँगरेजों का अपहरण नीति और अत्याचार से भारत में विद्रोह की आग भड़क उठी, ताँतिया ने यह अवसर अपने अनुकूल समझा, और वह अपनी शक्ति का संचय करने लगा। नाना साहब में स्वयं वैसी योग्यता न थी, सिपाही-विद्रोह के समय जो कुछ श्रेय उन्हें मिला है वह अधिकांश में ताँतिया के असाधाराण शौर्य और सैन्य संचालन के कारण ही था। यदि ताँतिया जैसा चतुर सेनापति उसे न मिलता तो वह सिपाही-विद्रोह के अवसर पर कुछ न कर पाता और शायद भारतीय इतना पराक्रम भी नहीं दिखलाते।

विप्लव की असफलता में सिपाहियों का ठीक संगठन न होना,ही प्रधान कारण था। ताँतिया इस कमजोरी को समझता

था, परन्तु कोई चारा न था। सब शक्ति होते हुए भी उसको परामुखापेक्षी होना पड़ता था, उसका नाम वैसा विख्यात न था। नाना साहब तथा दिल्ली के बादशाह को आगे करके काम करना पड़ता था। इतनी विशृङ्खलता होने पर उसने बहुत कुछ संगठन किया। दो ही एक युद्धों में वीरता दिखाने पर उसका नाम चारों तरफ फैल गया। उसकी वीरता देख कर सभी वशीभूत हो जाते थे। बड़े-बड़े लोग तथा साधारण सिपाही भी ताँतिया की वीरता और सैन्य संचालन की योग्यता देख कर उसके सामने सिर झुकाने लगे। थोड़े ही समय में उसके झण्डे तले असंख्य सिपाही इकट्ठे हो गए।

अंगरेज सिपाहियों के अत्याचारों को सुन कर हिन्दुस्तानी सिपाहियों की क्रोधाग्नि भयंकर रूप धारण कर रही थी, वे बदला लेने के लिये उन्मत्त हो रहे थे, जहाँ तहाँ लड़ाई भी हो जाया करती थी। उसका विकराल रूप सिपाही विद्रोह के रूप में प्रकट हुआ, ताँतिया ने गदर के समय जो कुछ सफलता पाई, उसका सबसे बड़ा कारण यह था कि वह लोगों को मिलाना खूब जानता था, उसका प्रबल विरोधी भी क्यों न हो जहाँ उससे कुछ बातें करता उसके वश हो जाता था, उसकी बात मान लेता था और उसके कहे के अनुसार करने लगता था। सिपाहियों को अपनी ओर करना तो उसके बायें हाथ का खेल था। जब जनरल हेवलाक ने बिठूर पर कब्जा कर लिया तो ताँतिया शिवराजपुर गया और वहाँ की ४२ वीं नम्बर की फौज को अपनी ओर करके बिठूर लौटा और जनरल साहब को हरा दिया यह गुप्त रीति से ग्वालियर पहुँचा वहाँ सींधिया की

विशाल सेना को फोड़कर अपनी ओर कर लिया और उन्हें साथ लेकर कालपी की ओर बढ़ा और पहुँचते ही किले पर अपना अधिकार कर लिया। कालपी को उसने अपना केन्द्र बनाया। यहाँ से कानपुर की ओर बढ़ा और उसे घेर कर अंग्रेजी सेना में रसद आदि जाना बन्द कर दिया। जब अंग्रेज सेनापति विन्डहम कानपुर शहर से निकल कर लड़ने आया तो घोर संग्राम हुआ। यह युद्ध तीन दिन तक होता रहा। जिसमें ताँतिया ने अँगरेजी सेना को बुरी तरह हराया। इस अवसर पर ताँतिया ने जो युद्ध-कौशल दिखलाया उसकी प्रशंसा मालेसन ने स्वयं लिखी है। उसका कहना है कि "ताँतिया टोपी में एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण मौजूद थे"।

इसके बाद कैम्पबेल की सेना से ताँतिया की मुठभेड़ हुई। इस बार ताँतिया की हार हुई और कानपुर पर फिर अंगरेजों का कब्जा हो गया। ताँतिया अपनी सेना सहित कालपी आया। ताँतिया की वीरता का हाल महारानी लक्ष्मी-बाई ने भी सुन रक्खा था। जिस समय रानी की अंगरेजी सेना से मुठभेड़ हो रही थी। रानी ने ताँतियाँ को अपनी सहायता के लिये बुलाया। ताँतिया अपनी सेना लेकर सहायता के लिले चल पड़ा। इस युद्ध में रानी और ताँतिया को पीछे हटना पड़ा था। इसके बाद आगे कई बार दोनों ने अंगरेजों की सेना से सम्मिलित मोर्चा लिया।

ताँतिया और रानी ने मरहठों को अपनी ओर करने का विचार किया। उस समय सेंधिया बहुत शक्ति शाली था। उसको पत्र लिखा गया और उससे सहायता माँगी गई। पर

सहायता कौन करता है प्रत्युत वह उलटा उनसे लड़ने के लिये तैयार हो गया परन्तु सींधिया के सैनिक पहले से ही तांतिया की ओर हो चुके थे। इस युद्ध में सींधिया की हार हुई। रानी लक्ष्मी-बाई को सिरतोड़ परिश्रम करना पड़ा जायाजी राव मैदान छोड़कर भाग निकला। ग्वालियर जीत लिया गया। और वह बागियों का प्रधान केन्द्र बन गया। पीछे से अवसर पाकर सर ह्यू रोज ने ग्वालियर पर आक्रमण किया ताँतिया और लक्ष्मीबाई आगे बढ़े। इस अवसर पर रानी ने बड़ी वीरता दिखाई। सबेरे से शाम तक वह घोड़े पर सवार रहती और स्वयं सेना का संचालन करती थीं अन्त में इसी युद्ध में लक्ष्मीबाई ने अपने प्राणोत्सर्ग कर दिये। लक्ष्मीबाई की मृत्यु से ताँतिया को बड़ा दुःख हुआ। इस तरह उसका दाहिना हाथ टूट गया। भारत के अन्य भागों में बलवाई हार रहे थे, ताँतिया के पास भी कोई संगठित सेना न थी और न कोई सामान ही था। इस पर भी वह निराश न हुआ और उसने सोचा कि नर्मदा पार कर दक्षिण जाकर मरहठों का संगठन करूँ।

अंगरेजों को जब ताँतिया की इच्छा का पता चला तो वे अनेक प्रकार से उसकी इच्छा में विघ्न डालने का उपाय करने लगे। उनको इस बात का भय था कि यदि ताँतिया नर्मदा पार करके दक्षिण चला जायेगा तो वह वहाँ पर बगावत फैला देगा। वह इस घात में रहने लगे कि वह नर्मदा पार न कर सके ताँतिया नर्मदा पार करना कठिन देख कर वह भरतपुर की ओर मुड़ा। परन्तु अंगरेजी सेना ने उसका रास्ता रोक लिया। तब वह जयपुर की ओर मुड़ा, यहाँ पर भी अंगरेजों ने उसका

मार्ग रोका। तब वह दक्षिण की ओर फिर लौटा और टोंक पहुँचा। यहाँ पर भी नवाब की सेना ने उसे रोका। वह इन्द्रगढ़ की ओर बढ़ा पीछे से होम्स ताँतिया की ओर चला आ रहा था। राजपूताने की ओर से भी एक अंगरेजी सेना चली आ रही थी। सामने चम्बल नदी बह रही थी। ऐसी दशा में वह तीनों से बचता हुआ बूँदी की ओर बढ़ा। यहाँ पर राबर्टस की सेना से मुकाबला हुआ दिन भर जम कर लड़ाई हुई यहाँ से उदयपुर की ओर बढ़ा। उधर भी अंगरेजी सेना ने उसे घेर लिया। यहाँ पर अपनी कुछ तोपें छोड़ कर वह आगे बढ़ा और चम्बल को पार करना चाहा। उधर उस पार अंगरेजी सेना उसका इन्तजार कर रही थी।

उसने चम्बल पार करने का विचार छोड़ दिया और झालरा-पाटन की ओर बढ़ा, वहाँ का राजा भी अपनी सेना और तोपों के साथ ताँतिया का सामना करने को बढ़ा, परन्तु यहाँ पर भी ताँतिया का जादू असर कर गया। राजा की सेना ताँतिया की ओर आ गई। ताँतिया को बहुत से अस्त्र वगैरह हाथ लगे और अन्य सामान भी मिल गये। राजा से ताँतिया ने १५ लाख रुपये भी वसूल किये और पाँच दिन तक वहीं पर रहा। यहाँ से चल कर उसने फिर नर्मदा पार करना चाहा, वह इन्दौर की ओर बढ़ा।

इस समय बागियों में केवल ताँतिया ही ऐसा वीर था जो अंगरेजों के काबू में नहीं आया था। बहुत से बड़े-बड़े सेनापति उसे पकड़ने के लिये नियुक्त थे किन्तु वह किसी की पकड़ में न आता था, वह इतना वीर भी था कि साधारण व्यक्ति की तो

हिम्मत ही क्या हो सकती थी ? सामने से अंगरेज सेनापति देख रहा है कि ताँतिया और उसकी सेना जा रही है, परन्तु उसको पकड़ नहीं पाते थे। एक अंगरेज लेखक ने ताँतिया के सम्बन्ध में लिखा है कि वह असाधारण योग्यता का व्यक्ति था। जब ताँतिया ने समझ लिया कि मेरा ये लोग इस तरह से पीछा न छोड़ेंगे तो उसने युक्ति से काम लेने का विचार किया। वह यकायक उत्तर की ओर मुड़ पड़ा। अंगरेजों ने समझा कि उसने दक्षिण जाने का इरादा छोड़ दिया। वह फिर दक्षिण को मुड़ा और बेतवा पार कर रायगढ़ होते हुये वह नर्मदा के तट पर पहुँच गया। इस अवसर पर भी अंगरेज सेनापति पार्क और मिचले दोनों ओर से लपके किन्तु उसको रोक न सके। नर्मदा पार कर वह नागपुर के पास पहुँचा, किन्तु यहाँ पर उसे कोई सहायता न मिली। तब वह वहाँ से बड़ौदा की ओर बढ़ा। मेजर संड लैण्ड की सेना के साथ उसकी मुठभेड़ हुई। ताँतिया ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब तोपें छोड़ कर नर्मदा नदी में कूद पड़ो, बात की बात में सब सेना नदी में कूद पड़ी और क्षण भर के बाद नदी के पार दिखाई दी।

इस प्रकार ताँतिया अनेक स्थानों पर सामना करता हुआ बाँस बाड़ा के जंगल के पास पहुँच गया। इस समय तक उसके दो साथी शेष रह गये थे एक राय साहब और दूसरा बाँदा का नबाब। इनमें से नबाब ने घबड़ा कर विक्टोरिया के घोषणा के अनुसार हथियार रख दिये। इस पर भी ताँतिया और राय साहब घबड़ाये नहीं। कुछ ही समय बाद दिल्ली का बादशाह फिरोज—

शाह सेना सहित ताँतिया से आ मिला इसी समय सींन्धिया का मानसिंह नामक सरदार भी आकर इनसे मिल गया। लेकिन अंग्रेजों की सेना चारों तरफ से बढ़ती चली आ रही थी थोड़े ही समय में ये लोग बुरी तरह से घिर गये। एक समय ताँतिया राय साहब और फिरोज शाह तम्बू में बैठे कुछ बातचीत कर रहे थे इतने में किसी अंग्रेज अफसर का हाथ ताँतिया की कमर पर पड़ा। अंग्रेज सिपाही खेमे में घुस पड़े ऐसा मालूम पड़ा कि तीनों गिरफ्तार हो गये किन्तु सिपाहियों की आंखों में धूल डाल कर ये तीनों बच कर निकल गये। इनमें से मानसिंह को अंग्रेजों ने प्रलोभन देकर मिला लिया और इसी के द्वारा ताँतिया को पकड़वाना चाहते थे किन्तु ताँतिया इसके हाथ में भी न आ सका, दो वर्ष तक बराबर परिश्रम करने पर भी उसका बाल बाँका न हुआ। एक दिन ताँतिया मानसिंह के विश्वास में आ गया और जिस जंगल में मानसिंह रहता था उसमें तीन साथियों के साथ मिलने गया। खा पीकर निश्चिन्त होकर सो गया। आधी रात होते ही अंगरेजी सेना चुपके से आ धमकी और वह मानसिंह की धोखेबाजी से पकड़ लिया गया। तांतिया के पकड़े जाने की खबर चारों ओर फैल गई। लोग मानसिंह को धिक्कारने लगे। १८ अप्रैल सन् १८५९ ई० को उसे फांसी दे दी गई। वह खुशी से फांसी के तख्ते पर चढ़ गया और अमर हो गया।

देश की स्वतन्त्रता के लिये आजीवन कठिन तपस्या करने वाला यह वीर था। इसकी वीरता और रण-कुशलता का लोहा सभी मानते थे। अनेक अंगरेज ग्रन्थ लेखकों ने इसकी स्वयं

मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। भारत को इसकी वीरता पर अभि-मान होना चाहिये।

खुदीराम बोस

अंगरेजी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव सबसे प्रथम बंगाल पर पड़ा। अंग्रेजी सभ्यता के संस्पर्श में आकर राजा राममोहन राय समझ गये थे कि भारत की उन्नति विदेशी समाजों के संस्पर्श में आकर ही विदेशी विचार धाराओं से परिचित होकर ही हो सकती है। इसलिये उन्होंने भारतीय शिक्षा पद्धति में पश्चिमीय विचार-धाराओं के प्रभाव को अत्यन्त उपयोगी समझा प्रधानतः उनकी ही चेष्टा से बंगाल में अंगरेजी शिक्षा का प्रचार हुआ और इसी अँगरेजी शिक्षा के कारण पाश्चात्य क्रांन्तिकारी भावनाओं ने बंगाल के हृदय को स्पर्श किया पाश्चात्य सभ्यता के संस्पर्श में आकर नाना प्रकार के आघात पाने के कारण नवीन जागृति उत्पन्न हुई। तब से बंगाल में क्रान्तिमय विचारों की सृष्टि हुई। समय-समय पर लोग अपने विचार जनता में प्रकट करने लगे। इस प्रकार के लोगों का केन्द्र प्रायः कलकत्ता ही था। सन् १९०८ की बात है अप्रैल की तीसवीं तारीख थी। इसी दिन एक बालक ने बम द्वारा एक अंगरेज की हत्या करने का प्रयत्न किया और सब से प्रथम भारतीय बिप्लव के बाद घोषणा की। इस बालक का नाम खुदीराम बोस था।

खुदीराम बोस का जन्म सन् १८६१ ई० में कलकत्ते के आसपास एक अच्छे कायस्थ वंश में हुआ था। खुदीराम अभी बालक था, कलकत्ते में शिक्षा पा रहा था। उन्हीं दिनों कलकत्ता कोर्ट से जज मि० किंग्स फोर्ड ने कलकत्ते में कुछ विप्लव-वादियों को दण्ड दिया था और एक-एक को ढूंढ कर उनके नाश करने के प्रयत्न में लगे हुये थे। विप्लव-वादियों ने बहुत तंग आकर किंग्स फोर्ड को मार डालने का निश्चय किया और इसके लिये दो वीर नियुक्त किये गये। प्रफुल्ल कुमार चाकी दूसरे खुदीराम बोस।

मि० किंग्स फोर्ड अब कलकत्ते से बदल कर मुजफ्फरपुर चले आये थे। दोनों वीर भी मुजफ्फरपुर आकर स्टेशन के पास ही एक धर्मशाला में ठहर गये। धर्मशाला में दस बारह दिन रहे और घूम-घूम कर सब बातों का पता लगाने लगे। उन्होंने अच्छी तरह यह जान लिया कि मि० किंग्स फोर्ड किस रंग की गाड़ी में बैठकर घूमने निकलते हैं, उनके निकलने का कौन सा समय है, किधर से होकर कहाँ को जाया करते हैं इत्यादि जानने योग्य बातों का उन्होंने अच्छी तरह पता लगा लिया। तथा उन्होंने निश्चय किया कि जिस समय किंग्स फोर्ड घूमने को क्लब में जाता है वही समय इस काम के लिये उपयुक्त होगा। दोनों युवक उसकी घात में रह कर अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे।

कई दिन बराबर प्रयत्न करने पर भी वे अपने काम का मौका न पा सके। तीस अप्रैल थी, रात का समय था लगभग

आठ बजे होंगे। बीच सड़क पर एक जोर का धमाका हुआ और थोड़ी ही देर बाद चारों ओर शहर में यह ख़बर बिजली की भाँति दौड़ती हुई सुनाई गई कि स्थानीय वकील अंगरेज मि० पी० केनेडी पर किसी ने बम फेंका है जिससे केनेडी की लड़की मर गई, कोचवान मर गया। केनेडी के सख़्त चोट आई और उनकी स्त्री भी मरणासन्न है। बात यह थी कि मि० केनेडी की गाड़ी भी उसी रंग की वैसी ही थी, जैसी मि० किंग्स फोर्ड की थी। उन दोनों को बात मालूम न थी। वे दोनों नवयुवक तो एक क्लब के फाटक के पास वृक्षों की ओट से बम फेंक कर और अपना काम सफल समझ कर नौ दो ग्यारह हुए। हाँ, किंग्स फोर्ड के शरीर रक्षक तहसीलदार खाँ और फैजुद्दीन ने शाम को क्लब की सड़क पर उन दोनों को टहलते भी देखा था और तहसीलदार खाँ ने भागते समय भी देखा था।

जब पुलिस को इस घटना की खबर लगी तो वह सचेष्ट होकर चारों तरफ दौड़ने लगी, शहर चारों तरफ से घेर लिया गया बाहर से आने जाने वाले लोगों पर तीव्र दृष्टि रक्खी जाने लगी, पर अब इन बातों से क्या होता था, उधर तो वे दोनों भाग निकले थे, खुदीराम रातों रात भागता-भागता मुजफ्फरपुर से पूरब पच्चीस मील दूर वेनी पहुँचा। जगह-जगह पुलिस स्टेशनों, रेल के स्टेशनों पर उन दोनों की हुलिया और पकड़ने के वारण्ट निकाले गये। पुलिस बड़ी सतर्कता से इस मामले की खोज करने में लगी थी।

खुदीराम बोस वेनी पहुँच कर भूख से अत्यन्त व्याकुल था। उसने खाने के लिये सोचा, पर उस समय रात को खाने की

क्या चीज मिल सकती थी, वह एक मोदी की दूकान पर लाई चने खरीदने गया। दूकान स्टेशन के समीप थी, वहीं पर स्टेशन मास्टर अपने पैटमैन से कह रहा था "मुजफ्फरपुर में दो मेमों की हत्या करके दो नवयुवक भागे हैं, उनके पकड़ने का वारण्ट आया है।

देखो कहीं इस गाड़ी में न आते हों। खुदीराम बोस दूकान पर खड़ा-खड़ा यह बातें सुन रहा था। उसे यह मालूम न था कि अदृष्ट मेरे पीछे लगा है। वह सहसा चौंक पड़ा, और उद्वेग में आकर कह उठा "ऐं क्या किंग्सफोर्ड नहीं मारा गया" पास में खड़े हुए लोगों ने यह ताड़ लिया हो न हो यही मारने वाला है—खुदीराम भागा, जोर से भागा, पुलिस के सिपाहियों ने पीछा किया। दो सिपाही उसके पीछे तीन मील तक दौड़ते चले गए। खुदीराम बोस दौड़ते-दौड़ते थक चुका था, अब उसके लिये आगे जाना कठिन था। उसके पास उस समय एक खाली और एक भरा हुआ पिस्तौल था। साथ में तीस कारतूस थे। उसने घूम कर सिपाहियों को डराने की कोशिश की, पर सब व्यर्थ वह पकड़ लिये गये और रेल पर सवार करके वेनी से मुजफ्फरपुर लाये गये।

खुदीराम के पकड़े जाने की खबर लग गई जिस समय वह मुजफ्फरपुर के स्टेशन पर उतारा गया, भीड़ का क्या कहना था। सारा शहर उसके देखने के लिये उमड़ पड़ा। सबने देखा उसके मुख पर भोलापन है, पर हँसी होंठों पर इठला रही है। उसके चित्त में उमंग थी और आँखों में निर्भयता झलक रही

थी, किसी को विश्वास न होता था कि सत्रह वर्ष का देवमूर्त्ति बालक भी क्या ऐसा काम कर सकता है।

प्रफुल्ल चन्द्र चाकी भी भागता हुआ समस्तीपुर पहुँचा। वह रेल में बैठा था, उसी डिब्बे में एक दरोगा भी बैठा था, दरोगा मुजफ्फरपुर हत्या की घटना सुन ही चुका था। उसे प्रफुल्ल पर सन्देह हुआ। प्रफुल्ल भी कुछ ताड़ गया। दूसरे डब्बे में जा बैठा। दरोगा ने तार द्वारा मुजफ्फरपुर की पुलिस को सूचना दी और हुलिया मालूम कर दो तीन स्टेशन बाद ही प्रफुल्ल को गिरफ्तार करने चला। चाकी ने पकड़ने वालों में एक पर पिस्तौल का वार किया पर निशाना खाली गया। अन्त में उसने बचने का कोई उपाय न देख कर दूसरा फायर अपने ऊपर ही करके आत्मघात कर लिया और इस लोक की मानव-लीला समाप्त कर ली। दरोगा हाथ मल कर रह गया, सुना गया कि इस घटना के कुछ ही काल बाद दरोगा दिन दहाड़े कलकत्ते में मार डाला गया। दरोगा का नाम नन्दलाल बनर्जी था।

मजिस्ट्रेट के सामने मुजफ्फरपुर हत्याकाण्ड का मामला उपस्थित हुआ। अदालत में काफी भीड़ थी। सब लोग उसके मामले को सुनने के लिये उत्सुक थे। सभी लोगों की धारणा थी कि भला क्या यह भोला बालक भी हत्याकारी हो सकता है। मजिस्ट्रेट ने पूछा—बताओ तुमने क्या बम फेंका था। उसने वीरता पूर्वक उत्तर दिया "मैंने स्वयं बम फेंका है और हत्या की है" खुदीराम पर मुकदमा चला और जो कुछ होना था वही हुआ। फैसला सुना दिया गया, खुदीराम बोस को

फांसी की आज्ञा हुई। कुछ लोगों ने फैसले के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की, वहां भी कोई परिणाम न हुआ फांसी की सजा बहाल रही। ११ अगस्त फांसी की तारीख निश्चित की गई।

खुदीराम बोस बड़ा प्रसन्न मुख व्यक्ति था जितने दिन वह जेल में रहा वह बहुत स्वस्थ चित्त और प्रफुल्ल था। मालूम पड़ता था कि उसे मृत्यु का स्वप्न में भी भय न था। जेल के डाक्टर ने फांसी के एक दिन पूर्व खुदीराम को एक देशी आम खाने को दिया। खुदीराम ने उसे चूसा और छिलके को मुंह से फुलाकर खिड़की पर रख दिया। डाक्टर साहब ने लौट कर देखा, आम ज्यों का त्यों रक्खा है, पूछा—"तुमने अब तक आम खाया नहीं" "क्यों खा तो लिया, बोस ने हंसते-हंसते कहा—उसे उठाकर देखिए न" डाक्टर साहब ने आम उठाकर देखा तो गुठली नदारत सिर्फ छिलका ही छिलका था। डाक्टर साहब तो कुछ झेंप से गये। पर खुदीराम जोर से खिलखिला कर हंस पड़ा। डाक्टर साहब यह दृश्य देखकर बड़े आश्चर्य में थे और सोचते थे कि यह बड़ा ही विलक्षण प्रकृति का मनुष्य है जिसे कल फांसी होने वाली हो वह इतना प्रसन्न हो।

११ अगस्त आन पहुँची, सदा की भांति वह उठा उसने अपना नित्य कर्म किया। गीता के कुछ श्लोक पढ़े तथा गीता हाथ में लिए हुए हंसता-हंसता फांसी के तख्ते पर जा खड़ा हुआ। मृत्युपाश गले में पड़ गया देखते-देखते प्राण पखेरू उड़ गये।

बोस की अन्त्येष्टि क्रिया करने की स्वीकृति बाबू कालीदास ने पहले से ही जिला मजिस्ट्रेट से ले ली थी यथा समय सुगन्ध

चन्दन और पुष्प मालाओं से सुसज्जित अर्थी क्रिया के लिये श्मसान घाट की ओर निकल पड़ी, अर्थी के साथ-साथ हजारों की संख्या में जन समुदाय था, यह उस समय की घटना थी, जिस समय 'बन्दे मातरम्' कहना पाप समझा जाता था। सरकार ने अपने अतंकवाद का फौलादी पंजा प्रजा पर जमा रक्खा था। उस समय यह बात बड़े महत्व और साहस की समझी जाती थी। श्मसान पर चिता बनाई गई, देखते-देखते चिता धधकने लगी उसका मृत-देह क्षण भर में क्षार हो गया। लोगों ने उसके भस्म के लिये छीना झपटी की, और बड़े प्रेम से उसे अपने पास रक्खा। वह एक तरह से भारत के हृदय का उपास्य देव बन गया था।

कन्हाईलाल दत्त

भारतमाता की दासता की शृंखला तोड़ने के लिये जिन महानुभावों ने प्रयत्न किया है। उनमें कन्हाईलाल दत्त का नाम आदर से लिया जा सकता है। बंगाल की वीर प्रसविनी भूमि ने जिसे पैदा किया, जिसके साहस और वीरता को देख कर अवाक् रह जाना पड़ता है।

आपका जन्म सन् १८८७ ई० में हुआ. जब वह कुछ बड़ा हुआ तभी से उसके रंग ढंग न्यारे थे। उसकी सभी बातों में

एक विचित्रता रहती थी। चाहे जिस काम में हो वह सभी में आगे रहता था। पढ़ने में अपने सभी सहपाठियों से आगे रहता था। स्कूल के सभी लड़के उस पर स्नेह रखते थे। उनका जन्म एक धनी गृह में हुआ था किन्तु उनमें धनिकों की सी विलास-प्रियता न थी, न वे उनकी तरह सुकुमार प्रकृति के ही थे।

उनके हृदय में दीनों के प्रति दया थी, और दुखियों के प्रति अगाध-स्नेह और सहानुभूति थी। वे यथाशक्ति समय पड़ने पर उनकी सहायता भी करते थे, वे केवल वाक्-शूर ही न थे। उनमें कर्तव्य निष्ठा कूट कर भरी थी। कभी किसी को पुस्तक खरीद देते तो, कभी किसी को वस्त्र ले देते थे। किसी मनुष्य को विपत्ति में देख कर उनके हृदय में करुणा का सागर उमड़ पड़ता था। इसी समय उनका झुकाव देश-सेवा की ओर हो चला इसी भावना ने उन्हें देश पर बलिदान होने को प्रस्तुत किया।

आपकी शिक्षा बम्बई और बंगाल प्रान्त में हुई थी उन्होंने बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त की थी। आप ग्रेजुएट थे। घर वालों से यह कह कर चल दिए कि मैं नौकरी की तलाश में कलकत्ते जा रहा हूँ। परन्तु कन्हाई के दिल में तो कुछ और ही बात समाई हुई थी, वह किसी और ही वस्तु की तलाश में था। घर वाले भला क्या जानते थे कि वह किसी और ही धुन में है। उस समय बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन शान्त हो चुका था, किन्तु भीतर ही भीतर नवयुवकों में देश-भक्ति की आग सुलग रही थी। बंगाल के युवक अपनी जान हथेली पर रख कर विदेशी-सत्ता

के विरुद्ध संगठन कर रहे थे। यह संगठन केवल मौखिक न था, किन्तु क्रियात्मक था। कन्हाईलाल दत्त ने भी कलकत्ते में आकर इसमें भाग लेना शुरू कर दिया और कुछ ही समय में वह अपने दल का एक प्रमुख कार्यकर्ता हो गया। सन् १९०७ ई० में चन्द्रनगर में विप्लव का केन्द्र कायम करने गया। फिर वहाँ का संगठन दृढ़ कर कलकत्ते लौट आया। कलकत्ते के उसके घनिष्ठ मित्रों में उस समय उपेन्द्रनाथ और वारीन्द्र आदि थे यह कलकत्ते में मानिक तल्ला में रहता था। इसके बाद कन्हाईलाल दत्त चटगांव वगैरह स्थानों में घूमता रहा, इसी बीच में उसने बम फैक्टरी में कुछ काम सीखा।

सन् १९०८ ई० में खुदीराम बोस ने मुजफ्फरपुर में जिस अपूर्व साहस के साथ बम फेंक कर अपना काम पूरा किया। उससे सारे बंगाल में हलचल मच गई। सब तरफ गिरफ्तारी जोरों के साथ प्रारम्भ हो गई। कलकत्ते में जितने क्रान्तिकारियों के अड्डे थे, उन सब की तलाशी हुई सन् १९०८ ई० की दूसरी मई को बहुत से क्रान्तिकारी पकड़े गये। सब लोग अलीपुर जेल में ठूंस दिये गये और लोगों पर मुकद्दमा चलने लगा। ये लोग जेल में भी मस्त रहते थे, बाकायदा सभायें होतीं, भाषण होते, कोई अपना समय पुस्तकों के अध्ययन में बिताता। किन्तु कन्हाईलाल दत्त का अपना प्रोग्राम विचित्र ही था, यह आनन्द से दिन भर सोता, या लोगों को तंग करता फिरता था।

इसी समय इन लोगों को पता चला कि नरेन्द्र गोस्वामी मुखबिर हो गया। सब लोगों का खून उबलने लगा। शत्रु का वार सह्य होता है किन्तु जब अपना कोई आत्मीय अवसर

पड़ने पर घात करने लगता है वह पागल हो जाता है। अब मित्र मण्डली में इसी बात को लेकर दिन-दिन विचार होने लगा। तरह-तरह की बातें होतीं कोई कुछ कल्पना करता और कोई कुछ। कोई कहता उसे मार डालना चाहिए। इस प्रकार का विवाद बहुत समय चलता रहा। अन्त में एक दिन यह निश्चय हुआ कि सत्येन्द्र कुमार बसु नरेन्द्र को दण्ड देने का काम अपने हाथ में लें। मित्रों का अनुरोध सत्येन्द्र कुमार बसु को मानना पड़ा। इधर कन्हाईलाल दत्त चुपचाप बैठे-बैठे सब की बात सुन रहे थे। मन ही मन उन्होंने भी विश्वास-घातक को दण्ड देने की प्रतिज्ञा की। इस बीच में सत्येन्द्र की कुछ तबियत खराब हो गई और वे बीमार पड़ गये। तब जेल के अधिकारियों ने इन्हें वहाँ से हटाकर अस्पताल में कर दिया। सत्येन्द्र विवश होकर चले आये। इस अवस्था में भी वे समिति के सुपुर्द किये हुए भार से अपना दबा हुआ अनुभव करते थे, और उसको पूर्ण करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। वह उपाय सोच रहा था कि किस तरह कार्य सिद्ध हो, उसने नरेन्द्र से भेंट होने पर अपने को डरा हुआ सा प्रकट किया धीरे-धीरे वह प्रत्यक्ष रूप से उससे मिल गये और गवाही की तैयारी करने लगे।

इधर कन्हाई लाल ने भी एक दिन पेट में दर्द होने का बहाना किया। वह भी अस्पताल भेज दिये गये। वहाँ पर सत्येन्द्रकुमार थे ही। एक दिन नरेन्द्र सत्येन्द्र से बातचीत करने के लिये दो यूरेशियन शरीर रक्षकों के साथ आया। सत्येन्द्र ने मौका पाकर बुखार में बेहोश होने पर भी उस पर

फायर किया, किन्तु उससे कुछ काम न बना केवल शब्द हो-कर रह गया। फिर उसने दूसरा फायर किया किन्तु नरेन्द्र के शरीर रक्षक ने उसे पकड़ लिया। सत्येन्द्र ने उस पर भी वार किया जिससे उसके हाथ में गहरी चोट लगी वह अपनी जान की डर से दूर जाकर खड़ा हो गया। अवसर पाकर नरेन्द्र जो तल्ले से उतरने लगा। कन्हाई लाल ने देखा कि शिकार फन्दे से बाहर हुआ चाहता है उसने उस पर गोली चलाई निशाना पैर में लगा, किन्तु वह बुरी तरह भागा। कन्हाई-लाल ने उसका पीछा किया। फाटक पर पहरेदार ने रिवाल्वर देख कर स्वयं ही दरवाजा खोल दिया और उंगली के इशारे से बताया कि उधर नरेन्द्र गया है। ज्योंही उसने नरेन्द्र को देखा, त्योंही दनादन गोली चलाने लगा। जेल के सभी कर्मचारी उसकी भयावनी मूर्ति देख कर तीन तेरह हो गए। बेचारा जेलर तिपाई के नीचे पड़ रहा। इधर सत्येन्द्र भी ऊब गया।

दोनों आदमियों ने नरेन्द्र को अपनी गोली का शिकार बनाया। अन्त में गोली खतम हो जाने पर पकड़ लिये गये। दोनों पर हत्या करने के अपराध में मुकदमा चला और फाँसी की सजा हुई। सन् १६०८ ई० की १० वीं नवम्बर को इन्हें फाँसी दी गई। इस दिन जब उनका वजन लिया गया तो १६ पौ० वजन बढ़ा हुआ था।

कन्हाईलाल को समय पर फाँसी दे दी गई। लोगों का कहना है कि उसके दिव्य मुख मण्डल पर विषाद की क्षीण रेखा

तक न थी, वह मृत्यु के दिन तक प्रफुल्ल था मोतीलाल राय ने उसके मृतक शरीर की अन्तिम क्रिया की।

कन्हाई लाल दत्त वीरता की मूर्ति था। स्फूर्ति उसके अंग-अंग से टपकती थी। निर्भयता का वह साक्षात् रूप था। मृत्यु भी उसके कोमल अंगों पर अपना अमिट प्रभाव न जमा सकी अन्तिम क्षण तक यंत्रणा उसको अपने पथ से डिगा न सकी। इस तरह की दिव्य-मृत्यु पाकर वह अमर हो गया।

मदनलाल ढींगरा

बीसवीं सदी के आरम्भ में जब स्वदेशी आन्दोलन शुरू हुआ था। बंगाल की भाँति पंजाब ने भी उसे सहर्ष अपनाया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के युग में पंजाब किसी प्रान्त से पीछे नहीं रहा। जब-जब किसी नवीन विचार-धारा का प्रवाह बहा है। पंजाब ने उसमें पूरा भाग लिया है। देश की पराधीनता का अनुभव पंजाब ने अन्य प्रान्तों के समान ही किया उसके भी हृदय में कसक पैदा होती रही है। संसार में सभी व्यक्ति एक से नहीं होते। कोई वाक्-शूर होते हैं तो कोई कर्मनिष्ठ होते हैं। दोनों ही की देश को आवश्यकता है। दोनों तरह के व्यक्ति देश की विभूतियाँ हैं। उनसे संसार की सुन्दरता और ज्योति की अद्भुत वृद्धि होती है। उनके अमर बलिदान

ही देश की सच्ची सम्पत्ति हो जाती है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम अमर शहीद मदनलाल ढींगरा ने ही उज्जवल बलिदान का श्री गणेश किया।

ढींगरा ने कोई ऊँचे कुल में जन्म नहीं लिया था, न वे कोई बड़े नेता ही थे। जो शीघ्र ही प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते। उन्होंने मूक-भाव से ही रह कर जो कार्य किया वह सचमुच सराहनीय है। इसलिये नहीं कि उन्होंने एक हत्या करके कोई प्रशंसनीय कार्य किया हो, किन्तु वे इसलिये प्रशंसा के पात्र हैं कि जिसको वे उचित समझते थे, उसके लिये अपने को उत्सर्ग करने की अपूर्व क्षमता थी, अपने सिद्धान्त पर न्योछावर करने की उनमें शक्ति थी, इसी विचार से उन्होंने मातृ-भूमि के चरणों में अपने को बलिदान कर दिया।

ढींगरा का जन्म अमृतसर जिले के किसी खत्री कुल में हुआ था। उनके घर में सारे संसारिक सुख विद्यमान थे। यहाँ से बी० ए० पास करके इंगलैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये गये। ढींगरा बहुत रसिक और भावुक थे। उनको फूलों और बागीचों से बड़ा प्रेम था वे सुन्दर उपवनों और कुंजों में बैठ कर अपना बहुत सा समय बिताया करते थे। कुछ लोगों का कहना है कि इनमें कुछ चरित्र की निर्बलता भी आ गई थी। हमारी समझ में उनका कहना एक प्रकार से मिथ्या प्रतीत होता है। ढींगरा एक असाधारण मनुष्य था। उसके चेहरे से एक प्रकार की आभा निकलती थी। भारत के स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव इसी समय इंगलैण्ड में भी जा पहुँचा। श्री सावरकर जी ने इण्डिया हाउस नाम की एक सभा खोल दी। मदनलाल

भी उसके सदस्य बन गये। इधर भारत में खुले आन्दोलन के दबाये जाने के कारण क्रान्तिकारी दल ने गुप्त सभाएँ स्थापित कर लीं। यहाँ तक कि सन् १९०८ ई० में अलीपुर षड्यंत्र का मुकद्दमा खड़ा कर दिया श्री कन्हाईलाल दत्त, सत्येन्द्र नाथ वसु बारीन्द्र तथा उल्लासकर दत्त आदि की प्राण दंड की खबरें इंगलैण्ड पहुँच गईं।

इन समाचारों से मदनलाल ढींगरा उत्तेजित हो उठा। कहते हैं कि एक दिन रात को श्री सावरकर और मदनलाल ढींगरा बहुत देर तक सलाह करते रहे, तथा अपना जीवन तक उत्सर्ग करने की हिम्मत दिलाते हुए देख कर श्री सावरकर ने मदन-लाल को पृथ्वी पर हाथ रखने को कह कर ऊपर से मदन के हाथ में चाकू भोंक दिया। उस पर पंजाबी युवक ने उफ तक न की, चाकू खींच लिया। यह काम श्री सावरकर ने किसी बुरे भाव से नहीं किया था। वह उसकी केवल धैर्य और साहस की परीक्षा की दृष्टि से किया गया था। दोनों की आँखों में आँसू भर आये दोनों एक दूसरे का आलिङ्गन कर खड़े हो गये।

दूसरे दिन से मदनलाल सावरकर की सभा इण्डियन हाउस में नहीं गई। वे भारतीय विद्यार्थियों के लिये खुफिया पुलिस का विशेष प्रबन्ध करने वाले और उनकी स्वतन्त्रता को कुचलने वाले सर कर्जन वायली के द्वारा स्थापित की हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में जाकर सम्मिलित हो गये। यह देख कर इन्डियन-हाउस के नवयुवक अत्यन्त क्रोधित हुए और मदन को देशद्रोही तथा देश-घातक कहने लगे।

श्री सावरकर जी ने उनको यह कह कर शाँत कर दिया कि मदनलाल ने हमारी सभा के लिये काफी परिश्रम किया था। उन्हीं के प्रयत्न से हमारी सभा सफलतापूर्वक चल रही है। हमें तो उनको धन्यवाद ही देना चाहिए।

पहली जुलाई का दिन था, यह बात सन् १९०९ ई० की है। इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट के जहाँगीर हाल में एक सभा थी। सर कर्जन वायली भी वहां गये हुए थे। वे दो आदमियों के साथ बातें कर रहे थे, कि ढींगरा ने पिस्तौल निकाल कर उनके मुख की ओर तान दी। कर्जन साहब मारे डर के चीख उठे, परन्तु मदनलाल ने तुरन्त दो गोलियां उनकी छाती में दाग दीं, जिनसे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। थोड़ी देर के बाद ढींगरा पकड़े गए। उनके इस कृत्य का सब तरफ शोर मच गया। कुछ लोग उनके कृत्य की निन्दा करने लगे। परन्तु उस वीर ने दुनिया की परवाह न की, वह अचल-पर्वत की भांति अपने स्थान पर स्थिर रहा।

श्री सावरकर ने कहा कि अभी तो उन पर मुकदमा चल रहा है। इस कारण उन्हें दोषी नहीं कह सकते किन्तु जिस समय इस प्रस्ताव पर सम्मति ली गई तो सभा के अध्यक्ष श्री विपिन चन्द्रपाल यह कह ही रहे थे कि प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ समझा जाय इतने में ही सावरकर जी उठ खड़े हुए और विरोध में अपना व्याख्यान आरम्भ कर दिया। उसी समय एक अंग्रेज ने क्रोध में भर कर सावरकर के एक घूंसा जमा दिया और कहने लगा "देख अंग्रेजी घूंसा कैसा ठीक बैठता है" यह इतना कह ही रहा था कि एक मनचले भारत

वासी नवयुवक ने उस अंगरेज के सिर पर एक लाठी जड़ दी और कहा कि "देख हिन्दुस्तानी डंडा कैसा ठिकाने से बैठता है" वहां शोर मच गया कि भारतीय ने बम चला दिये। भगदड़ मच गई सभा भंग हो गई और ढींगरा की निन्दा का प्रस्ताव वैसा ही रह गया।

मुकद्मा हो रहा था। मदनलाल बहुत प्रसन्न और शान्त थे। उनको मृत्यु का तनिक भी भय न था, वे आनन्द से अदालत की कार्यवाई को देख रहे थे। वे देख रहे थे कि न्याय के नाम पर दुनिया क्या-क्या रंग रचती है, कैसे-कैसे तमाशे करती है। अन्त में उनके बयान की बारी आई। उन्होंने जो बयान दिया वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी था। उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत करते हैं।

"मैं मानता हूँ कि मैंने उस दिन एक अँग्रेज की हत्या की और उन निर्दयता भरी सजाओं का एक अत्यन्त तुच्छ प्रतीकार है। जो भारत में नवयुवकों को फाँसी और काले पानी के रूप में दी गई है। मैंने इस कार्य में अपनी आत्मा के अतिरिक्त और किसी की सम्मति नहीं ली। अपनी कर्त्तव्य बुद्धि के अतिरिक्त किसी के साथ षडयन्त्र नहीं किया। मैं एक हिन्दू होने की हैसियत समझता हूँ, कि देश के साथ अन्याय किया गया अन्याय ईश्वर का अपमान है मेरे पास मातृ-भूमि की सेवा के लिये क्या है? इसलिये मैं यह अपना तुच्छ शरीर उसकी सेवा में अर्पण करता हूँ।"

१६ अगस्त १६०६ का दिन था उसी दिन इङ्गलैण्ड में मदनलाल ढींगरा को फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दिया गया, और वह

'वन्दे मातरम्' कहता हुआ हँसते-हँसते फाँसी के झूले से झूल गया।

मास्टर अमीर चन्द

दिल्ली के विप्लव दल के दो प्रमुख नेता थे। श्री अमीर-चन्द जी और उनके प्रिय साथी श्री अवधविहारी जी, सन् १९०८ या ९ की बात है। समस्त भारत में विप्लव-वाद की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। मुख्य स्थानों पर केन्द्र बनाये जा रहे थे। सारा काम सुसंगठित रूप से हो रहा था। दिल्ली भी उसके प्रभाव से न बच सका था।

मास्टर अमीरचन्द बड़ी धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे। श्री अमीरचन्द जी पंजाबी थे। दिल्ली के मिशन हाई स्कूल में उन दिनों मास्टर थे। इसी बीच में श्री स्वामी रामतीर्थ जी से इनका परिचय हो गया स्वामी जी के उपदेशों का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा। ये स्वामी जी के शिष्य हो गये। स्वामी जी की वक्तृताओं का तथा उपदेशों का प्रचार पहले श्री अमीर चन्द जी ने प्रारम्भ किया था। इनकी रुचि धार्मिक कामों में विशेष थी। इस पर भी ये संसार से विरक्त न थे। सामाजिक सुधार एवं राजनैतिक कामों में भी समान रूप से भाग लेते थे। धर्म और कर्म का जिसके जीवन में समान भाव से सामञ्जस्य हो ऐसे बिरले ही पुरुष देखने में आते हैं। किन्तु

मास्टर अमीरचन्द में ये दोनों भाव समान रूप से विद्यमान थे। मास्टरअमीर चन्द एक सच्चरित्रवान् व्यक्ति थे। साथ इन्होंने कोमल हृदय पाया था। ये विद्यार्थियों से बड़े प्रेम के साथ बर्ताव करते थे। इनके गुणों के कारण विद्यार्थियों की भी इनके प्रति श्रद्धा और भक्ति थी। मास्टर साहब अँगरेजी तथा उर्दू के अच्छे विद्वान एवं लेखक थे।

उधर लाहौर में श्री लाला हरदयाल जी का प्रभाव विप्लव-क्षेत्र में बढ़ रहा था। उनकी विचार-धारायें नव-युवकों के हृदयों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक हिलोरें मार रहीं थीं। उस समय लाला जी 'गदर' नाम की एक पत्रिका भी निकालते थे। उस पत्रिका के द्वारा इस तरह के भावों का खूब प्रचार हो रहा था। धीरे-धीरे लाला जी का उनसे समागम हुआ। लाला जी ने अपने विचारों का प्रचार अमीर चन्द जी में किया और उन्हें अपने अनुकूल बना लिया। अमीर चन्द जी के ऊपर लाला जी के विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा। अब क्या था। उपयुक्त क्षेत्र पाकर बीज अंकुरित होने लगा और समय रूपी जल से सिंचित होकर वृक्ष रूप में बढ़ने लगा। श्री मास्टर साहब लाला जी के विचारों का स्वयं प्रचार करने लगे।

मास्टर साहब गम्भीर-प्रकृति के पुरुष थे। जरा भी गरमी पाकर उबल जाने वाले दूध न थे। वे कर्मनिष्ठ थे। चुपचाप कार्य करते थे और ठोस काम करने वालों को पसन्द करते थे साथ ही निर्भीक स्वतन्त्र प्रकृति और प्रसन्न-चित्त रहने वाले व्यक्ति थे। हँसमुख भी बहुत ही थे वे अपने को बन्दर कहा करते थे कहते थे—कि यदि दिल्ली में आकर कोई मेरे मकान का पता

पूछना चाहे तो बस किसी से पूछ ले कि मास्टर साहब का कौन सा मकान है मेरा मकान उसे आसानी से मिल जायगा।

लाला जी के विदेश जाने के अवसर पर यह चिन्ता उपस्थित हुई कि इस काम को भविष्य में सुचारु रूप से चलाने के लिए एक योग्य व्यक्ति की आवश्यकता है तो उस समय लाला जी की निगाह इन्हीं पर गई और इधर का नेतृत्व भार इन्हीं के ऊपर छोड़ा गया। उन दिनों सिवाय मास्टर साहब के कोई भी उनकी दृष्टि में न था। बस लाला जी अपने कंधों सारा भार मास्टर साहब पर छोड़ कर चल दिये।

इधर देश में कई जगह बम फेंके गये। चारों तरफ क्रान्ति की लहर जोरों के साथ चल रही थी, लाहौर और दिल्ली में भीषण घटनायें हो चुकी थीं गिरफ्तारियों की धूम थी। कलकत्ते में उसी समय की एक तलाशी में श्री अवधबिहारी का नाम निकल आया। कहा जाता था कि अवधबिहारी श्री अमीरचन्द के आदमी थे। पीछे से लोगों की धारणा सत्य निकली।

श्री अवधबिहारी मास्टर साहब के प्रिय शिष्य थे, उन्हीं के बनाये हुए थे। बचपन से वे उन्हीं के साथ रहे पहले वे शिष्य रूप में पढ़े, फिर मित्र रूप में हुए और अन्त में दोनों एक रूप में हो गये। वे मास्टर साहब की संगत में रहे और बड़े हुये। अवध बिहारी बड़े होनहार वीर युवक थे उन्होंने बी. ए. पास कर लिया था। उनकी उम्र अभी २३, २४ वर्ष की ही थी। पर कार्य बड़ों-बड़ों जैसे थे। थोड़े ही समय में वे अपनी योग्यता के कारण दिल्ली के विप्लव-दल के नेता हो

गये थे। जब कलकत्ते में उनका नाम निकला तो फौरन गिरफ्तार हो गए, और भाग्यवश उनकी गिरफ्तारी भी मास्टर साहब के मकान पर ही हुई। मुकदमा चला, तेरह अपराध लगाए गये। फैसले में जज ने फाँसी का हुकम सुनाते हुये कहा—"अवध बिहारी है तो केवल २५ वर्ष की उम्र का नवयुवक बहुत ऊँचे दर्जे का शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति है"।

अवधबिहारी को फाँसी दे दी गई। फाँसी के दिन एक अँगरेज ने पूछा—"कहिये आपकी अन्तिम इच्छा क्या है? वीर अवध बिहारी ने उसी क्षण तुरन्त उत्तर दिया—"इच्छा एक ही है कि अँगरेजी राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाय" उसने कहा—"आज तो शान्तिपूर्वक मरिए"। आपने कहा—"आज शान्ति कैसी। मैं तो चाहता हूँ कि चारों ओर जोरों की आग सुलगे और ऐसी आग सुलगे जिसमें तुम भी जलो और हम भी जलें और भारत की गुलामी भी जले"।

उसने फांसी के समय खुद कूदकर रस्सी का फन्दा गले में डाल लिया और 'बन्दे मातरम्' के साथ सदा के लिये चुप हो गए।

अवधबिहारी के गिरफ्तार होने के बाद अमीरचन्द की भी तलाशी हुई थी। उसमें बम की एक टोपी और एक एम-एस के हस्ताक्षर से लिखा हुआ पत्र मिला। पता लगा कि वह पत्र किसी दीनानाथ का लिखा हुआ है। अब क्या था दीनानाथ की खोज होने लगी कितने ही दीनानाथ पकड़े गए। अन्त में पुलिस ने असली दीनानाथ का पता लगा ही लिया। उसने भय

के मारे सारा रहस्य खोल दिया। जिससे विप्लवकारियों के गुप्त भेदों का पता चल गया और उससे एक बड़ी हानि पहुँची अमीरचन्द गिरफ्तार कर लिये गये थे मुकदमा चला उन पर "लिबर्टी लिफ लेट' के लिखने का अपराध लगाया गया। उसमें बहुत सी बातें आपत्तिजनक बतलाई गई दिल्ली के प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों ने उनके मुकदमें में सफाई दी और गवाही भी पूरे तौर से दी गई। सभी ने उनके उच्च चरित्र की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की। जज तक ने अपने फैसले में उन्हें फाँसी की सजा देते हुये इसे स्वीकार किया था कि "अमीरचन्द जी बड़े कर्त्तव्य-निष्ठ व्यक्ति थे। उन्हें शोक तो कभी व्यापता न था। जिस दिन अदालत में जब उन्हीं के गोद लिये हुये कृतघ्न बेटे सुल्तानसिंह ने सरकारी गवाह बन कर उनके विरुद्ध गवाही दी थी। तो उनके नेत्रों से आँसुओं की धार बह निकली। यह सच है अपने आत्मीय-जन का घात असह्य होता है जिसके प्रति मास्टर साहब ने अपना सर्वस्व समर्पण किया। वही उनके प्रति इस प्रकार निर्दय हो गया। उस दुःख को वे सह न सके और उस समय तक उनका दुःख दूर न हुआ जब तक वे फांसी की आज्ञा न सुन सके। फांसी की आज्ञा सुनते ही उनका चेहरा खिल उठा वे हंसने लगे मानों उन्होंने किसी अभिलाषित वस्तु को पा लिया हो।

समय पर फांसी दे दी गई और उनकी इस संसार की लीला समाप्त हो गई। गुरू और चेले दोनों देश की वेदी पर बलिदान हो गये। अवध बिहारी ऐसे शिष्य को पाकर मास्टर

अमीरचन्द कृत-कृत्य हो गए और अमीरचन्द के अनुरूप शिष्य अवधबिहारी मिले।

सूफ़ी अम्बाप्रसाद

सूफी जी भारत की उन विभूतियों में थे जिन्होंने भारत से दूर देश में अपने अलौकिक गुणों के कारण अनुपम यश और गौरव प्राप्त किया था। उनके नाम पर उस देश में आज भी उत्सव मनाया जाता है। हर एक भारतवासी को अपने ऐसे भाई पर गर्व होना चाहिए।

सूफी अम्बाप्रसाद का जन्म सन् १८५८ ई० में युक्त प्रान्त के मुरादाबाद शहर में हुआ। जन्म होते ही देखा गया कि आपका दाहिना हाथ कटा हुआ है। इसके लिए सूफी प्रायः हंसते हुए कहा करते थे कि "यह हाथ तो मेरा सन् ५७ के गदर में अंगरेजों से लड़ते हुए कट गया, उसी में मृत्यु हो गई। अब पुनर्जन्म में वही कटा हाथ रह गया" सूफी जी की आरम्भिक शिक्षा मुरादाबाद में हुई, इसके बाद बरेली, जालंधर लुधियाना आदि कई स्थानों में पढ़े। बुद्धि आपकी बड़ी तीव्र थी। एफ० ए० पास करके वकालत भी पढ़ी, किन्तु की नहीं। क्योंकि जीवन तो किसी बड़े कार्य में लगाना था। उर्दू के आप जबर्दस्त लेखक थे इसलिये आपने लेखनी उठाई। आप में लिखने के समान वाणी में भी अपूर्व शक्ति थी।

सूफ़ी जी ने १८९० ई० में 'जाम्यूल इलूम' नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र मुरादाबाद से निकाला उनके लेख बड़े प्रभावशाली होते थे। हास्यरस उनका प्रिय विषय था किन्तु साथ ही उनमें गम्भीरता की भी कमी न रहती थी। उस जमाने में भी वे सरकार के कामों की कड़ी आलोचना करते थे। उनके इन कार्यों में उनकी पत्नी भी पूरा सहयोग देती थीं। सूफी जी में एक बड़ी विलक्षण बात थी, वे पैर के अंगूठे से कलम पकड़ कर अच्छी तरह लिख लेते थे।

सात वर्ष पत्र सम्पादन करने के बाद सूफी जी पर राजद्रोह का अभियोग लगा कर उन्हें डेढ़ वर्ष की सजा दी गई। जिसे वे खुशी से काट कर आ गए। उसके बाद अंगरेजों के रजवाड़ों पर अनुचित हस्तक्षेप करने की आपने तीव्र आलोचना की और उन बातों का भन्डा भोड़ किया। इस मामले में उन पर अंग्रेजों की ओर से मुकद्दमा चलाया गया। इस बार ६ वर्ष की सजा हुई जेल में इनको बहुत कष्ट दिया जाता था। उसका इससे अनुमान किया जा सकता है कि जेलर रोज आ कर इनसे हंसते हुए पूछता था कि—"सूफी अभी तक तुम जिन्दा हो ?" छै वर्ष बाद जेल से छूट कर आ गये। उस समय स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार जोर पकड़ रहा था। पंजाब में जोरों से काम चल रहा था सूफी जी जेल से छूट कर निजाम हैदराबाद गये। जहां निजाम ने उनका बहुत स्वागत किया और उनको यहां तक माना कि उनके रहने के लिये एक अच्छा मकान बनवा दिया पर आप उसमें एक दिन भी न रहे।

आप पंजाब में चले गये वहां ६०) रु० मासिक पर हिन्दुस्तान पत्र' में कार्य करना स्वीकार किया । सूफी जी को दूसरे पत्र दो-दो सौ रुपये तक मासिक देने को तैयार थे। परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया, आप नौकरी करके अपने विचार स्वातन्त्र्य का अपहरण करना नहीं चाहते थे। हम पहले बता आये हैं कि सूफी जी बड़े वाक्-पटु और बुद्धिमान थे आपका प्रभाव तुरन्त ही लोगों पर पड़ जाता था। सरकार आपको इस गुण के कारण जासूसी-विभाग में रखना चाहती थी और उसके पुरस्कार स्वरूप १०००) रू० मासिक वेतन भी देने को तैयार थी। पर आपने इसे स्वीकार न किया और दरिद्रता को अपना चिर-संगिनी बनाया जो स्वतन्त्र प्रकृति के होते हैं उनके लिये यदि परतन्त्रता में कुबेर का खजाना भी मिल जाय तो वह उनके लिये मिट्टी के समान है। स्वतन्त्रता में दरिद्रता भी प्यारी होती है। राणा प्रताप ने स्वतन्त्रता के लिये दरिद्रता का आश्रय लेना स्वीकार किया। परतन्त्रता में रह कर राज्य सुख भोग की लिप्सा न की। इसी प्रकार सूफी ने लालच को अपने पास फटकने न दिया।

उन्हीं दिनों पंजाब में भारत माता नामक एक सभा स्थापित हुई। सूफी जी उसमें खूब काम करने लगे। थोड़े ही दिन में धड़ पकड़ शुरू हो गई सूफी जी अपने मित्रों सहित नैपाल चले गये। वहाँ श्री युत जंग बहादुर जी से उनका परिचय हो गया जो शायद नैपाल के उस समय गवर्नर थे। जंग-बहादुर जी उनकी प्रतिभा पर मुग्ध थे। कभी-कभी बात की बात में सूफी से कह उठते कि तुम व्यर्थ में गुलाम देश में अपना जीवन गंवा रहे हो।

आश्रय देने के कारण जंग बहादुर पदच्युत कर दिये गये और एक लिखने के अभियोग में सूफी जी भी पकड़ कर लाहौर लाये गये। पीछे से निर्दोष होने पर छोड़ दिये गये। कुछ समय तक सूफी जी ने कुछ काम नहीं किया और इधर-उधर सिर्फ भ्रमण ही करते रहे। १९०९ ई० में पंजाब से पेशवा नामक अखबार निकाला उन दिनों बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। सरकार भयभीत थी कि उसका असर कहीं पंजाब में भी न फैल जाय। सरकार ने पंजाब में दमन चक्र चलाना शुरू कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप लाला हरदयाल को देश छोड़ना पड़ा, सूफी जी को भी अपने दो साथियों के साथ ईरान को चला जाना पड़ा। एक साथी ज्याउलहक ने तो इनाम के लालच में आकर सूफी को पकड़वाना चाहा पर उसका वार खाली गया और स्वयं उल्टा पकड़ा गया।

सरकार ने ईरान में भी सूफी जी की खोज करने में कोई कोर कसर न उठा रक्खी। एक स्थान पर घेर भी लिये गये। पर व्यापारियों की सहायता से एक के अन्दर बैठकर चुप-चाप निकल गये। इस तरह वे अंग्रेजों के चंगुल से उस बार कठिनाई से बच सके। एक बार ये अमीर के घर में घेर लिये गये घर की तलाशी हुई। अमीर ने उन्हें बुरका उढ़ाकर जनानखाने में बैठा दिया तलाशी होने पर जब बुरका उठाकर देखने लगे तो मुसलमान कटने मरने को तैयार हो गये परिणाम यह हुआ कि वे बच गए कुछ समय बाद जब उन्होंने समझ लिया कि अब किसी प्रकार का भय नहीं रहा तो वे खुल्लम-खुल्ला अपना काम करने लगे। उन्होंने 'आबे हयात' नामक

एक फारसी पत्र निकाला, बहुत पुस्तकें लिखी और लोगों को अंग्रेज की कूटनीति का प्रदर्शन किया। उस समय ईरान में अंग्रेज लोग भी धीरे-धीरे अपना प्रभुत्व जमाते चले आ रहे थे। उस समय सूफी साहब ने धीरे-धीरे अपनी बड़ी ख्याति कर ली थी और थोड़े ही समय में वे ईरान के सर्व प्रिय व्यक्ति हो गये थे। लोग उन्हें आका (स्वामी) सूफी कहते थे।

सन् १६१५ ई० में अंग्रेजों ने ईरान पर पूरा प्रभुत्व जमाना चाहा। कुछ लड़ाई झगड़े हुए, खलबली मच गई। कुछ लोग पकड़े जाने लगे चारों तरफ घेरे डाले गये। उसी एक घेरे में सूफी जी भी पकड़ लिये गये, उन्हें मृत्यु-दण्ड की आज्ञा हुई। मृत्युदण्ड की की आज्ञा से सारा ईरान क्षुब्ध हो गया बहुत से आदमियों ने सरकार के पास डिपुटेशन भेजा कि सूफी जी को छोड़ दिया जाय, पर सब बेकार, सरकार ने एक भी न सुनी।

सुनाया गया कि सूफी जी कल सुबह गोली से उड़ा दिये जायेंगे। सूफी कोठरी में में बन्द थे, वे योग-क्रिया जानते थे, उन्होंने योग-क्रिया द्वारा अपने प्राण छोड़ दिये। सबेरे जब कोठरी खोली गई तो देखा गया कि वे समाधि में लीन हैं उनके प्राण पखेरू कब उड़ गये इसका किसी को पता न था। ईरान में उनके लिये बड़ा शोक मनाया गया। सूफी जी दफनाये गये और कबर बनाई गई।

आज भी प्रति वर्ष उनकी कब्र पर बड़ी धूमधाम से मेला लगता है। कबर बनाने का उद्देश्य यह नहीं था कि उन्होंने यवन-मत स्वीकार कर लिया था प्रत्युत कबर एक स्मृति चिन्ह

के रूप में है। सूफी जी यद्यपि हिन्दू थे, पर मुसलमान लोग उनको हिन्दुओं से कम आदर नहीं करते थे। ईरान का बच्चा-बच्चा उनकी मृत्यु से दुखित था। वे महान थे, उनका हृदय उदार था। वे एक समाज के व्यक्ति न थे, उनको तो सारा संसार प्यारा था और वे संसार मात्र के नहीं, अपितु प्राणीमात्र के प्रेमी थे, देश-भक्त सूफी का नाम स्मरण करके आज भी लोग श्रद्धा-भक्ति से शिर झुका देते हैं।

भाई बालमुकुन्द

सिक्ख जाति अपनी वीरता और साहस-पूर्ण कार्यों के लिये आज से नहीं अपितु प्राचीन काल से प्रसिद्ध है, सिक्खों ने जिस निर्भयता से यवन सम्राटों का सामना किया, वह इतिहास के पढ़ने वालों से छिपा नहीं है। गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह और वीर बन्दा वैरागी, को यवनों की चमचमाती तलवार भयभीत न कर सकी। मदान्ध यवनों ने धर्म के नाम जिस तरह रक्त की नदी बहाई है, वह किसी से छिपाई नहीं जा सकती। औरंगजेब का फरमान जारी होता है कि गुरु तेग बहादुर को इसी समय बुलाओ। तेग बहादुर आ गए, कहा गया—यदि जान प्यारी है तो इसलाम धर्म स्वीकार करो। निर्भयतापूर्वक उत्तर मिला—नहीं, नहीं जान प्यारी नहीं, धर्म प्यारा है। यह शरीर तो नश्वर है, इसके रहने और

न रहने से क्या बिगड़ता है। धर्म के न रहने से तो लोक और परलोक दोनों बिगड़ जायंगे। क्या वीरों की जान भी कहीं जाया करती है? गुरु तेगबहादुर ने जान के बदले धर्म का सौदा किया। देर ही क्या थी, रुण्ड-मुण्ड पृथ्वी पर लोटने लगा। एक नहीं, दो नहीं, किन्तु बहुत लोगों ने हंसते-हंसते धर्म के ऊपर अपने प्राणों को निछावर कर दिया। इसके बाद ही उनके परम-भक्त एवं साथी वीर मतिराम की बारी आई। उनसे भी वैसा ही प्रश्न हुआ, वहाँ भी साहस की क्या कमी थी? धर्म स्वीकार न करने पर आज्ञा दी गई, इसको भी कष्ट दे देकर मारो। बात की बात में आरा चलने लगा और निर-पराध मतिराम मृत्यु के घाट उतार दिये गये। सिक्ख जाति में उस दिन से इस वंश को बड़े गौरव से देखा जाने लगा, जो दूसरों के लिये अपने प्राणों की बलि देता है, उसे भाई, शब्द से स्मरण करते हैं। उन्हें और उनके खानदान को उस दिन से सब लोग भाई कहने लगे। भाई वंश ने विप्लव के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। आज भाई परमानन्द जी भी उन्हीं की सन्तान हैं और वीर भाई बालमुकुन्द जी उन्हीं की संतान थे।

भाई बालमुकुन्द का जन्म लगभग १८८५ ई० में पंजाब प्रान्त के झेलम जिले में चकवाल के पास किसी गाँव में हुआ था। भाई जी चकवाल की ही ओर बाल्यावस्था में शिक्षा पाते रहे। इसके पश्चात् डी० ए० वी० कालेज में लाहौर आकर पढ़ने लगे और वहीं से बी० ए० पास किया। बालमुकुन्द बड़े होनहार बुद्धिमान और शुद्ध विचारों के आदमी थे। बी० ए० पास करके

के बाद ही उन्होंने देश सेवा का व्रत धारण किया। उस समय राष्ट्रीय आन्दोलनों के सूत्रधार एवं संचालक पंजाब में स्वर्गीय लाला लाजपतराय माने जाते थे। भाई बालमुकुन्द लाला जी के तत्कालीन आन्दोलन अछूतोद्धार में काम करने लगे। काम भी कहाँ कहाँ सुदूर पर्वत प्रदेशों में जहाँ अन्धकार का ही राज्य है। जहाँ अविद्या का इतना प्रचार हो कि उनकी बात समझने वाला एक भी न मिले। उस पर कट्टरता का मोह जाल उसको दुगुना कठोर बनाये हुए था। जिस समय में अछूतों के नाम लेने से भी धर्माधिकारी अपना धर्म चला जाना समझ रहे थे। उस समय भाई बाल मुकुन्द ने बड़ी तत्परता से काम किया। वीर पुरुष कठिनाइयों से कब घबराते हैं उन्होंने असुविधाओं के होते हुए भी अपना कार्य बड़े साहस और उत्साह से जारी रक्खा। इस गुण के कारण उनके सहकारी उनकी प्रशंसा करने लगे।

इन दिनों पंजाब में विप्लव दल का संगठन कार्य सरदार अजीतसिंह और सूफी अम्बाप्रसाद कर रहे थे। लाला हरदयाल जी एम० ए० के इंगलैण्ड से भारत लौट आने पर विप्लव के कार्य में एक जान सी आ गई। कुछ ही समय में कितने ही नवयुवक उनके अनुयायी हो गए। इन्हीं में वीर भाई बाल-मुकुन्द भी थे। कुछ समय बाद लाला हरदयाल जी के यूरोप चले जाने से और अतीजसिंह तथा सूफी अम्बाप्रसाद के ईरान चले जाने से बालमुकुन्द जी दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द जी से राजनैतिक शिक्षा ग्रहण करने लगे। कुछ ही दिन बाद लाहौर के दल का कार्य भार बाल मुकुन्द जी पर पड़ा और वे दत्तचित्त

होकर कार्य करने लगे। सन् १९१३ ई० के मई मास में पंजाब के सभी सिविलियन पदाधिकारी अंगरेज लाहौर के लारेन्स गार्डेन में एकत्र हुए। उन सबको उड़ा देने के लिये वहाँ एक बम रक्खा गया पर वह दैवेच्छा से सिवाय एक हिन्दुस्तानी चपरासी के और किसी का घातक न बन सका। सब बाल बाल बच गए। बम के रखने वाले का पता न चला। सन् १९१२ ई० में लार्ड हार्डिञ्ज पर बम फेंका ही जा चुका था, उसके कारण और सन् १९१३ की मई वाली घटना से चारों ओर कुहराम मच रहा था। तलाशियों की धूम थी कलकत्ता राजा बाजार की तलाशी में श्री अवधविहारी का नाम खुला। उनकी तलाशी से दीनानाथ का पता चला। दीनानाथ ने अपने बयानों में भाई जी का नाम बड़े जोरों से लिया।

उस समय भाई बाल मुकन्द कुछ दिनों से जोधपुर में राज-कुमारों को पढ़ाने का कार्य कर रहे थे। फिर क्या था जोधपुर से भाई जी तथा अन्य कितने ही व्यक्ति गिरफ्तार करके दिल्ली लाये गये। दीनानाथ के बयान के अनुसार बाल मुकुन्द के पास दो बम उस समय भी पाये गये। तलाशी लेते समय यहाँ तक तो किया गया कि गाँव में उनका जो घर था उसकी तमाम जमीन दो दो गज गहरी खोद डाली गई और घर की सारी छतें उधेर कर फेंक दी गईं हालाँकि वहाँ मिलना जुलना कुछ न था।

भाई बालमुकुन्द पर मुकदमा चला। उनके साथ सहानुभूति दिखलाना किसी का साधारण काम न था। उस समय 'बन्दे-मातरम्' कहने वाला सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था।

वकीलों का हाल यह था कि क्रान्तिकारियों को सलाह देना तो दूर की बात थी उनको घर के भीतर घुसने नहीं दिया जाता था। तथा धक्के देकर निकाल दिया जाता था। उस समय भाई परमानन्द जी एम० ए० ने उनके मुकदमें की ओर से पैरवी की उन्होंने काफी प्रयत्न किया। परन्तु उसका कोई फल न निकला फैसला सुनाया गया। अन्त में वहीं मृत्यु दंड दिया गया। मृत्यु दण्ड सुनकर बालमुकुन्द प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा। उसने कहा—मुझे आज अपार हर्ष हो रहा है कि "मैं आज माता के चरणों पर अपने को वहीं चढ़ा रहा हूं जहां हमारे पूज्य पुरखा वीर भाई मतिराम जी ने स्वतंत्रता के लिये अपने प्राणों की आहुति दी थी"। फांसी के दिन बाल मुकुन्द हंसते-हसते फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए और अपनी मानव-लीला समाप्त कर दी। भाई परमानन्द ने प्रीवी कौंसिल तक अपील की थी पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा।

उसी दिन पंजाब में सतीत्व की भी एक उज्ज्वल किरण चमकती हुई दिखलाई पड़ती थी। भाई बाल मुकुन्द की गिरफ्तारी से एक वर्ष पूर्व उनका विवाह हुआ था। उनकी स्त्री का नाम रामराखी था। वह बहुत ही सौम्य स्वभाव की स्त्री थी। साथ ही परम सुन्दरी भी थी। पति पत्नी में अद्भुत प्रेम था। पति की गिरफ्तारी सुनकर रामराखी व्याकुल हो उठी, उसी दिन से वह पेड़ के आश्रित लता के समान नित्य प्रति सूखने लगी। पहले वह जेल में मिलने गई। पूछा भोजन कैसा मिलता है ? उत्तर में जेल की बालू मिली रोटी दिखलाई गई। उस दिन से रामराखी ने भी घर आकर वैसा ही भोजन करना आरम्भ कर

दिया। दुबारा मिलने गई। पूछा—आप सोते कहाँ हैं। उत्तर में अन्धकार-मयी कोठरी और दो कम्बल दिखाये गये। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी। उस दिन से उसने सोने का भी वैसा ही प्रबन्ध किया। एक दिन वह अपने कमरे से बाहर खड़ी थी रोने का कोलाहल सुन पड़ा। उसने बिना पूछे ताछे सब समझ लिया। भीतर आई स्नान किया। वस्त्र-भूषण धारण किया। खूब हंसी और प्रसन्न चित्त घर में ही एक चबूतरे पर जाकर बैठ गई। ऐसी बैठ गई कि फिर उठी ही नहीं। यह दशा देखकर सब आश्चर्य में आ गये और दांतों में अंगुली दबा कर रह गये पर वह तो अपने पति के साथ जाकर अमर हो गई। संसार में ऐसे दम्पति विरले ही होते हैं। जो दूसरों के लिये अपना सब कुछ उत्सर्ग करके स्वर्गलोक को चले जाते हैं।

सत्येन्द्र कुमार बसु

मुजफ्फपुर के हत्याकांड के सम्बन्ध में अनेक नवयुवक बंगाल में गिरफ्तार किये गये और वे सब अलीपुर जेल में रक्खे गये। भारत माँ के यह सच्चे सुपुत्र जेल में बड़ी मस्ती और आनन्द के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसी समय अचानक एक दिन लोगों को मालूम हुआ कि विश्वास घातक नरेन्द्र गोस्वामी सरकारी गवाह बन गया है। और वह समिति का भंडा फोड़ कर देगा। सब लोग यही सोचने लगे कि नरेन्द्र

का अन्त कैसे हो ? और कौन इस कठिन काम को अपने ऊपर लेकर समिति की रक्षा करे।

सत्येन्द्र नाथ वसु पहिले मेदिनीपुर जेल में थे उनको अपने बड़े भाई की बन्दूक बिना लाइसेन्स के उपयोग करने के अपराध में दो वर्ष की कठिन सजा मिली थी। वह मेदिनीपुर जेल से अलीपुर जेल में लाये गये उसी समय यह कठिन समस्या लोगों के सामने उपस्थित थी। सरकार ने इन पर भी मुजफ्फरपुर कांड के षड्यंत्र में शामिल होने का दूसरा मुकदमा चलाया मुकदमा चलने लगा और सरकार सिर तोड़ परिश्रम इस मुकदमे के बारे में कर रही थी।

सत्येन्द्रनाथ वसु स्वदेशी आन्दोलन के कर्णधार थे। इस आन्दोलन में मेदिनीपुर की समिति ने जिस तत्परता के साथ कार्य किया था, उसके कारण वसु बाबू का नाम सारे बंगाल में प्रसिद्ध हो गया था। सत्येन्द्र बाबू ही इसके प्रधान संचालक थे। जब अलीपुर जेल में आये तो इनको नरेन्द्र गोस्वामी के विश्वासघात की बात का पता चला। इस बात को सुनकर इस वीर का हृदय तिलमिला उठा इसने भी विश्वासघात को प्राण दंड देने की अनुमति प्रदान की।

कुछ लोगों को छोड़ कर शेष सब लोग नरेन्द्र की हत्या के पक्ष में थे। अब प्रश्न सामने यह था कि नरेन्द्र की हत्या कैसे हो सकेगी और कौन इस कठिन काम को अपने हाथ में लेगा ? नरेन्द्र के साथ सदा शरीर-रक्षक रहते हैं और वह सबसे अलग रक्खा जाता है हत्या का भार लेना कोई आसान काम न था, जान बूझ कर जलती हुई अग्नि में में कूदना था।

अत्यन्त विश्वस्त और कार्य कुशल वीर के बिना यह गुरुतर भार किस को दिया जा सकता था। अंत में सबने यही निश्चय किया कि इस महान् कठिन कार्य का भार सत्येन्द्र कुमार पर ही छोड़ा जावे। सत्येन्द्र ने सब के अनुरोध से यह भार स्वीकार कर लिया और वह वीर बड़ी प्रसन्नता से इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गया।

इधर सत्येन्द्र बीमार पड़ गये और बीमारी हालत में अस्पताल पहुँचाये गये। अस्पताल में ही नरेन्द्र से उनकी भेंट हुई। नरेन्द्र पर अपना विश्वास प्रकट करने के लिये सत्येन्द्र ने अपने को भयभीत प्रकट किया और कहा कि मैं भी सरकारी गवाह बन कर तुम्हारा साथ दूँगा।

बाहर से पत्र व्यवहार करके सत्येन्द्र ने कहीं से रिवाल्वर प्राप्त किया। समाचार पाने पर कन्हाईलाल दत्त भी पेट दर्द का बहाना करके समय पर अस्पताल में पहुँच गये। और दोनों नरेन्द्र की घात में रहने लगे। नरेन्द्र गोस्वामी एक दिन अपने यूरोशियन शरीर रक्षकों के साथ सत्येन्द्र के पास अस्तपाल में आया और दुमंजिले की सीढ़ी के पास बैठ गया। सत्येन्द्र ने अपने सामने आये हुये शिकार को छोड़ना उचित न समझकर कुर्ते के नीचे हाथ रख कर गोली चलाई। पहली बार केवल आवाज होकर रह गई। दूसरी बार सत्येन्द्र ने कुर्ते से बाहर हाथ निकाल कर दूसरा फायर किया। दूसरा वार करते देखकर नरेन्द्र के शरीर रक्षक ने सत्येन्द्र को पकड़ लिया, तब सत्येन्द्र ने उस पर भी वार किया। जब शरीर रक्षक के हाथ में चोट लगी तब उसने सत्येन्द्र को छोड़ दिया और अलग जाकर खड़ा

हो गया। यह देखकर नरेन्द्र नीचे उतरने लगा। नरेन्द्र को नीचे उतरते देखकर कन्हाईलाल दत्त ने उस पर वार किया। गोली नरेन्द्र के पैर में लगी किन्तु नरेन्द्र भागता ही चला गया। कन्हाई लाल ने भी उसका पीछा किया। सत्येन्द्र भी दौड़कर कन्हाई लाल के साथ हो गये। दोनों गोली चलाने लगे। नरेन्द्र के क्षण भर में प्राण पखेरू उड़ गये।

दोनों पर मुकदमा चलाया गया और दोनों को फाँसी की सजा सुनाई गई। २० नवम्बर सन् १९०८ ई० को कन्हाई लाल को फाँसी दी गई। इसकी फाँसी से कलकत्ते में बड़ा जोश उत्पन्न हुआ, इस लिये सरकार ने सत्येन्द्र की लाश को जनता को नहीं दिया।

सत्येन्द्र की लाश जेल के अन्दर जलाई गई। उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करने का भार उनकी वृद्ध माता के आग्रह से श्री अविनाश चन्द्रराय पर पड़ा जो कि उनके पड़ोसी थे। उन्होंने लिखा है कि हम लोग अलीपुर जेल के फाटक पर पहुँच गए। किन्तु हममें से उस भयानक दृश्य के देखने की किसी में भी क्षमता न थी। इसलिये हम लोग भीतर नहीं गये। थोड़ी देर बाद जेल के एक अँगरेज सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आकर कहा—आप लोग भीतर जा सकते हैं फाँसी हो गई। सत्येन्द्र वीरतापूर्वक मरा। कन्हाई लाल दत्त बहादुर था। लेकिन मुझे मालूम होता है कि सत्येन्द्र उससे भी कहीं अधिक वीर था"। उसने फिर कहा—कि मुझसे और सत्येन्द्र से प्रायः बातें हुआ करती थीं वह अन्त समय तक प्रसन्न दिखाई दिये। मैंने कहा—"सत्येन्द्र तैयार हो जाओ। उसने उत्तर दिया, "मैं तैयार हूँ" और वह मुस्करा

दिया तथा वह फाँसी के तख्ते पर मस्ती के साथ झूमता हुआ चला गया। अन्त में उसने कहा—मेरे मरने से क्या हानि? हमारे जैसे हजारों के मरने पर ही देश का उद्धार होगा। हमारी मृत्यु शोक मनाने के लायक नहीं, किन्तु आनन्द मनाने लायक होगी।

सत्येन्द्र की माँ ने और अविनाशराय ने उनका संस्कार किया और उस वीर पुरुष की अमर गति पर दो आँसु निकाल कर चले आये। सत्येन्द्र का नाम भारत के उद्धारक वीरों में बड़े आदर से लिखा जायगा।

तरुण करतार सिंह

बंगाल की भाँति, पंजाब को भी तरुण करतार सिंह ऐसे १८ वर्ष के नवयुवक को भारत माता के चरणों में निछावर करने का गौरव प्राप्त है। जिन्होंने गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दी। स्वतन्त्रता के लिये संसार के ऐश्वर्यों पर लात मार दी। अपने सुखमय जीवन की आहुति दे दी। सारा जीवन कण्टकमय बना लिया। कठिन से कठिन विपत्तियों को झेला किन्तु मुख से चीख निक-लना दूर रहा आह तक न निकली।

तरुण करतारसिंह का जन्म सन् १८९६ ई० में पंजाब प्रान्त के लुधियाना जिले के एक सराबा नामक ग्राम में हुआ

था। इसके पिता का नाम सरदार मंगलसिंह था। करतारसिंह जब बालक ही थे तब इनके पिता का स्वर्गवास हो गया था। सरदार मंगलसिंह अपने पुत्र का वीरोचित कार्य न देख सके। बालक करतार सिंह का पालन पोषण उनके दादा ने किया। जब करतार कुछ बड़े हुये और पढ़ने के लायक हो गये तो इनके दादा ने गाँव के एक प्रायमरी स्कूल में पढ़ने के लिये बैठाल दिया। प्रायमरी पास करने के बाद अँगरेजी पढ़ने के अभिप्राय से लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। करतार सिंह हाई स्कूल में पढ़ने लगे किन्तु उनका मन वास्तव में पढ़ने में न लगता था। लड़ने झगड़ने और उत्पात करने में उनका जी बहुत लगता था खेल कूद में सब से आगे रहते। कभी कभी उनके उत्पात से सहपाठी असन्तुष्ट हो जाते थे किन्तु फिर यह अपनी हँसमुखी वाणी से उनको प्रसन्न कर लेते थे। इनकी निर्भीकता और चंचलता के कारण सभी इनको चाहते थे और लोग हँसी में इनको 'अफलातून' कहते थे। नेतृत्व के विलक्षण चिन्ह इनमें प्रारम्भ से ही दिखलाई पड़ते थे।

एक दिन करतार सिंह ने उमंग में आकर पढ़ना छोड़ दिया और लुधियाना से उड़ीसा को चल दिये। यहाँ आकर इन्होंने एन्ट्रेन्स पास किया और रेवेनशा कालेज में भर्ती हो गये। कालेज की पढ़ाई करते हुये उन्हें अन्य पुस्तकों के पढ़ने का शौक भी हो गया, जिनसे भविष्य के जीवन में एक विशेष परिवर्तन हुआ। सामयिक समाचार पत्रों के पढ़ने और पुस्तकों के देखने से उन्हें देश के प्रति प्रेम उत्पन्न होने

लगा और चित्त में स्वतन्त्रता की लहर पैदा हुई क्रान्तिकारी भावों ने हृदय में अपना प्रभाव जमाया। करतार सिंह कालेज की पढ़ाई छोड़ कर विदेश जाने की इच्छा करने लगे। अपनी इस इच्छा को यह अधिक समय तक दबा न सके और घर वालों से अमेरिका जाने की प्रबल आकाँक्षा प्रकट की। घर वालों ने भी कोई अड़चन न डाल कर उन्हें जाने की आज्ञा दे दी करतार सिंह अमेरिका जा पहुँचे।

यहाँ आकर करतार सिंह की आँखें खुल गईं। पराधीन देश का प्राणी जब स्वतन्त्र देश के वायु मण्डल में पहुँच जाता है तो उसे एक प्रकार का विशेष अनुभव होने लगता है, उस आनन्द को वह शब्दों से प्रकट नहीं कर सकता किन्तु आनन्द की अनुभूति तो उसे होती है। ठीक यही दशा करतारसिंह की हुई। वहाँ की स्वतन्त्रता का प्रत्येक झोंका करतार के हृदय पर आघात प्रत्याघात करने लगा। वहाँ के दृश्य भारत की परतन्त्रता पर उन्हें अतिशय ग्लानि पहुँचाने लगे। जब उन्हें कोई हिन्दू या कुली कह कर बुलाता तो उनको मर्मान्तक वेदना होती।

उस समय अमेरिका में यहाँ से गये हुये हिन्दुस्तानी कुली आदि नामों से सम्बोधित किये जाते थे। अमेरिका वालों की धारणा थी किन्तु 'हिन्दुस्तान' कुलियों और मजदूरों की भूमि है। इन सब बातों के कारण धीरे-धीरे उनके भावों में भयंकर तूफान आने लगा। वे निश्चय करने लगे किसी प्रकार इस दशा से भारत को मुक्त करना चाहिये। भारत को जिस तरह भी हो स्वतन्त्र करना होगा और उसको बलवान बनाना होगा यही

विचार उनके मस्तिष्क में रात दिन उधम मचाने लगे, हृदय में एक प्रकार की उथल-पुथल मचाने लगे।

वीर करतार सिंह अपनी हृदय की व्याकुलता से बेचैन हो गये। रात दिन वे यह सोचने लगे कि 'देश कैसे स्वतन्त्र हो' उन्होंने मजदूरों का संगठन करना शुरू कर दिया। भारतीय मजदूरों में भारत के और स्वतन्त्रता के भाव भरने लगे। उन्होंने हर एक को समझाया कि इस गुलामी से जिसमें पशु से भी बदतर व्यवहार किया जाता है मर जाना कहीं अच्छा है। इस तरह वे बड़े जोरों से काम करने लगे। इसी समय पंजाब से निकाले हुए देशभक्त सरदार भगवान सिंह अमेरिका जा पहुँचे, उनके मिलने से इनका उत्साह बहुत बढ़ गया और दुगुने उत्साह से काम करने लगे। अमेरिका में कुछ दिन रह कर इनकी इच्छा भारत आने की हुई और इन्होंने भारत को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाना निश्चय किया।

सन् १९१४ ई० में जब कामा गाटा मारू जहाज भारत को रवाना हुआ तो करतार सिंह भी चल दिये। जहाज को गोरों के अतिशय कष्ट देने के कारण लौटना पड़ा। करतार सिंह मि० गुप्ता तथा एक अन्य साथी के साथ हवाई जहाज पर जापान आ गये और प्रवासी भारतीयों में विप्लव-वाद का प्रचार खूब जोरों से करने लगे। इधर यूरोप में महायुद्ध छिड़ गया, इसलिये करतार सिंह ने भारत में आने की और भी ठान ली।

सन् १९१४ के सितम्बर मास में कोलम्बो पहुँचे उस समय अमेरिका से आने वाले 'भारत रक्षा' कानून की गिरफ्तारी में

आ जाते थे, बहुत कम आदमी स्वतन्त्र रूप से भारत में आ पाते थे। लेकिन करतार सिंह किसी भांति सुरक्षित स्वदेश आ पहुँचे। भारत में आते ही जोरों से काम शुरू हुआ। करतार सिंह संगठन और प्रचार के काम में जुट गये और चारों ओर दौड़ना शुरू किया। इसी समय करतार सिंह ने बंगाल के सुपरिचित प्रसिद्ध नेता से मिले उन्होंने इन्हें उपदेश दिया कि आप अपने संकल्प के अनुसार काम करते जाइये ठीक समय आते ही बंगाल तुम्हारी सहायता करेगा। करतारसिंह पंजाब लौट आये और प्रचार कार्य करने लगे।

पंजाब में विप्लव की आग धीरे-धीरे अपना उग्र रूप धारण करती जा रही थी। पंजाब से नित्य लोग बाहर जाया और आया करता थे। पंजाब में उस समय कोई इस दल का नेता नहीं था। जिसके देख रेख में वहाँ का संगठनात्मक रूप से कार्य होता, इसलिये उन्हें एक योग्य नेता की जरूरत थी। क्रान्तिकारियों में रासबिहारी का नाम विशेष आदर से उस समय लिया जाता था और वही उत्तरीय भारत के उस समय के प्रधान नेता समझे जाते थे। पंजाब दल का एक मनुष्य विप्लव की तैयारी का समाचार लेकर रासबिहारी के पास भेजा गया, उस समय रास बिहारी बनारस में गुप्त भाव से रहते थे। पंजाब के कार्य कर्त्ताओं ने यह कहला भेजा था कि रास बिहारी की हमें बहुत जरूरत है। कई कारणों से उस समय रास बिहारी पंजाब न जा सके। इसलिये उन्होंने शचीन्द्रनाथ सान्याल को पंजाब की गति विधि का निरीक्षण करने को भेजा। शचीन्द्र

नाथ सान्याल उस समय रास बिहारी के दाहिना हाथ समझे जाते थे।

शचीन्द्र नाथ पंजाब को चल दिये। उस समय नवम्बर का महीना खतम हो रहा था, शीतकाल अपना प्रभाव जमा रहा था, प्रातःकाल होते ही गाड़ी लुधियाना पहुँची शचीन्द्र के एक परिचित मित्र के साथ एक सिक्ख युवक प्रतीक्षा में खड़े हैं मित्र से पूछने पर पता चला कि ये करतार सिंह हैं। आपस में खूब बातचीत हुई। करतार सिंह ने बताया कि लुधियाने में दो तीन सौ मनुष्य जमा हैं जो काम करने के लिये भिन्न-भिन्न स्थानों में भेजे जायेंगे। ये लोग गुरुद्वारे में अध्ययन करने के बहाने एकत्र होते थे।

शचीन्द्र नाथ के साथ करतार सिंह जालन्धर गये। वहाँ पर कुछ मित्रों के साथ एक बगीचे में बहुत बातचीत हुई। यहाँ करतार सिंह ने कहा कि हमें तो रास बिहारी से काम है। शचीन्द्र नाथ ने उत्तर दिया कि रास बिहारी आपके अनुरोध से आने को तैयार हैं किन्तु वे आने से पहले यहाँ की दशा का पूरा पूरा हाल जान लेना चाहते हैं। पंजाब का हाल जानकर सान्याल लौट आये। पंजाब में स्कीम के अनुसार काम होने लगा। शस्त्र इकट्ठे किये जाने लगे फौजी छावनी में सिपाहियों को तोड़ने का प्रयत्न किया जाने लगा। धन और शस्त्र की कमी को पूरा करने के लिये डाका डालने का प्रश्न आया।। कुछ लोग इससे सहमत थे कुछ प्रतिकूल। किन्तु बहुमत से डाका डालने का ही निश्चय रहा।

करतारसिंह उन दिनों दिन रात इतना परिश्रम करते थे कि क्या कहा जाय? रोजाना साइकिल पर चालीस-चालीस पचास-पचास मील देहातों में जाकर प्रचार करना लोगों को समझाना ही उनका काम था। तारीफ यह थी कि जितना ही वे परिश्रम करते थे उतना ही उत्साह, साहस और स्फूर्ति बढ़ती जाती थी।

एक बार पुलिस इन्हें गिरफ्तार करने किसी गाँव को पहुँची। वे गाँव में तो नहीं किन्तु गांव के समीप ही थे। जब उन्हें पुलिस का आना मालूम हुआ तो गांव में ही आ गये पुलिस पहचानती न थी करतार सिंह बच गये यह सब साहस के ही कारण ऐसा करते थे।

२१ फरवरी १९१५ का दिन तमाम भारत में एक साथ विप्लव करने के लिये निश्चित थी। लाहौर छावनी में तो करतार सिंह ने मेगजीन पर हमला करने की तैयारी कर ली थी। एक सिपाही को मिला लिया था जिसने कुंजियों के देने का वायदा कर दिया था पर लाचारी से जिस दिन वे अपने कुछ साथियों के साथ वहाँ पहुँचे तो एक दिन पहले ही उस सिपाही का तबादला हो चुका था। इससे करतार की हिम्मत न टूटी। उन्होंने समस्त भारत का दौरा किया और पिंगले के साथ मेरठ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि स्थानों में घूमे। परन्तु यह बतलाना व्यर्थ है कि किस प्रकार कृपाल सिंह की कृपा से युग परिवर्तनकारी दिन भारत के इतिहास के पत्रों से हमेशा के लिये निकल गया। उसने भण्डा फोड़ कर दिया। सारी मेहनत पर पानी फिर गया। गिरफ्तारियां होने लगीं।

करतारसिंह के सारे काम पर तुषार पड़ गया। इस घटना से रासबिहारी व करतार सिंह को असह्य वेदना हुई। इसका अनुमान इससे ही किया जा सकता है कि लाहौर के एक मकान में हताश मुर्दे की तरह रास बिहारी नीचे मुंह किये हुये लेटे थे और करतार सिंह भी वहीं आकर बिना कुछ बोले एक दूसरी खाट पर एक ओर मुंह करके गिर रहे। कोई किसी से बोलता न था। सब अपनी बेबशी पर पड़े पड़े पछता रहे थे, और भीतर ही भीतर एक दूसरे के हृदय की आंतरिक वदना का अनुमान कर रहे थे। यह घटना तो हो चुकी किन्तु अब सबके सामने यह प्रश्न आया कि किस प्रकार ये लोग अपने को बचावें। अस्तु रास बिहारी तो बनारस चल दिए और करतार सिंह अपने दो साथियों सहित भारत की सीमा लाँघ पश्चिम की ओर चल दिये। जब ब्रिटिश भारत के बाहर पहुँचे, तब कुछ शांति मिली, नदी के किनारे बैठ कर आराम किया और चने चबा कर उदर ज्वाला शांत की।

करतार सिंह इस विपत्ति में भी मस्ती के साथ गा रहे थे। उनके हृदय में यह भावना जागृत हुई कि हमारा इस तरह से भाग कर अपनी जान बचाना कदापि उचित नहीं। आज हमारे साथी गिरफ़्तार हो रहे हैं और हम अपने छिपाने की चिन्ता में बेचैन हैं। उसी समय सबका निश्चय हुआ जो कुछ बदा होगा, होगा भारत लौट चलना चाहिए। तथा फंसे हुये साथियों को छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। कोई युद्ध शुरू हो जाय तो लड़ते लड़ते प्राण दे देना चाहिए। सब लौट पड़, सर गोधा के पास आकर फिर से अपना वही काम शुरू कर दिया।

गिरफ्तारियाँ बंद कब थीं। वहीं पकड़ कर जंजीरों से जकड़ दिये गये। १६ वर्ष का शेर पींजड़े में बंद कर दिया गया करतार सिंह प्रसन्न थे। निर्भय थे, प्रसन्नता उनके मुख पर अठखेलियां कर रही थीं। अंग-अंग से मस्ती टपक रही थी। उनके मुख की श्री देखने वाले शत्रु-मित्र सभी को मुग्ध कर देती थी।

जेल में रक्खे गये, वहां भी वे अपना काम करते रहे, अशांत को शांति कहां। एक दिन ६०-७० कैदियों को एकत्र किया और निश्चय हुआ कि ४-५ को छोड़कर सभी लोग जो निर्दोष हैं, भाग जांय तथा वे लोग भागकर सीधे लाहौर छावनी पहुँचे, वहाँ से मेगजीन पर कब्जा करके उसी समय विद्रोह कर दें। परन्तु दुर्भाग्य वश भेद खुल गया और सोचा हुआ कार्य न हो सका। उस समय जेल में लोहा काटने के पेंच तक आ चुके थे, पर सब व्यर्थ था। सब लोगों को बेड़ियां पहना दी गईं और कोठरियों में बन्द कर दिया गया। तलाशी ली गई तो करतारसिंह की सुराही के नीचे पृथ्वी में गड़े हुए सब पेंच मिल गये।

मुकदमा चला। करतारसिंह ने अदालत में सब बातें स्वीकार कर लीं। जज आश्चर्य से सारा बयान सुनता रहा, पहले दिन उसने कुछ भी नहीं लिखा और करतारसिंह से बोला—देखो समझ जाओ, इस प्रकार सब अपराध स्वीकार करने से मुकदमा बिल्कुल बिगड़ जायगा। करतार ने कहा—"फाँसी से अधिक आपके पास क्या है? हम उससे नहीं डरते" जज ने विवश होकर कहा—"जाओ करतारसिंह आज

मैंने तुम्हारी कोई बात नहीं सुनी, कल फिर सोच समझ कर बयान देना" दूसरे दिन भी उन्होंने वही बयान दिया। सारा दायित्व अपने ही सिर लिया। उसकी इस शान्त वीरता पर सभी मुग्ध हो गए। डेढ़ वर्ष तक मुकदमा चला अन्त में फाँसी की आज्ञा हुई। फाँसी के समय करतारसिंह ने कहा—"मैं फांसी को अधिक अच्छा समझता हूँ ताकि शीघ्र जन्म लेकर फिर भारत के स्वतन्त्र के युद्ध में आऊँ और बार-बार ऐसे ही फाँसी पर लटकाया जाऊँ तथा फिर जन्म लूँ जब तक कि भारत स्वतन्त्र न हो मैं इसी प्रकार की मृत्यु चाहता हूँ। यदि पुनर्जन्म में मुझे ईश्वर ने पुरुष न बनाकर स्त्री बनाया तो अपने कोख से विद्रोही पुत्र पैदा करूँगा।"

करतार की वीरता और दृढ़ता की प्रशंसा सभी कर रहे थे। करतार के चेहरे पर दिव्य आभा झलक रही थी। फांसी के तख्ते पर झूलने से पहले जब उसका वजन लिया गया तो वह पहले से १० पौं० अधिक था। उसके शरीर में उत्साह, मन में उमंग, मुख पर हास्य, आँखों में प्रेम, हृदय में साहस भरा हुआ था। सचमुच वह देवता था मनुष्य रूप में वह रोता आया हँसता गया।

करतार जहाँ इतना वीर था वहाँ वह आचार का बड़ा पवित्र था। करतारसिंह ने एक बार कुछ साथियों के साथ एक गाँव में डाका डाला। एक मालदार के घर में माल लूटा जा रहा था। घर में एक युवती भी थी। एक आदमी की नियत उस पर बिगड़ गई उसने उस युवती का हाथ पकड़ लिया। वह घबड़ाकर चिल्लाई। चिल्लाने की आवाज सुनकर करतार

रिवाल्वर भरे वहां आ पहुँचे। और उस व्यक्ति के माथे का निशाना लगाकर बोले "अरे नीच तूने भीषण अपराध किया है, इसकी सजा मृत्यु-दण्ड है। पर विशेष परिस्थितियों के कारण तुझे छोड़ता हूँ, तू इस युवती के चरणों पर सिर रख कर क्षमा मांग और कह बहिन! मुझसे भारी अपराध हुआ है। तथा उसकी माता के चरणों में सिर रख कर कहो—माँ मुझे इस नीचता के लिये क्षमा करो। यदि ये तुझे माफी दे देंगी तो तेरी प्राण रक्षा होगी वर्ना तुझे गोली से उड़ा दिया जायगा। उसने वैसा ही किया मां बेटियों ने उसे क्षमा कर दिया और मन्त्र मुग्ध सी होकर बड़े प्रेम से मां करतारसिंह से बोली "बेटा तुम धर्मात्मा और सुशील युवक होकर ऐसे खराब काम में योग देते हो। रुंधे गले से करतार ने उत्तर दिया—"माँ रुपये के लोभ से नहीं" अंगरेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए शस्त्रों की जरूरत है रुपये बिना शस्त्र कहाँ मिलें, इसी से लाचार होकर इस नीच कर्म पर उतारू हुए। माँ ने कहा—"बेटा इस लड़की की अभी शादी करनी है, कुछ तो देते जाओ करतार ने सब धन माता के सामने रखकर कहा—"माता जितना चाहो ले लो" माता ने थोड़ा धन ले लिया और बड़ी खुशी से सब धन उठाकर करतार की झोली में डाल दिया कि जाओ बेटा! तुम्हें सफलता प्राप्त हो।

फांसी के समय जो लोग इससे मिलने आये उसने सबसे यही कहा—साहस पूर्वक मरने से मुझे बागी का खिताब देना, अगर भविष्य में कभी कोई मेरी याद करे तो "बागी करतार सिंह" कह कर मेरा परिचय दिया करना।

करतार ने मरते समय अपने दादा से कहा—"मैं बिस्तरे पर पड़े रहकर मृत्यु पाना अच्छा नहीं समझता। मुझे तो इसी मृत्यु में आनन्द है।

करतारसिंह सचमुच बड़ा बहादुर था। वह भारत का उज्ज्वल सूर्य था जो मध्यान्ह में आने से पूर्व ही भयानक बादलों में जा छिपा, और अस्ताचल की ओर चल दिया।

यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

विधि का विधान बड़ा अद्भुत है। यह रत्नगर्भा वसुन्धरा अक्षय रत्नों की खान है। आज से नहीं, अपितु चिरकाल से यह वसुधा अमूल्य रत्नों की प्रसविनी है। वह अपने गर्भ से अनेक अब तक कितने रत्न उत्पन्न कर सकी है इसका ज्ञान करना असम्भव है। प्रकृति की भारत-भूमि पर विशेष कृपा है। जहां हमारी यह भूमि उज्ज्वल रत्नों की खान रही है, वहां इसमें नर रत्नों की सृष्टि भी बराबर होती रही है। इस देश में वीरों की, गुणियों की कभी कमी नहीं रही। हरिश्चन्द्र से त्यागी युधिष्ठिर से धर्मात्मा, भीष्म से ब्रह्मचारी, भीम से बली, अर्जुन से धनुर्धारी, अभिमन्यु से वीर बालक शंकर से विद्वान्, बौद्ध से वीतराग, राणाप्रताप से स्वतन्त्रता प्रिय, वीर शिवा जी से बहादुर, गुरु गोबिन्द से रणवीर, बन्दा से स्वामी भक्त इस भूमि को अपने गुणों से अलंकृत कर गये हैं। इसके साथ

भी अनेक वीर निःस्वार्थ भाव से भारत की परतन्त्रता की शृंखला को शिथिल करने के लिए फांसी के झूले पर हंसते-हंसते झूल गये। अमेरिका को यदि वाशिंगटन, फ्रांस को नैपोलियन, इटली को गैरिबाल्डी और इंगलैण्ड को नेल्सन पर अभिमान हो सकता है तो भारत माँ के चरणों पर अपने को बलिदान करने वाले वीरों का अभिमान भारत को है।

सब मनुष्यों में सब प्रकार के गुण और शक्तियाँ समान रूप से नहीं हुआ करती हैं। परन्तु प्रत्येक गुण से मनुष्य समाज, देश और जाति का उपकार एवं यश संवर्धन कर सकता है। जिनमें सभी प्रकार के गुणों का संमिश्रण होता है। वे महापुरुष कहाते हैं। समाज की वे विभूति हैं। देश और समाज उन पर गर्व कर सकता है। हमारे यतीन्द्र बाबू इसी प्रकर के महान पुरुष थे।

विप्लव युग के अग्र कार्य-कर्त्ताओं में बंग प्रान्त के तत्कालीन सुप्रसिद्ध नेता श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी का नाम यदि सर्वोच्च रक्खा जाय तो कदाचित अनुचित न होगा। बंगाल प्रान्त में उस समय क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित हो चुकी थी। बहुत से नवयुवक उसमें अपने प्राणों की आहुति दे चुके थे। काम भी जोरों पर हो रहा था किन्तु कोई संगठन न था इस कारण शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था। उस शक्ति को केन्द्रित करने के लिये एक असाधारण पुरुष की आवश्यकता थी। जो इस प्रकार का काम करते हैं वे उस युग के प्राण स्वरूप होते हैं। यतीन्द्र बाबू भी उस समय के आन्दोलन के प्राण-

स्वरूप थे। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं अदम्य शक्ति से विभिन्न दलों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

यतीन्द्र बाबू का जन्म बंगाल प्रान्तीय के नदिया जिले के काला-ग्राम नामक गांव में सन् १८७८ ई० में हुआ था। पांच वर्ष की उम्र में ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया, पितृ-सुख से वे वंचित हो गए। उनके पालन-पोषण का भार उनकी स्नेहमयी माता पर आ पड़ा। माता उनका अत्यन्त लाड़ प्यार से पालन करती थीं और अपनी शक्तिभर उसको किसी प्रकार का कष्ट न होने देती थी। माता की हार्दिक इच्छा थी कि यतीन्द्र बाबू एक सुयोग्य बालक हों, सुयोग्य बनाने के लिये उनकी माता ने अथक परिश्रम किया। वे नहीं चाहती थीं कि मेरा पुत्र कायर या गुलाम हो। वे अपने पुत्र को सदा उपदेश देती रहती थीं कि हे पुत्र संसार में सदैव निर्भर होकर विचरना संसार की मोह माया में न फंसना। हमेशा अपने चरित्र-बल को बनाये रखना"। यतीन्द्र बाबू पर उनके उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा और अन्त समय तक उनके जीवन में उनकी मां के उपदेशों का प्रतिबिम्ब झलकता रहा। उन्होंने अपना जीवन-उत्सर्ग तक कर दिया पर आदेश पालन न छोड़ा, देश पर मर मिटने वाले पुत्र कैसे होते हैं इसको प्रत्यक्ष दिखला दिया।

यतीन्द्र की शिक्षा उनके मामा के घर पर ही हुई। क्योंकि उनकी माता अपने भाई के पास ही रहती थीं प्रारम्भिक शिक्षा होने के बाद यतीन्द्र बाबू ने स्कूल में नाम लिखाया और मैट्रिक पास करके एफ० ए० की शिक्षा प्राप्त की। बुद्धि तीव्र होने पर भी यतीन्द्र का मन वैसा पढ़ने में न लगता था जैसा कि खेलने

कूदने और लड़ने-झगड़ने में लगता था। उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल लाठी चलाना तरह-तरह के व्यायाम करना आदि कामों को सीखा। वे बदन के फुर्तीले थे। घोड़े की सवारी उन्हें अत्यन्त प्रिय थी। पैदल चलने का भी उन्हें खूब अभ्यास था। चलती हुई गाड़ी पर चढ़ जाना और उससे उतर पड़ना उनके बायें हाथ का खेल था। साइकिल पर ७०-७५ मील चढ़े चले जाना एक आसान बात थी। कुश्ती लड़ना, तैरना और घूमना उन्हें अच्छा लगता था। शरीर से भी हृष्ट-पुष्ट थे। बदन गठा हुआ, सुन्दर रोबीला और गौर-वर्ण का था।

एक बार यतीन्द्र को एक खेल सूझा वे जंगल को गये, अचानक उनसे एक चीते से भेंट हो गई, वे डरे नहीं, किसी उपाय से जीवित चीते को पकड़ कर शहर में ले आए जिसे देख कर सब अवाक् रह गये। यतीन्द्र बाबू के साहस का परिचय पाठकों को इसी से लग सकता है। वे प्रायः इसी तरह के कामों में लगे रहते थे, उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। एक दिन माँ ने यतीन्द्र बाबू से कहा—बेटा, इस तरह कब तक जीवन-निर्वाह होगा। मैंने तुम्हें कितने कष्टों से पाला है। इस बुढ़ापे में भी मुझे चैन नहीं है तुम कुछ मेरे तरफ ध्यान तक नहीं देते। तुम्हें कुछ कमाना चाहिए जिससे हमारा और तुम्हारा काम चल सके माता की करुणा भरी बातों को सुन कर उनका हृदय पिघल गया और उन्होंने नौकरी करने की ठानी, किन्तु नौकरी भी जल्दी कहाँ मिलती है। उन्होंने शार्ट-हैंड सीखना प्रारम्भ कर दिया, बुद्धिमान थे ही, कुछ ही समय में होशियार हो गये और कलकत्ते में एक दफ्तर में नौकर हो गये। कुछ समय बाद

वहाँ से मुजफ्फरपुर चले गये, वहाँ एक वैरिस्टर के यहाँ काम करने लगे। इसी समय उन्हें एक सरकारी नौकरी मिल गई और वे वहाँ से गवर्नर के आफिस में आ गये।

यतीन्द्र बाबू नौकरी तो करते रहे, परन्तु उनका हृदय उसके अनुकूल न था। उनके हृदय में तो स्वतन्त्रता की आग सुलग रही थी वे कब तक उसे दबा सकते थे, उनके स्वाभाविक वीरोचित गुण राख से आच्छादित अग्नि के समान थे, जो समय पाकर चमकने का अवसर देख रहे थे। नौकरी में रहते हुये भी वे इतने बेफिक्र थे कि उनको किसी बात की परवाह न थी। एक बार वे ट्रेन में जा रहे थे, तीन चार अँगरेजों से कुछ झगड़ा हो गया। आपने पकड़ कर सब की अच्छी मरम्मत की। वे चारों अँगरेज साधारण नहीं थे पूरे सैनिक थे। यतीन्द्र पर इस हमले का मुकदमा चला, पर सैनिकों ने अपनी हँसी समझ कर उसे उठा लिया। साहस, पराक्रम, निर्भयता और अक्खड़पन के कारण पुलिस की इन पर कड़ी निगाह रहने लगी। कई बार इनके अफसर तक इनकी इस प्रकार की अनेक शिकायतें गयीं। जिसका परिणाम यह हुआ कि एक दिन इनको अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। नौकरी छोड़ने पर एक जगह ठेकेदारी की उसमें काफी रुपया पैदा किया, पर सब उड़ा दिया। उन्होंने रुपयों को किसी बुरे काम में नहीं लगाया अपितु उसे दीन दुःखियों की सहायता में लगा दिया। इसी तरह वे अपना जीवन व्यतीत करने लगे। इधर इनकी दृष्टि देश की दशा की ओर गयी और वे देश का काम करने का विचार करने लगे। उस समय देश को स्वतन्त्र करने का काम

ही देश की सच्ची सेवा समझी जाती थी। नवयुवक समाज के सामने केवल एक यही लक्ष्य था कि प्यारा देश विदेशियों के शासन से मुक्त हो, और विशेष कर बंगाल के नवयुवक समाज का तो यही ध्येय था कि विदेशी शासन का जितनी जल्दी भारत से अन्त किया जा सके उतना ही श्रेयस्कर है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं, बंगाल प्रान्त ने सबसे प्रथम अँगरेजी सभ्यता, अँगरेजी भाषा और अँगरेजी भावों को अपनाया और उन्होंने ही उसके विषाक्त परिणाम का अनुभव किया। इसी के फलस्वरूप बंगाल में क्रान्ति के भाव जागृत हुये।

पूर्व बंगाल में छोटे-छोटे कई दल स्वतन्त्र रूप से विप्लव का प्रचार कर रहे थे। इन विभिन्न दलों को एक सूत्र में बाँध कर कार्य करने का प्रयत्न बहुत दिनों से किया जा रहा था। किन्तु कोई भी ऐसा शक्तिशाली नेता न था जो सभी पर अपना अखण्ड प्रभाव जमा सकता। दूसरी बात यह थी कि दूसरे दल अपना अस्तित्व खोना नहीं चाहते थे। इन दलों के मुखिया अपना आधिपत्य बनाये रखने के लिये मिलने के विरोधी थे। मनुष्य स्वभाव से ही दूसरे की आधीनता स्वीकार करना पसन्द नहीं करता परन्तु जब वह समझ लेता है कि मुझसे अधिक प्रभावशाली शक्ति मेरे सामने उपस्थित है तो विवश होकर उसे उसकी आधीनता स्वीकार करनी पड़ती है, उसका लोहा मानना पड़ता है उस समय व्यक्तिगत स्वार्थ, और आत्मा का मिथ्याभिमान दूर हो जाता है। सारी कुत्सित भावनायें अपना सिर नहीं उठा सकती हैं। यतीन्द्र बाबू का नेतृत्व इसी ढङ्ग का था कि जिसके आगे बंगाल की बड़ी से बड़ी शक्ति ने शिर झुका

दिया, जिसके प्रभाव के आगे छोटे-छोटे दल अपना अस्तित्व स्थिर रखने में असमर्थ हो गये। उन्हें अपना आत्म-समर्पण उसके आगे करना पड़ता, छोटे-छोटे दल एक में मिल गये। यद्यपि यतीन्द्र बाबू कोई धुरन्धर विद्वान न थे किन्तु इनके चरित्र के प्रभाव से बहुतेरे युवकों ने आत्म-समर्पण कर दिया था।। इनमें जैसा अतुल साहस था वैसे ही ये उदार भी थे। यतीन्द्र बाबू जिस समय इस क्षेत्र में आये, वे बड़े सुन्दर एवं भव्यरूप में प्रकट हुये। इस तरह यतीन्द्र बाबू का सबके मन पर आधिपत्य कर लेना कुछ मामूली शक्ति का काम न था।

बंगाल में इस समय बलवे का उद्योग करने वाले दो ही दल थे इनमें से एक के मुखिया यतीन्द्र बाबू थे। दूसरे दल के दो भाग किये जा सकते हैं एक बंगाल के बाहर काम करता था और दूसरे बंगाल के भीतर ही अपना कार्य-क्षेत्र बना रक्खा था, बंगाल के बाहर की कुल जिम्मेदारी रासबिहारी को दी गई किन्तु बंगाल के भीतर जो काम हो रहा था उसका भार किसी एक व्यक्ति पर न था।

यतीन्द्र बाबू कलकत्ते के पथरिया घाट मुहल्ले में प्रायः रहा करते थे। वे एक दिन अपने मकान पर आये हुये थे, वहीं और भी कई भागे हुये क्रान्तिकारी थे। उसी समय एक परिचित आदमी आया। जिसके विषय में गुप्तचर होने का सन्देह हो चुका था। इसके आते ही बिना कुछ सोच विचार के, बिना कुछ देखे भाले एक आदमी ने उस पर गोली चला दी और सब भाग खड़े हुये। यद्यपि गोली चलाने वाले यतीन्द्र न थे सर्वथा उससे दूर थे पर मरने के समय गोली खाने वाले

व्यक्ति ने यही इजहार बयान दिया कि यतीन्द्र ने मेरे गोली मारी है। अब तक पुलिस यतीन्द्र पर कड़ी दृष्टि अवश्य रखती थी किन्तु कोई ऐसा सबूत न था जिससे वह उन्हें पकड़ सकती। उस व्यक्ति का बयान क्या मिला पुलिस को मन चाही मुराद मिली। पुलिस उनके फिराक में रहने लगी।

इस घटना के बाद यह निश्चय हुआ कि यतीन्द्र बाबू किसी ऐसे स्थान पर रक्खे जायँ जहाँ कि वे सुरक्षित रह सकें स्थान निश्चित हो गया। जब जाने का समय आया तो यतीन्द्र बाबू गद्गद स्वर से बोले—भाई हम लोग यह समय लेकर जीवन संग्राम में उतरे थे कि जीवन-मरण में सदैव साथ रहेंगे और परस्पर एक दूसरे की विपत्ति में सर्वदा साथ देंगे। अपने साथियों को विपत्ति में छोड़ कर मैं अकेला बाहर जा सकूंगा यह मुझसे न हो सकेगा। वहाँ जाकर मुझे सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने की अपेक्षा यह कहीं सुखकर मालूम होता है कि मैं अपने सब साथियों के साथ भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरूँ। हम तो सिपाही हैं जो हर समय मृत्यु की प्रतीक्षा में तैयार खड़े हैं इसलिये सभी एक संग रहना चाहते हैं। जिससे एक प्रभावशाली मुठभेड़ की जा सके, अन्त में उनकी यही इच्छा पूर्ण हुई।

बालेश्वर के निकट यतीन्द्र बाबू अपने पाँच साथियों के साथ एक अड्डा बना कर रहने लगे। पुलिस को उनके अड्डे का पता चल गया, उन्हें भी इसका पता लगा। पुलिस ने उन पर धावा मारा, वे यदि चाहते तो अपनी जान भाग कर बचा सकते थे, पर उनके उस समय दो साथी वहाँ मौजूद न

थे और जैसा कि उनकी प्रतिज्ञा थी वे उन्हें छोड़ कर अपनी जान बचाना नहीं चाहते थे। वे तो अपने साथियों के जीवन और अपने जीवन में कोई भेद न समझते थे। अस्तु बहादुर यतीन्द्र रात ही में अपने शेष साथियों के सहित दूर घने जंगल में उन्हें लेने के लिये चल दिये। ऊबड़ खाबड़ पहाड़ी रास्ता फिर अनजाना मार्ग, अंधेरी रात उसमें भी बारह मील जाकर वापस आना असंभव ही कार्य था। इन सब बातों की परवाह न करके वे अपने काम में जुट गये। वे असाध्य साधन में प्रवृत तो हो गए पर रात बीत गई। सवेरा हो गया। इस समय पुलिस का पूरा प्रबन्ध हो चुका था। गाँव-गाँव में रास्तों-रास्तों पर पुलिस की चौकियां बैठ गई थीं। सबको जगह-जगह खबर कर दी गई थी कि एक भयंकर डाकुओं का दल उनके इलाके में छिपा हुआ है। जिसे पकड़ने या पकड़वा देने से काफी इनाम मिलेगा। इससे गाँव वाले भी सावधान हो गये।

यतीन्द्र बाबू अपने साथियों सहित चल दिये इतने पर भी उन्होंने जरा सी भी हिम्मत न हारी। रात दिन नदी नालों को पार करते हुए थक गए थे भूख भी सता रही थी भूख के मारे प्राण व्याकुल हो रहे थे। नदी पार करते समय एक मल्लाह से बोले—भाई! इस समय तुम्हारे पास कुछ हो तो खिलाकर हम लोगों के प्राणों की रक्षा करो, न हो थोड़ा भात ही बना दो पर उस मल्लाह को तनिक भी दया नहीं आई और न उसने अपनी हाँड़ी तक दी कि वे चावल पका कर खा लेते उसे तो यह समाया हुआ था कि कहीं इनका धर्म न चला जाय। वाह रे हिन्दू जाति! जिसमें चीटियों तक को भोजन

दिया जाता है और उनके प्राणों की रक्षा की जाती है, उसने मनुष्यों के प्राणों की रक्षा करना अपना धर्म न समझा। मनुष्य के प्राण चाहे चले जायं पर धर्म न जाय। उस मल्लाह ने अपने जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों की पूरी रक्षा की और उनको नरक जाने से बचाया। धन्य है ऐसे मनुष्यों को।

पुलिस पीछे लगी थी। ज्योंही ये लोग एक गांव में पहुँचे पुलिस ने धावा बोल दिया। सशस्त्र पुलिस जंगल के दोनों ओर से "सर्च लाइट फेंकते हुये यतीन्द्र को ढूंढ़ रहे थे। इसी तरह सारी रात बीत गई। सबेरा होने को हुआ अब क्या हो सकता था। आखिर यतीन्द्र ने भी रक्षा का कोई उपाय न देख अपने चारों साथियों सहित सैकड़ों सिपाहियों से मोर्चा लिया। यह दृश्य भी देखने योग्य था। पाठक उसकी कल्पना स्वयं कर सकते हैं कि कई दिनों के भूखे प्यासे, थके मांदे पांच बहादुर सैकड़ों सशस्त्र सिपाहियों से मोर्चा ले रहे थे। चारों ओर से धुआंधार गोलियों की बौछार हो रही थी। चारों दिशाएं कड़ाकड़ और धड़ाधड़ की घनघोर ध्वनि से गूंज उठी थीं, आकाश मण्डल धूल से धूसरित हो रहा था। भयंकर जंगल में धांय-धांय के सिवाय कुछ सुनाई नही पड़ता था। पांच शेरों ने सैकड़ों के दाँत खट्टे कर दिये। वे बेचारे कहाँ तक लड़ते घंटों तो लड़े, अन्त में एक गोली साथी चित्रप्रिय के लगी वह सदा के लिये धराशायी हो गये।

यतीन्द्र भी काफी घायल हो चुके थे जब उन्होंने देखा कि मेरा भी अन्त है तो शेष तीन साथियों को बड़ी आग्रह-पूर्वक आत्म-समर्पण करवा दिया। खुद तो मूर्छित होकर गिर पड़े।

प्यास से गला सूख रहा था। क्षीण स्वर से 'पानी' का शब्द सुन कर पास ही पड़ा हुआ खून से सराबोर मनोरंजन सरोवर से पानी लेने चल दिया यह हालत देख कर पुलिस अफसर का हृदय भी पिघल गया आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। मनोरंजन को रोक कर वह स्वयं तालाब से पानी भर कर ले आया। उस समय वहां कोई बर्तन न था। पुलिस को अपनी टोपी में पानी लाना पड़ा था। पानी लाकर यतीन्द्र के मुख में छोड़ा गया। गले में पानी पहुँचते ही यतीन्द्र को कुछ चेत हुआ। पुलिस अफसर को सामने देखकर यतीन्द्र बोले "इस मामले में कुल उत्तरदायित्व मेरा है इन मेरे साथियों ने केवल मेरे आदेश का पालन किया है।"

गिरफ्तार होने के बाद यतीन्द्र कटक के अस्पताल में रक्खे गये। उनका शरीर इतना क्षीण हो गया था कि उनमें कुछ भी शक्ति न थी। उन्होंने कुछ ही दिनों में अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया और सदा के लिये बन्धन से मुक्त हो गये। मनोरंजन और धीरेन्द्र देव को फांसी हो गई। ज्योतिस को आजन्म काला पानी हुआ, पर उन्हें भी शान्ति कहाँ थी। वह भी उन्हीं में जा मिले।

यतीन्द्र के मरने के बाद जो सेडीसन कमेटी की सरकारी रिपोर्ट निकाली, उसमें यतीन्द्र पर अनेक दोषारोपण किये गये थे। उसपर डकैतियाँ डालने और डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट की हत्या का अभियोग लगाया गया था। रिपोर्ट में लिखा गया कि यतीन्द्र ने मोटर डकैतियां कीं। गार्डन रीच में जो डाका पड़ा था। उसमें यतीन्द्र और विपिन गांगुली मुखिया थे। इसमें बीस हजार का माल लूटा गया और बीस हजार का दूसरा डाका एक सौदागर

के यहां भी पड़ा। इसके बाद पाथरिया घाट में एक खून हुआ।"

इसमें सन्देह नहीं यतीन्द्र को जब रुपयों की आवश्यकता हुई होगी तो उन्होंने जरूर डाके डलवाये होंगे। परन्तु यह सब काम उन्होंने देशहित की भावना से प्रेरित होकर किये थे। क्योंकि जब वे रास बिहारी से काशी में मिलने आये थे। उस समय क्रान्ति-दल का काम कुछ धनाभाव के कारण शिथिल हो रहा था तब यतीन्द्र ने उनको वचन दिया था कि मैं धन की पूर्ति करूँगा और इस काम के चलाने के लिये काफी धन से मदद करूँगा। उन्होंने अल्प समय में इतना धन एकत्र भी कर दिया था कि जिससे वर्षों तक विप्लव का काम चल सकता था।

यह सब कुछ यतीन्द्र ने अपने लिये नहीं किया वह तो देश के लिये उत्पन्न हुआ था और वह देश के लिये मरा। कर्त्तव्य परायणता ही उसके जीवन का प्रधान लक्ष्य था। वह धार्मिकता का अवतार था। दीन दुःखियों के प्रति उसके हृदय में दया थी। वह आदमी होकर भी देवता था, जो स्वतन्त्रता का सन्देश लेकर आया था। और उसे पूरा करके इस लोक से चला गया।

श्री विष्णु गणेश पिङ्गले

श्री पिंगले का जन्म पूना के एक पहाड़ी प्रदेश में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गणेश पिंगले था। यह महाराष्ट्र थे। महाराष्ट्र जाति भी अपनी वीरता के लिये दक्षिण में प्रसिद्ध है।

अतीत का इतिहास इनकी वीरता, साहस, और चतुरता का साक्षी है। उत्तरीय वीर भारतीयों की भांति दक्षिण के इस नव-युवक में भी क्रान्ति के भाव उत्पन्न हुए। देशभक्ति और देश प्रेम किसी जाति विशेष की निजी सम्पत्ति नहीं, यह तो सबकी वस्तु है जो उसकी उपासना करता है वह उसी की हो जाती है।

विष्णु गणेश पिंगले को लोग संक्षेप में वी० जी० पिंगले के नाम से पुकारते थे। विष्णु गणेश पिंगले बचपन से ही बड़े फुर्तीले तेज प्रकृति के तीक्ष्ण बुद्धि बालक थे। बचपन में इन्होंने मराठी पढ़ी और उसके साथ-साथ संस्कृत भाषा का भी अभ्यास किया इनके पिता बड़ी धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे। उनका प्रभाव इन पर पड़ा, और ये भी धार्मिक-ग्रन्थों को बड़ी रुचि के साथ पढ़ा करते थे और धार्मिक कथा-वार्ता में काफी मनोयोग दिया करते थे। इन्होंने बालकपन में ही पूरी गीता कण्ठ कर ली थी। इससे पिंगले की बुद्धि प्रखरता का पता चल सकता है। गीता के अध्ययन का इन पर इतना प्रभाव पड़ा कि ये घरबार छोड़ कर साधू बन गये, यह नहीं कहा जा सकता कि पिंगले को सचमुच वैराग्य उत्पन्न हो गया था किन्तु इसमें सन्देह नहीं सांसारिक बातों में इनका मन न लगता था। साधु होकर पिंगले घर से निकल पड़े। घर से निकल कर कुछ समय तक भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते रहे। इस बीच में वे बहुत से तीर्थों में गये और तरह-तरह के लोगों से मिले। बुद्धिमान और विद्वान थे ही। भ्रमण से ज्ञान परिपक्वता आ गई कुछ समय इसी तरह भ्रमण करके घर लौट आए। कुछ

इनके हृदय में इस तरह से जीवन-यापन करने के प्रति घृणा उत्पन्न हुई। इन्होंने अंग्रेजी का अभ्यास करना प्रारम्भ किया और थोड़े ही समय में उसका पर्य्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया।

मित्रों के सम्पर्क से इञ्जिनियरिंग पढ़ने के लिये अमेरिका जाने की इच्छा उत्पन्न हुई। घर वालों के सामने जब यह प्रश्न आया तो उन लोगों ने भी अनुमति दे दी और किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया। पिंगले घर वालों से बिदा लेकर अमेरिका के लिये चल दिए। अमेरिका पहुँच कर शिक्षा प्राप्त करने लगे।

इधर अमेरिका के भारतीयों में विप्लव की आग भड़क रही थी, वहाँ पर भी एक खासा विप्लववादियों का दल बन गया था, वे लोग जगह-जगह संगठन और प्रचार का काम कर रहे थे। पिंगले का विप्लववादियों के साथ सम्बन्ध हो गया। पिंगले का पवित्र हृदय क्षुब्ध हो उठा। उनके हृदय में क्रान्ति के विचार लहर मारने लगे। उन्होंने इस सम्बन्ध का तत्कालीन साहित्य का अध्ययन किया, देश की परिस्थिति का अध्ययन किया और वे जब भारत की अन्य स्वतन्त्र देशों से तुलना करने लगे तो उनको अत्यन्त मानसिक क्षोभ रहने लगा। उन्हें भारत की परतन्त्रता अखरने लगी, और जीवन भार मालूम होने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि स्वदेश चल कर विप्लव दल का संगठन करना चाहिए और भारत को गुलामी के बन्धन से मुक्त करना चाहिए व अमेरिका से चल दिये। भारत में आकर उन्हें घर जाने की चिन्ता न हुई, उन्हें तो एक मिनट नष्ट करना अच्छा न मालूम होता था। वे सीधे बंगाल पहुँचे,

वहाँ बंगाल के विप्लववीदल का पता लगाया, पंजाब के क्रान्तिकारियों की परिस्थिति समझाई और दोनों दलों का सम्बन्ध स्थापित किया। वे रासबिहारी से मिले। उस समय उत्तरीय भारत का संचालन-सूत्र रास बिहारी के ही हाथ में था, और उन्हीं के द्वारा समस्त केन्द्रों को आवश्यक सामिग्री पहुँचाई जाती थी पिंगले को पंजाब के लिये बम गोलों की आवश्यकता थी। इसलिये रास बिहारी के दल से उनका सम्बन्ध जोड़ना अनिवार्य था।

शचीन्द्रनाथ साम्याल इधर पंजाब की स्थिति जानने के लिये और वहां की दशा का पूर्णरूप से अध्ययन करने के लिये यात्रा कर रहे थे। उस यात्रा में शचीन्द्र का पिंगले के साथ साक्षात् हुआ। पिंगले ने शचीन्द्र नाथ से पंजाब की सहायता करने को कहा—शचीन्द्रनाथ वचन देकर लौट आये परन्तु निश्चित समय पर किसी के पंजाब से न आने के कारण सहायता न मिल सकी। पिंगले के कारण पंजाब के विप्लवदल में एक प्रकार की जान सी आ गई। रास बिहारी और शचीन्द्र नाथ साम्याल को कुछ-कुछ आशा हो चली थी कि अब इस आन्दोलन में कुछ शक्ति है। पिंगले के मिलने से शचीन्द्र नाथ को एक हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। प्रथम परिचय में शचीन्द्र बड़े प्रभावित हुए थे। बात-बात में वे गीता के श्लोक बोलते थे। उनका तेजस्वी मुख, उनका समुन्नत और बलिष्ठ गौर शरीर, उनकी विलक्षण तीक्ष्ण बुद्धि उनके साहस और उत्साह का प्रत्यक्ष परिचय दे रही थी। उनको देखने से प्रतीत होता था कि इनके हाथों से बहुत कुछ काम हो सकेगा।

पिंगले बंगाल से लौट कर दो दिन काशी में ठहरे वहीं यह निश्चय हुआ कि बम गोले तो काफी मिल सकेंगे पर उनके बनाने में काफी खर्च होता है इसलिये रुपयों की आवश्यकता है। अतः पिंगले पंजाब जाकर सब हाल पता लगावें। पिंगले पंजाब पहुँचे करतार सिंह पृथ्वीसिंह आदि वहाँ के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं से मिले और एक सप्ताह में वहाँ का सब समाचार जानकर लौट आये। चलते समय पंजाब के कार्य-कर्त्ताओं ने पिंगले से यह कहा था कि जिस तरह भी हो रास-बिहारी को आप जरूर लेते आइयेगा काशी आकर पिंगले ने रास बिहारी से अनुरोध किया कि आपको एक बार पंजाब चलना होगा। रास बिहारी तो पंजाब उस समय न जा सके किन्तु पिंगले और शचीन्द्रनाथ सान्याल ने पंजाब की यात्रा की। शचीन्द्र पंजाबी बोली नहीं जानते थे किन्तु पिंगले पंजाबी बोली से परिचित थे क्योंकि अमेरिका में इनसे पंजाबियों से बहुत साथ था। इन लोगों ने थोड़े समय वहाँ ठहर कर पंजाब को संगठित किया।

पिंगले दक्षिणी थे किन्तु अपनी कार्यक्षमता और साहस के बल पर पंजाब पर अपना नेतृत्व जमाये हुये थे। उस समय पंजाब विप्लव आन्दोलन के प्राणस्वरूप तरुण करतार सिंह और पिंगले ही थे। शचीन्द्र के काशी लौट आने पर और पूरी पंजाब की व्यवस्था समझाने पर रास बिहारी पंजाब गये। पंजाब में २१ फरवरी विप्लव का दिन पहिले से ही नियत था। वह धीरे-धीरे समीप आने लगा। लोगों में अपूर्व उत्साह था उस दिन की बाट बड़ी प्रतीक्षा एवं उत्सुकता से जोही जा रही

थी। सारा प्रबन्ध किया जा चुका था। काम बड़े जोरों पर था। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक जोरों की क्रांति की आयोजना हो चुकी थी। परन्तु अदृष्ट को कौन जानता है, कौन जानता है कल क्या हो जायेगा? देश द्रोहियों की काली करतूतों से सारा प्रयत्न विफल हुआ। पुलिस के एक भेदिये ने सारा भण्डा फोड़ दिया। सबकी आशाओं पर पानी फिर गया गिरफ्तारियों का बाजार गर्म हो गया।

करतार सिंह तो सीमा प्रान्त की ओर चल दिये और रास बिहारी तथा पिंगले बनारस की ओर अपने बचाने की दृष्टि से चल दिये। रास्ते में पिंगले के हृदय में अनेक भावनाएं उठने लगीं। वे आशावादी से पीछे हटना अपमान समझते थे। जीवन को विपत्तियों की भभकती आग में झोंक देना उनके लिये खेल था। वीर पुरुष यदि स्वयं कार्य में सफल नहीं होते तो दूसरों के लिये तो मार्ग अवश्य परिष्कृत कर जाते हैं। बनारस लौटते समय रास बिहारी के रोकने पर भी वे मेरठ में उतर पड़े और निश्चय किया कि उद्योग करना चाहिये। मेरठ की छावनी में घुस पड़े और विद्रोह की आग भड़काने लगे।

विश्वासी आदमी को धोखा देना कौन सा बड़ा काम है? एक मुसलमान हवलदार जिसने पिंगले को अपना काफी विश्वास-पात्र बना लिया था। पिंगले उसकी प्रत्येक बात का विश्वास करते थे। उसने इस कार्य में सहयोग देने की बहुत आशा दिलाई। विप्लव के लिये खूब उत्साह दिखाया और सहायता देने का वचन दिया, पर किसे यह मालूम था कि नारकीय उस वीर को फंसाने की चेष्टा में लगा हुआ है। अस्तु पिंगले

उसके कहने में आ गए। अवसर पाकर उसने पिंगले को पकड़ा दिया। जिस समय वे पकड़े गये उस समय उनके पास बड़े भयंकर दस बम थे।

पिंगले पर मुकदमा चला। अदालत से फांसी की सजा मिली १६ नवम्बर १९१५ ई० फांसी का दिन था। पिंगले से पूछा गया—"क्या इच्छा है ?" उत्तर मिला "दो मिनट प्रार्थना करना चाहता हूँ" हथकड़ी खुल जाने पर हाथ जोड़ कर ईश्वर से प्रार्थना की—"भगवान आज हम जिस लिए जीवन की बलि चढ़ा रहे हैं उसकी रक्षा का भार तुम पर है। एक यही इच्छा है कि भारत आजाद स्वतन्त्र हो" यह कहते ही उछल कर फाँसी का फन्दा खुद गले में डाल लिया और इस लोक से चल दिए।

रौलट रिपोर्ट में लिखा था कि पिंगले के पास जो बम मिले थे वे इतने भयंकर थे कि एक बम आधी छावनी के लिये पर्याप्त था।

रास बिहारी ने अपनी डायरी में पिंगले की वीरता और साहस के बारे में स्मरण करते हुए लिखा था कि "यदि मैं यह जान पाता कि पिंगले मुझे फिर न मिलेगा तो उसके लाख कहने पर मेरठ न जाने देता। वह बड़ा बहादुर था और सदैव एक आज्ञाकारी सिपाही की भाँति कार्य करता था।

उसका कार्य काल थोड़ा था किन्तु अल्प समय में ही उसने अपना एक उच्चस्थान बना लिया था।

श्री० सोहनलाल पाठक

समस्त भारत में विप्लव की आग भड़की हुई थी। स्थान-स्थान पर षड्यंत्र रचे जा रहे थे। क्रान्ति का प्रचार करने के लिये चारों तरफ प्रचारक फैले हुए थे वह क्रान्ति की लहर भारत में ही सीमित न रह सकी, अपितु अमेरिका ऐसे सुदूर-वर्त्ती देश के भारतीयों में भी क्रान्ति की आग धधक उठी। तब भला भारत का समीप-वर्त्ती प्रान्त बर्मा उससे कैसे अछूता बच सकता था। यद्यपि स्वाधीनता-प्रिय बर्मियों ने उससे पहिले ही कई बार विप्लव एवं क्रान्ति की आयोजना की थी किन्तु सुदृढ़ संगठन के अभाव से वे सफल न हो सके क्षेत्र तो तैयार था ही बीज बोने की कसर थी।

सन् १९१४ की बात है अमेरिका की 'गदर-पार्टी' की ओर से प्रायः सभी देशों में गदर-प्रचार के लिए आदमी भेजे जा रहे थे। अतः श्री सोहनलाल पाठक भी नारायण सिंह के साथ बर्मा में प्रचार-कार्य करने के लिए भेजे गये। सबसे पहले आप बैंकाक आए और कुछ दिन वहां प्रचार कार्य करने के बाद रंगून आ पहुँचे। यहां पर संगठित रूप से अपना केन्द्र बनाकर कार्य करने लगे।

उत्तरीय भारत में २१ फरवरी सन् १९१४ का दिन गदर के लिये नियत था। जोरों के साथ सभी तरफ तैयारियां हो रही थीं। सभी की आशा थी और पूरी आशा थी कि इस दिन कुछ होकर रहेगा, सारे भारत में एक साथ ही एक बार फिर रण-चण्डी का ताण्डव-नृत्य प्रारम्भ हो जायेगा। भारत के सुवर्ण

दिन फिर सामने आ जायेंगे। कंटका कीर्ण-मार्ग-परिष्कृत हो सकेगा। किन्तु विधि विधान कौन जानता है? किस दिन क्या होगा? २१ फरवरी आई और निकल गई। भेद खुल जाने से उस दिन बलवा न हो सका। चारों तरफ धड़-पकड़ होने लगी। क्रान्तिकारियों के लिये यह कोई नई बात न थी, उन लोगों को भीषण परिस्थिति का मुकाबला करना पड़ा, पर वीर कब इन विपत्तियों से घबराते हैं। उनका तो जीवन ही असफलताओं का जीवन है वे तो 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' की शिक्षा को लेकर इस क्षेत्र में आते हैं वे तो अपना, जीवन विपत्तियों में झोंक देते हैं मर मिटने के लिये पहले तैयार हो लेते हैं तब किसी काम में कदम बढ़ाते हैं।

पाठक जी इस असफलता से तनिक भी हतोत्साह नहीं हुए। हृदय के मानसोद्वेग उनको जरा भी विचलित न कर सके वे पूर्ण उत्साह और उमंग के साथ फिर क्रान्ति की आयोजना में जुट गये। सिपाहियों में विरोध की आग सुलगाने लगे। सिपाहियों द्वारा उनको किसी अनिष्ट की आशंका न थी, किन्तु एक दिन एक जमादार ने उन्हें गिरफ्तार करवा दिया।

सन् १९१४ का अगस्त का महीना था, एक दिन पाठक जी 'मेमियों' के तोपखाने में गदर का प्रचार कर रहे थे। उस देश द्रोही जमादार ने उन्हें अलग ले जाकर पकड़ लिया सोहनलाल जी उस समय खाली न थे, उनकी जेब में तीन पिस्तौलें तथा २७० कारतूसें पास में थीं। जमादार भी अकेला ही था। यदि पाठक जी चाहते तो एक क्षण में जमादार को मृत्यु के घाट उतार देते। पर न मालूम पाठक जी ने उस समय अपनी शक्ति

का प्रयोग क्यों नहीं किया ? उन्होंने उससे छुटकारा पाने की कोई चेष्टा ही नहीं की। सहसा मानों उनका हृदय ही बदल गया, वीरोचित साहस न मालूम कहाँ हवा हो गया। वे उसे उल्टा समझाने लगे और कहने लगे मैं तेरा भाई हूँ, मुझे पकड़वा देने में तुझे क्या मिलेगा ? भाई के साथ विश्वासघात करने में क्या तुझे जरा भी लज्जा नहीं आयेगी। तू कैसा भाई है जो अपने ही हाथ से अपने भाई का गला काट रहा है ? इन बातों से शायद पत्थर भी पिघल जाता, किन्तु वह निष्ठुर तनिक भी न पिघला। वह कैसे पिघल सकता था, उसे तो स्वार्थ ने दबोच रक्खा था। उसने पाठक की एक भी न सुनी और उनको पकड़ कर ले गया।

पाठक जी की आत्मा उदार थी, उन्होंने शत्रु के प्रति भी अपना कर्त्तव्य निभाया, अपने भाई के द्वारा विश्वासघात किये जाने पर भी उन्होंने उसको क्षमा की, और उसके बदले अपने प्राण दे दिये। ऐसा महान् आदर्श भारत के ही इतिहास में मिल सकता है। एक नहीं अपितु अनेक उदाहरण इस बात के प्रमाण स्वरूप हैं।

पाठक जी को जेल में बन्द कर दिया गया और उन पर मुकदमा चला। जेलों में किस निर्दयतापूर्वक कायदों का पालन कराया जाता है यह लोगों को मालूम ही है। जब कोई अधिकारी जेल देखने जाता है तो बड़ा कायदा दिखाते हैं ऊपरी दिखावट में कोई बात उठा नहीं रखते। अगर किसी कैदी से उस समय कोई गल्ती हो जाती है तो उसे भीषण दण्ड दिया जाता है। बेचारों को ताजीब सलामी और उठा बैठी करते-करते

नाक में दम आ जाती है, न करें तो मार सहने के लिये शरीर मजबूत चाहिये। पाठक जी के हृदय पर इस बात का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा, उन्होंने जेल के नियमों से असहयोग कर दिया किसी अधिकारी के आने पर और कैदी तो झुक-झुक कर सलामी करने पर सोहनलाल जी में कुछ अजीब मस्ती थी, वह भला किसे सलाम करते। कहने पर वे उत्तर देते—"जब मैं अंग्रेजों के, राज्य को, अन्यायी और अत्याचारी मानता हूँ तो उनके जेल के नियम ही क्यों मानूँ।"

सलाम करना तो दूर वे किसी अधिकारी के आने पर उठ कर खड़ा होना भी अपनी शान के विरुद्ध समझते थे। पाठक जी किसी के साथ अशिष्टता का व्यवहार नहीं करते थे वे सबके प्रति नम्र-सुशील और मृदुभाषी थे। कोई मामूली से मामूली आदमी हो उससे भी बड़ी सभ्यता के साथ खड़े होकर बात-चीत करते थे। जेलर उनकी इस सभ्यता पर कायल था पर जेल के दकियानूसी कानूनों और कायदों के लिये क्या करता उसे तो उन नियमों का पालन करना और करवाना पड़ता ही था।

एक बार वर्मा के लार्ड महोदय जेल देखने आये। जेलर ने सोहनलाल से प्रार्थना की कि उनके आने पर खड़े होकर स्वागत कर लेना। पाठक जी किसी तरह भी इस अनुरोध को मानने के लिये तैयार न हुये तो अन्त में जेलर ने एक चाल चली और उसने उनकी सज्जनता का दुरुपयोग किया। जिस समय लार्ड महोदय जेल में आये तो जेलर पहले से ही पाठक जी के पास आकर खड़ा हो गया, पाठक जी भी सभ्यता के

कारण उससे खड़े होकर बातचीत करने लगे, इसी समय लाट साहब उनके पास पहुँचे वे खड़े थे ही उनसे भी बातचीत हो गई। अपनी दो घन्टे की बातचीत में लार्ड महोदय ने आपसे बहुतेरा अनुरोध किया तुम माफी माँग कर प्राणदंड से बरी हो जाओ पर आपने एक न मानी। यदि चाहते तो क्षमा माँग कर अपनी प्राण रक्षा कर सकते थे किन्तु वीर ने क्षमा माँगना अपनी शान के विरुद्ध समझा, उनकी तो धारणा थी हमने कोई अपराध नहीं किया है। अपने अधिकारों को माँगना अपनी वस्तु के लिये झगड़ा करना कोई अपराध नहीं है, भारत हमारा है, यदि हम भारत में अपना राज्य चाहते हैं तो यह हमारा अधिकार है अपराध नहीं है। मैं इसलिये क्षमा मांगने के लिये तैयार नहीं हूँ।

अन्त में फाँसी की सजा हो गई और वह दिन आ पहुँचा। सोहनलाल को फाँसी के तख्ते पर खड़ा किया गया उस समय एक अँगरेज मजिस्ट्रेट ने आकर फिर उनसे क्षमा माँगने के लिये अनुरोध किया। कि एक बार केवल मौखिक क्षमा प्रार्थना कर लीजिये छुटकारा हो जायगा। मृत्यु मुंह फैलाये सामने खड़ी है। फांसी का तख्ता तथा रस्सी का फन्दा ठीक हो चुका है। पर वाह रे साहस! उस समय भी उस वीर ने क्षमा न माँगी। ऐसे समय में जेल के सभी कर्मचारी सोहनलाल के मुंह की ओर देखने लगे, थोड़ी देर की निस्तब्धता के बाद उस पागल पुजारी ने मुस्कराते हुये कहा—"फिर वही बात, मैं अँगरेजों से क्षमा माँगूँ, क्षमा ही माँगनी हो तो अंगरेज हमसे क्षमा माँगें। हमने कोई अपराध नहीं किया है जो क्षमा माँगने

जावें। असली अपराधी तो वे ही हैं। " हाँ यदि मुझे बिलकुल ही छोड़ देने का वचन दो तो तुम्हारी बात पर विचार कर सकता हूँ, उत्तर मिला—यह तो अधिकार से बाहर की बात है।

सोहनलाल जी ने उत्तर दिया—"तो अब फिर देर क्यों करते हो तुम अपना कर्त्तव्य पूरा करो और मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करने दो।"

चारों ओर सन्नाटा छा गया, देखते-देखते तख्ता खिंचा रस्सी के झटके के साथ दिव्य शरीर रस्सी से झूलने लगा, साथ ही यह दृश्य भी समाप्त हुआ। इतनी वीरता, इतने साहस और इतने उत्साह से मृत्यु का आलिङ्गन करने वाले विरले ही होते हैं।

कुँवर प्रताप सिंह

स्वतन्त्रता संग्राम के लिये राजपूताना आज से नहीं, अपितु एक अतीत-युग से प्रसिद्ध है। राजपूताना ने स्वतन्त्रता के लिये जितना रक्त बहाया है वह किसी से छिपा नहीं है। हजारों नहीं लाखों राजपूतों ने अपनी जान हथेली पर रख कर अपने प्यारे चित्तौड़ के लिये जानें दीं। राणा प्रताप ने आजीवन कष्टों का सामना किया किन्तु मुसलमानों की पराधीनता स्वीकार न की। उसी वीर राणा के रक्त का संचार हमारे चरित्र नायक कुंवर

प्रताप सिंह में भी मौजूद था वह भी देश की स्वतन्त्रता के लिये उन्मत्त हो उठा।

कुंवर प्रताप का परिवार राजपूताना के गण्य मान्य धनिक जमींदारों में गिना जाता था किन्तु देश सेवा के निमित्त अपनी सारी समृद्धि को नष्ट करना पड़ा और घरबार को छोड़ कर दर दर का भिखारी बनना पड़ा।

दिल्ली षड्यंत्र के मामले में प्रताप और प्रताप के बहनोई पकड़े गये थे किन्तु उनके विरुद्ध कोई विशेष प्रमाण न होने से उनको छोड़ दिया गया। इसके कुछ ही दिन बाद कोटा में ही एक और राजनैतिक मामले में प्रताप के पिता सरदार केशरी सिंह को आजन्म कालेपानी का दण्ड हुआ। केसरी सिंह का स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण उन्हें अंडमन नहीं जाना पड़ा वे देश की जेलों में ही रहे। प्रताप के सगे चाचा के नाम भी वारंट निकला था। इस कारण से सरदार केशरी सिंह और उनके भाई की सारी सम्पत्ति जब्त हो गई और उनके परिवार के लोगों की जायदाद भी इसलिये जब्त की गई कि उनका प्रताप के परिवार से सम्बन्ध था। इस तरह से एक समृद्ध सम्पन्न परिवार मार्ग का भिक्षुक बन गया।

प्रताप की माँ के दुखों की सीमा न थी। आज वह एक सम्बन्धी के पास रहती तो कल दूसरे के पास रहना पड़ता, जब किसी तरह गुजारा होते न देखा तो पिता के घर जाकर अपने दिन काटने लगीं। प्रताप के मामा के घर की हालत भी अच्छी न थी। परन्तु भगवान की विचित्र लीला है, जिससे वे कुछ काम लेना चाहते है या जिसको वे बढ़ाना चाहते हैं उसकी

अथम कष्ट में परीक्षा लेते हैं। प्रताप से भी कुछ उन्हें काम लेना था इसलिये उन्होंने उसको इस प्रकार का कष्ट दिया। इतनी विपत्ति में भी पड़ कर प्रतापसिंह बराबर विप्लव दल में काम करते रहे। इस दल में प्रताप किसी कारण वश सम्मिलित नहीं हुये थे किन्तु वे अपना कर्त्तव्य कर्म समझ कर शामिल हुए थे जो मनुष्य केवल मित्रता निबाहने या मित्रों के अनुरोध के कारण से किसी कार्य में सहयोग देते हैं उनमें वैसा उत्साह नहीं देखा जाता जैसा कि हार्दिक इच्छा से प्रेरित होकर मनुष्य में उत्साह होता है। प्रताप के कार्यों से उसकी मनोवृत्ति का परिचय स्पष्ट मिलता था। वह सदैव प्रसन्न रहता था और जो भी उसके साथ रहा करते थे वे भी आनन्द से अपना समय व्यतीत करते थे। निराशा और भीरुता उसमें तनिक भी न थी। वह कठिन से कठिन काम को बड़ी प्रसन्नता और उत्साह से साथ करता था। प्रताप का मन अपने माता-पिता या परिवार वालों के लिये क्षुभित न होता हो यह बात न थी, वह कभी-कभी अपने प्राचीन वैभव का स्मरण करके विह्वल हो उठता था प्रताप राजपूताना के चारण वंश में से थे। चारण लोग राजपूतों में पूज्य माने जाते हैं। प्रताप के पिता सरदार केशरीसिंह उदयपुर राणा के विशेष प्रिय थे। कहा जाता है कि प्रताप के पिता या दादा उदयपुर के राणा के यहाँ मंत्री पद पर नियुक्त थे। इनकी जागीर मेवाड़ अन्तर्गत शाहपुरी राज्य में थी।

प्रताप का धीरे-धीरे क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध हो चला था वह राजपूताने में अपना कार्य-क्षेत्र बना चुका था। जिस समय

शचीन्द्रनाथ सान्याल उत्तरीय भारत की गति विधि को जानने के लिये रासबिहारी के कहने से भ्रमण कर रहे थे। उसी समय प्रताप भी शचीन्द्र के साथ दिल्ली गए थे। अवधबिहारी की गिरफ्तारी के बाद दिल्ली के विप्लव-दल का भार लक्ष्मी-नारायण और गणेशीलाल पर पड़ा। कुछ दिनों तो इन महानुभावों ने बड़े उत्साह से काम किया। किन्तु थोड़े ही समय में इन लोगों का उत्साह शिथिल होने लगा। और दिल्ली में क्रान्तिदल का काम कुछ आगे नहीं बढ़ रहा था। दिल्ली केन्द्र को मजबूत बनाने की जरूरत थी। शचीन्द्रनाथ सान्याल और प्रतापसिंह नये सिरे से काम चलाने के लिये वहां गये। प्रताप ने दिल्ली में एक मकान किराये पर ले लिया और वहां रहने लगे कभी आवश्यकता पड़ने पर राजपूताना चले आते और कुछ दिनों रह कर दिल्ली चले जाते थे, यही क्रम बहुत समय तक जारी रहा। प्रताप ने राजपूताने से कुछ युवकों को दिल्ली ला कर दिल्ली के विप्लव केन्द्र को सुदृढ़ करने का विचार किया था। काम जोरों पर हो रहा था।

दिल्ली के षड्यंत्र के मामले में प्रताप पकड़े गये और पकड़ कर जेल में भेज दिये गये उन पर क्रान्तिकारी दल में शामिल होने का अपराध लगाया गया और कठिन कारागार का दण्ड हुआ। प्रताप के पकड़े जाने पर पुलिस बहुत दिनों तक अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखा कर उन्हें सब गुप्त बातें प्रकट कर देने के लिए तंग करती रही। पुलिस प्रताप से कहती कि सब गुप्त बातें कह देने पर केवल प्रताप को ही नहीं वरन् उनके पिता को भी छोड़ दिया जायगा, यही नहीं उनके चाचा पर

से भी मुकदमा उठा लिया जायगा। उनकी सारी सम्पत्ति भी फिर लौटा दी जायगी और इस सब के अलावा और भी कुछ पुरस्कार दिया जायेगा।

प्रताप पुलिस की सब बातें सुन लेता पर एक का भी जवाब न देता था। पुलिस अपनी सारी शक्ति लगा कर थक गई, परन्तु उससे कुछ पता न लगा सकी। पुलिस की धारणा थी कि प्रताप से किसी बड़े रहस्य का उद्घाटन हो सकता है जब पुलिस का कोई वश न चला तो उसने प्रताप को तकलीफ देना शुरू किया साम, दाम, दण्ड और भेद सभी तरह से पुलिस किसी रहस्य का पता लगाना चाहती थी। रोज का यही किस्सा था। एक दिन तो ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रताप कुछ मानो मनु-हाना, उस दिन पुलिसवालों के साथ करीब तीन-चार घंटे बात-चीत हुई। पीछे मुकदमा होने पर यह मालूम हुआ कि सच ही प्रताप का मन विचलित हो गया था। यहां तक कि एक दिन प्रताप ने पुलिस से कह दिया कि वे एक दिन और सब बातें सोच लें, फिर कहना होगा तो कह देंगे, किन्तु अगले दिन जब पुलिस मिलने आई तो प्रताप ने कहा—"देखिये, बहुत सोचा-विचारा अन्त में यह तय किया है कि कोई बात नहीं बोलूँगा अभी तक तो मेरी ही माता केवल कष्ट ही पा रही है, किन्तु यदि मैं सब गुप्त बातें प्रकट कर दूँ तो और भी कितने लोगों की मातायें कष्ट पायेंगी। एक मां के बदले और कितनी माताओं को तब हाहाकार करना होगा।"

बरेली जेल में अँगरेजों का दण्ड भोगते-भोगते उसका नश्वर शरीर उस दिव्य आत्मा का साथ न दे सका। उस समय प्रताप

की आयु २२ वर्ष की थी। भारत का दुर्भाग्य है कि प्रताप सदृश युवक इस जगत में नहीं है। क्रान्तिकारियों के इतिहास में ऐसा परिवार मिलना कठिन है जिसमें सभी ने अपना बलिदान देश के लिये किया। जो देश के लिये भिखारी बन गया, नहीं सिर्फ भिखारी ही नहीं, अपितु प्राणों की बाजी लगा दी हो। इस परिवार का स्वतन्त्र-युग में नाम अमर रहेगा और जब क्रान्ति का इतिहास लिखा जायगा तब इन लोगों का नाम सुवर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

श्री भाई भाग सिंह

साधारण वंश में पैदा होकर और मामूली सी शिक्षा पाकर जिन्होंने अपने कार्यों से मानव-समाज को चकित कर दिया हो, ऐसे उदाहरण इतिहास में विरले ही देखने में मिलेंगे।

श्री भाई भाग सिंह ऐसे ही उँगली पर गिने जाने वाले रत्नों में से एक हैं। आप का जन्म लाहौर जिले के 'भिक्खीविंड' नामक गाँव में सरदार नारायणसिंह जी के घर सन् १८७८ ई० में हुआ था। आपकी माता का नाम मानकुंवरि था। २० वर्ष की आयु तक आप घर ही पर रह कर खेतीबाड़ी का काम देखते

रहे। इसी बीच गुरुमुखी का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। शिक्षा के नाते इतने ही को सब कुछ समझना चाहिये। बचपन का समय अधिकांश खेल कूद तथा मस्ती में बीता। आपकी तबियत गाँव में नहीं लगी, आप फौज में जाकर भर्ती हो गये। इस समय आपकी अवस्था २० वर्ष की थी।

आज़ाद तबियत के तो मशहूर ही थे फिर भला क्यों किसी की डाट-डपट सुनने वाले थे, फौजी 'डिस्पिलन' तो मशहूर ही है। आपके स्वच्छन्द व्यवहारों से अफसर असन्तुष्ट रहने लगे पाँच वर्ष तक किसी तरह नौकरी करके बिताये, इन्हीं सब कारणों से आप एक मामूली सिपाही से आगे न बढ़ सके। नौकरी छोड़कर घर आये। आप चीन चले गये और हाँग कांग की पुलिस में भर्ती हो गये। ढाई साल काम करने के बाद वहाँ के जमादार से अनबन हो गई और आप शंघाई आगये। वहाँ म्युनीसिपैल्टिी में भरती हो गये। कुछ दिन रहने के बाद अपका मन न लगने लगा। उस समय बहुत से सिक्खों को कैनेडा जाते देख आप भी उनके साथ कैनेडा चले गये। बस वहीं से आपका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ होता है।

अमेरिका में गोरों की स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता देख कर आपके हृदय को चोट लगी और अपनी परवशता का ध्यान हुआ। विचार तथा स्वभाव मिल जाने पर हृदय मिलते देर नहीं लगती। कैनेडा में पहुँच कर भाई बलवन्त सिंह, भाई सुन्दर सिंह, भाई हरिनाम सिंह और अर्जुन सिंह से आपकी घनिष्ठता हो गई। इन मित्रों के सत्संग से आपके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इस समय कैनेडा स्थित भारतीयों

पर वहाँ के रहने वाले बड़ा अत्याचार कर रहे थे। यहाँ तक कि बहुत प्रयत्न करने पर भी हिन्दुस्तानियों को कहीं कोई जगह न मिलती थी। आपस में भी फूट थी। सभी अपने चिन्ता में मस्त थे। ऐसी परिस्थिति में उपरोक्त मित्र मण्डली ने आगे पैर बढ़ाया। वहाँ के भारतीयों का संगठन किया। इसके लिये सब लोगों ने मिलकर गुरुद्वारा कायम किया। हिन्दुओं के मुर्दे जलाने के लिये थोड़ी सी जमीन खरीदी गई, क्योंकि गोरे उन्हें लाश जलाने नहीं देते थे और लाचार होकर उन्हीं लोगों की तरह इन लोगों को भी कब्र देना पड़ती थी।

इन लोगों की इन कार्यवाइयों को देखकर गोरे भड़के और उन्होंने समझा कि इनमें जागृति उत्पन्न हो रही है। हिन्दुस्तानियों के अधिक संख्या में यहाँ रहने पर हमारे स्वार्थ में बाधा पड़ेगी। इस बात को सोचकर कैनेडा के भारतवासियों को हंडूरास नामक द्वीप में भेजने का प्रयत्न होने लगा और दूसरी ओर एक नया कानून गढ़ा गया। इस कानून के अनुसार कोई भी नया भारतीय कैनेडा में नहीं उतर सकता था। आपलोगों ने इस कानून के विरुद्ध आवाज उठाई। उधर हंडूरास द्वीप को देखने के लिये दो आदमी भेजे गये। उन लोगों ने आकर रिपोर्ट की कि हडूरास द्वीप बहुत ही बुरा है वहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। इस रिपोर्ट के आधार पर भारतीयों का उस द्वीप में जाना रुक गया। गोरों ने देखा कि हमारी चाल नहीं चल रही है तो वे बहुत ही बिगड़े और कोई दूसरा ही उपाय सोचने लगे।

भाई भागसिंह और उनके मित्रों ने सोचा कि इस कानून के विरुद्ध जब तक कोई प्रभावशाली कार्य न किया जायेगा। तब तक भारतीयों के लिये यहाँ आना असम्भव हो जायेगा। आप लोग अपने परिवार वालों को घर से लाने के लिये भारत को चल पड़े। भाई भागसिंह अपने और अन्य दो मित्रों के साथ भारत आगये। यहाँ पर आपकी स्त्री मर चुकी थी। अतः आपने पेशावरी स्त्री से फिर ब्याह किया और उसे लेकर अमेरिका को चल पड़े। हाँगकांग आकर मालूम हुआ कि कैनेडा जाने के लिये टिकट न मिल सकेगा। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी आपको वहाँ पर बहुत समय तक ठहरना पड़ा और यहीं पर आपके पुत्र श्री० जोगेन्द्र सिंह जी का जन्म हुआ। आखिर बहुत प्रयत्न करने के बाद वैङ्कोवर पहुँचने पर बहुत अड़चनों के बाद आपको जहाज से उतरने दिया गया।

गोरों के इस व्यवहार ने आपके विचारों में उथल-पुथल मचा दी। आपने देखा कि जब तक भारत स्वतन्त्र न होगा तब तक सभी देश वाले भारतीयों का इसी प्रकार अपमान किया करेंगे। भारतीयों में क्रान्ति उत्पन्न करने और स्वाभिमान के भावों को जागृति करने के लिये संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 'गदर' नामक एक पत्र निकलना आरम्भ हुआ। इस कार्य में भागसिंह ने हाथ बटाया और जी खोलकर रुपये-पैसे से भी इस पत्र की सहायता की, भागसिंह जी के उद्योग से कैनेडा में इस पत्र की अच्छी खपत होने लगी।

अभी इमिग्रेशन वालों से झगड़ा चल ही रहा था कि 'कामागाटा मारू' जहाज कैनेडा आ पहुँचा। गोरों ने उसे अपने बाद

पर उतरने न दिया। तब भागसिंह जी ने एक नया घाट खरीदा, इस प्रकार वह जहाज इस नये घाट पर लगा। जब गोरों ने देखा कि हमारी यह भी चाल व्यर्थ गई तब उन लोगों ने जहाज के मालिक को भड़काया कि जहाज का किराया एक मुश्त ले लो, किश्तबन्दी से न लो। बिचारे भारतीय बड़ी मुसीबत में पड़े। उनके पास सिवाय सामान के रुपया कहाँ था उन्हें इस संकट में पड़ा देख कर भागसिंह तथा उनके अन्य साथियों ने रुपया जमा कर दिये। साथ ही जहाज का चार्टर अपने नाम पर लिखवा लिया।

इसके बाद भागसिंह को साउथ ब्रिटिश कोलम्बिया अपने किन्हीं साथियों से उसी बात पर विचार करने के लिये जाना पड़ा। वहाँ पर आप तथा आपके साथी गिरफ्तार कर जेल में डाल दिये गये। परन्तु बाद में छोड़ दिये गये उस समय जहाज वापस जाने को तैयार था। बहुत से लोगों के पास खाने तक को रुपया नहीं रह गया था। इसलिये आपने आगे ही उन लोगों की सहायता आदि का पूरा प्रबन्ध कर दिया।

जहाज की सहायता करने तथा स्वाधीन विचार रखने के कारण गोरे आप लोगों से चिढ़ने लगे। जोश में आकर कई बार उन लोगों ने कह भी डाला था कि इसे गोली से मरवा कर छोड़ेंगे। आप इन बातों को हँस कर टाल दिया करते थे। वे इन बन्दर घुड़कियों में आने वाले न थे। अपना काम उसी साहस और वीरता के साथ करते रहे। गोरों ने बेलासिंह नामक एक अधम सिक्ख को अपनी ओर मिला लिया और उसे अनेक प्रलोभन देकर भाग सिंह को खतम कर देने के लिये तैयार किया।

एक दिन गुरुद्वारे में भागसिंह ग्रन्थ साहब का पाठ कर रहे थे। सब कार्य निर्विघ्न समाप्त होने पर मत्था टेकने के लिये झुके तो बेला सिंह ने गोली चलाई। गोली पीठ को पार करती हुई फेफड़ों में आ रुकी, घातक को पकड़ने के प्रयास में भाई वतनसिंह भी मारे गये।

भागसिंह अस्पताल लाये गये। वहाँ आकर आपका आपरेशन हुआ, परन्तु आप ऐसी अवस्था में भी पूर्णतया होश में रहे और बराबर लोगों को उत्साह देते रहे। इस समय भी आपके चेहरे पर दुःख के चिन्ह न थे। जब आपका लड़का आपके सामने लाया गया तो आपने कहा—"यह लड़का मेरा नहीं वरन् कौम का है इसे दरबार में ले जाओ, मेरे पास क्यों लाये हो"। अन्त समय में आपने कहा—मेरी तो इच्छा थी कि स्वतन्त्रता की लड़ाई में आमने सामने दो चार हाथ करके प्राण देना किन्तु ईश्वर को यह मंजूर न था। इसमें मेरा क्या दोष ? खैर ईश्वर की यही इच्छा। इस तरह ४४ वर्ष की उम्र में ही स्वर्ग को चल दिये। इस तरह एक वीरात्मा की देशद्रोही के द्वारा मृत्यु हुई और वह भी सरकार का वफादार नौकर बनने के नाते छोड़ दिया गया। जातीय अपमान से तिरस्कृत होने के कारण इस वीर ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी और सदा के लिये अमर हो गये।

भाई वतनसिंह

भाई वतन सिंह वास्तव में क्या थे। लोग उनकी मृत्यु से पहले उन्हें कभी भी समझ न पाये थे। उनका साधारण सा जीवन था। नेता बनने की या आत्म-ख्याति की स्वप्न में भी परवाह न थी किन्तु देश-प्रेम जाति-प्रेम और स्वाभिमान से हृदय खाली न था। वे केवल मरना जानते थे और वह भी एक सच्चे वीर की भांति।

आप पटियाला राज्य में 'कुम्बड़-वाल' नामक गांव में भाई सरोजसिंह के घर में पैदा हुए। आपको बचपन से भैंस पालने का बड़ा शौक था। इसी कारण कैनेडा में भी लोग इन्हें वतन-सिंह गइया वाला अर्थात् भैंस वाला कहा करते थे। बाइस तेइस वर्ष की आयु तक आप घर पर ही रहे। इसके बाद फौज में भरती हो गये। आपके जीवन का अधिकांश भाग बर्मा में बीता। कुछ दिनों बाद नौकरी छोड़ कर घर वापस चले आए दस साल तक मकान ही पर रहे। घर पर जी ऊबने लगा। आप हांगकांग की ओर चल दिये। यहां पर पांच साल तक जेल पुलिस में गार्ड का काम करने के बाद आप कैनेडा पहुँचे। लेकिन वहां पर आपके जान पहचान का कोई आदमी न था।

वैङ्कोवर तो पहुँच गए पर अब जांय तो कहां जांय किसके पास जांय। बहुत पूँछ ताछ करने के बाद सिक्खों के गुरु-द्वारे का पता लगा और आपने वहीं जाने का निश्चय कर लिया। ढूँढने-ढूँढते आप वहाँ पहुँचे। यहां पर कुछ दिन ठहरने

के बाद रोजगार की तलाश में घूमने लगे बहुत कोशिश करने पर एक लकड़ी के कारखाने में काम मिला जहां और भारतीय सिक्ख काम करते थे। भाई भागसिंह भी इसी कारखाने में काम करते थे। भाई भागसिंह के विचारों का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा। आप नित्य गुरुद्वारा जाया करते थे और सत्संग में बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे। बड़ी लगन और धुन के साथ आप गुरुद्वारे के काम में लगे रहते थे। इस रुचि और प्रेम को देखकर आपको लोगों ने गुरुद्वारा कमेटी का मेम्बर बना लिया। साल भर तक आप कमेटी के मान्य सदस्य भी रहे। आपकी कार्य तत्परता पर लोग आपको बहुत मानते थे।

उस समय सिक्ख लोगों से इमीग्रेशन वालों से झगड़ा चल रहा था। भाई भागसिंह और बलवन्तसिंह को खतम कर देने के लिये एक बड़ा षड्यंत्र उनकी ओर से हो रहा था। उस समय लोग सैकड़ों की संख्या में भारत की ओर वापस आ रहे थे। वहां के गोरे इस चिन्ता में पड़े कि आजादी का भूत भारत में फैलना चाहता है। इसलिए सिक्खों के किसी भी नेता को भारत जीवित न जाने दिया जावे। यही सोच कर बेला-सिंह को कूटनीति द्वारा मिलाया गया।

एक दिन बड़े जोरों से दीवान हो रहा था। सिक्ख लोग गुरुओं की बलिदान-कहानी बड़े प्रेम से सुन रहे थे मुर्दे में भी जीवन का संचार हो रहा था। परन्तु कौन जानता था कि वहीं पर कोई विषधर सर्प भी बैठा हुआ है। दीवान खतम होने पर दनादन गोलियों की फैर सुनाई पड़ी। जब लोगों ने ऊपर निगाह की तो क्या देखते हैं कि एक नीच पिस्तौल

ताने खड़ा है और एक वीर मृत्यु की गोद में घायल पड़ा है। यह वीर भाई भागसिंह थे, वह पापी बेलासिंह अपने इतने ही कृत्य से सन्तुष्ट न हुआ उसकी आंखें तो बलवन्तसिंह को ढूँढने में लगी हुई थीं वह उनको भी खतम करना चाहता था। पर मनुष्य का सोचना सदैव सत्य नहीं होता। जब भाई भागसिंह पर गोली चलाई गई उस समय वतनसिंह उनके पास ही बैठे थे भागसिंह को घायल होते देख आपने गरज कर प्राणों की परवाह न करके हत्यारे को ललकारा। बस अब क्या था दूसरी गोली बलवन्तसिंह की ओर न जाकर सन-सनाती हुई वतनसिंह पर आ लगी और सीने को पार कर गई। वीर का जोश चोट खाकर ही जागता है। आप सिंह की भांति गरज कर उसकी ओर दौड़े इतने में दूसरी गोली भी लगी किन्तु इससे क्या वतनसिंह बढ़ते ही चले गये और अन्त को सात गोलियां लग चुकने के बाद अपने घातक की गर्दन पकड़ ही तो ली, परन्तु अधिक शक्ति क्षीण हो जाने के कारण बेला-सिंह छुड़ा कर भाग गया और आप सदैव के लिए गहरी नींद में सो गये। जिस गुरुद्वारे में अभी थोड़ी देर पहले शान्ति और निस्तब्धता का राज्य था वहीं अब रणभूमि बन गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। अभी एक भाई के मरने का दुःख दूर नहीं हुआ था दूसरा भी साथ छोड़कर चलता बना।

भाई वतनसिंह अब नहीं है पर उन्होंने एक सच्चे वीर की भांति प्राण देकर जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह इतिहास के पृष्ठों में मिलना कठिन है। संसार में अपने लिए कौन नहीं करता, अपनी जाति, देश और स्वाभिमान के लिए मरता है

उसका मरना सार्थक है। भाई वतनसिंह ने अपने एक भाई के लिये जान दी, यही इनका गौरव है।

बलवन्त सिंह

बलवन्त सिंह देश की स्वतन्त्रता के लिये तड़पने वाले भारत के नवयुवकों में से थे। देश की दासता आपके आँखों में खटक रही थी आपकी धारणा थी कि देश की आजादी ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है। जंगलों पर्वतों व कन्दराओं में मुंह छिपाकर बैठना कायरता है। और अन्त में इसी स्वतन्त्रता के लिये लड़ते हुए फाँसी के तख्ते पर चढ़ गये।

इसी वीर का जन्म गांव खुदपुर जिला जालन्धर में १८८२ ई० में हुआ। आपके पिता का नाम बुद्धसिंह था परिवार बड़ा धनाढ्य था। सभी लोग आदर की दृष्टि से देखते थे। कुछ बड़े होने पर आप पढ़ने के लिये आदमपुर की पाठशाला में बैठाये गये। मिडिल पास करने के पहले ही पढ़ाई छोड़ कर फौज में भर्ती हो गए। फौज में सन्तकर्म सिंह जी की सत्संगति का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा कर्म सिंह बड़े ईश्वर भक्त थे। आपका झुकाव ईश्वर भक्ति की ओर हुआ। फौज में दस वर्ष नौकरी करके छोड़ दी और विदेश यात्रा की ठानी। इसी समय आपका दूसरा विवाह भी हुआ था।

उस समय सिक्ख लोग चीन, बर्मा, और कैनेडा जाया करते थे आपने १९०५ ई० में कैनेडा जाने का प्रस्थान किया।

कैनेडा में भागसिंह से आपका साथ हुआ कुछ ही समय आप भागसिंह के दाहिने हाथ माने जाने लगे भागसिंह आप ही जैसे उत्साही व्यक्ति की तलाश में थे। उस समय कैनेडा में कोई गुरुद्वारा न था। आप लोगों के उद्योग से गुरुद्वारा बन गया। इसके द्वारा संगठन के कार्य में सहयोग मिला और गोरों के अत्याचार कम करने के लिए एक आन्दोलन करने का स्थान मिल गया। इस तरह से आपने काई जगह गुरुद्वारे स्थापित किये और संगठनात्मक रूप में गोरों के अत्याचारों का प्रतिवाद किया।

उस समय वहां के प्रवासी हिन्दुओं तथा सिक्खों को मृतक संस्कार करने में बड़ी विपत्ति थी। मुर्दे जलाने की उनको आज्ञा न थी। जो इसके विरुद्ध काम करता था उसे गोली का शिकार बनना पड़ता। श्री बलवन्त सिंह ने यह असुविधा दूर करने का प्रबन्ध किया। कुछ भूमि खरीदी गई और दाह संस्कार करने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली गई। गुरुद्वारा बनने में आप का जबर्दस्त हस्य था और ईश्वर में विशेष भक्ति थी इसीलिये आप ग्रन्थी बनाये गये। पहले तो आपने कुछ इन्कार किया परन्तु बाद में स्वीकार कर लिया।

सिक्खों के कैनेडा में पहुँचने के कारण गोरे लोग बहुत चिढ़े क्योंकि इनके आ जाने से उनको इतनी मजदूरी नहीं मिलती थी। वहां की सरकार ने भारतीयों को इस कारण हण्डूरास नामक द्वीप में भेजने की आयोजना की किन्तु भारतीय वहां जाने के लिये तैयार नहीं हुए। इमीग्रेसन वालों ने एक दूसरा कानून भी बना रक्खा था कि कैनेडा में भारतीय लोग

अपने परिवार वालों को अपने साथ नहीं रख सकते थे। बलवन्त सिंह और उनके मित्रों की यह सलाह हुई कि इस कानून को तोड़ना चाहिए। यह निश्चय करके बलवन्त सिंह, भागसिंह और सुन्दरसिंह भारत को चल दिए। भारत से अपने परिवार वालों को लेकर ये लोग कैनेडा को चल दिए। किन्तु हांगकांग आकर रुक जाना पड़ा क्योंकि आगे के लिये टिकट ही न मिलता था परन्तु कर्मवीर कहीं पीछे पैर रख सकते हैं उन लोगों ने बढ़ने का संकल्प किया। उसमें सुन्दरसिंह तो वैङ्कोवर को और बाकी लोग परिवार सहित सैन्फ्रांसिस को चले। लेकिन अमेरिका के गोरों ने उन्हें वहां उतरने न दिया। तब वे लोग हांगकांग लौट आए। अन्त में बहुत प्रयत्न करने पर वैङ्कोवर के लिये टिकट मिल गये। परन्तु जब ये लोग वहां पहुँचे तो उन लोगों को तो उतरने की आज्ञा मिल गई, परन्तु परिवार वालों को उतरने की आज्ञा नहीं दी गई। अन्त में ओटावा से आज्ञा न आने तक की जमानत पर ये परिवार वाले उतरे। परन्तु वहां से परिवार वालों को कैनेडा में रहने की आज्ञा न मिली तो इमीग्रेशन विभाग के कर्मचारी परिवार वालों को लेने के लिए आए इस पर सिक्ख लोग झगड़ने को तैयार हो गए अतः गोरों को लाचार होकर लौट जाना पड़ा।

कैनेडा के गोरों की इस अत्याचारपूर्ण कहानी को कहने और भारतीयों के उचित अधिकारों की माँग के लिये इंगलैण्ड में एक डिपुटेशन भेजा गया। उस डिपुटेशन ने दो वर्ष तक इंगलैण्ड से भारत का चक्कर लगाया, लेकिन उस डिपुटेशन की किसी ने न सुनी, और सर ओडायर ने तो उन लोगों को

अमेरिका की गदर पार्टी का समझा। जब पंजाब के गवर्नर साहब जो कि भारतवासियों के रक्षक समझे जाते हैं वही उनकी परवाह नहीं करते हैं तो भला बाहर वाले क्या परवाह करने लगे। डिपुटेशन का कोई परिणाम न निकला किन्तु सिक्ख लोगों ने अपनी दुःख कहानी तमाम देशों के सामने रख दी बैङ्कोवर लौटने पर बलवन्तसिंह ने एक बड़ा जोशीला भाषण दिया, वह उनका ऐतिहासिक भाषण था उसमें उन्होंने दर्शाया कि हमारी इस लाचारी का एक मात्र कारण हमारी गुलामी है और हम लोग इस अपमान से तभी मुक्त हो सकते है जब कि हम लोग स्वतन्त्र हो जांय"।

ये लोग अपनी उलझनों में पड़े ही हुए थे कि 'कामा गाता मारू' नामक प्रसिद्ध भारतीय जहाज अमेरिका पहुँचा। गोरी सरकार ने उसे किनारे पर लगने से इन्कार किया इस जहाज के साथ भारत की जितनी आशायें सम्बन्ध थीं सभी एकाएक मटिया मेट कर दी गई। भारत का व्यवसाय की ओर यही तो पहला प्रयत्न था। उसी में भारत-हितकारी शासकों ने पूरी तरह से ऐसा पीसने की कोशिश की कि फिर कोई ऐसी चेष्टा करने का साहस न कर सके। कैनेडा में जितने दिन जहाज ठहरा था, उतने दिन उनके साथ जो अमानुसिक व्यवहार किया गया, उसका वर्णन करना कठिन है। बलवन्त सिंह और भागसिंह ये दो ही सज्जन तो थे जो सरकार से खूब लड़े। ये दोनों इमीग्रेशन वालों के आँखों में कांटों के समान चुभते थे।

इन गोरों ने बेलासिंह नामक एक सिक्ख को अपने में मिला लिया, उसने एक दिन अवसर पाकर भाई भागसिंह को

नो गोली मार दी और बलवन्त सिंह को भी मारना चाहता था पर वह अपने कार्य में सफल न हो सका किन्तु बलवन्तसिंह के बदले भाई बलनसिंह की जान गई। मुकदमा चला और बेलासिंह को कुछ भी न हुआ।

सन् १९१४ ई० में योरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया अमेरिका में रहने वाले भारतीय देश को लौटने लगे बलवन्तसिंह भी उन्हीं के साथ में थे। शंघाई पहुँचने पर हिन्दुस्तान जाना आपने स्थगित कर दिया। आप वहाँ से बैङ्काक आये। उस समय उस तरफ विद्रोह का पूर्ण प्रयत्न हो रहा था। आपने उस में भाग लिया परन्तु इस बीच में बीमार पड़ गए। इसलिये काम धाम छोड़ कर अस्पताल की शरण ली। वहाँ आपके फोड़े का आपरेशन हुआ। अभी अच्छे न हो पाये थे कि स्याम देश की हृदय हीन पुलिस ने आपको गिरफ्तार कर लिया। आपको जमानत पर छुड़ाने की कोशिश की गई किन्तु सब बेकार हुई। स्याम देश की सरकार ने आपको भारत सरकार के हवाले कर दिया। भला वह अपने सिर पर क्यों बला लेने लगी।

श्री बलवन्तसिंह जी को सिंगापुर लाया गया। आपको षयंत्र का सारा भेद खोल देने के लिये सब्ज बाग दिखाये गये बहुत लालच दिया गया। आपको हर तरह से राजी करने के प्रयत्न किये गये। इससे काम चलता न देख कर बहुत लाल पीली आँखें भी दिखाई गईं। मगर आपने जबान तक नहीं हिलाई उनके पास मौत के सिवाय क्या धरा था। आखिर सन् १९१६ ई० में आपको लाहौर षडयंत्र के दूसरे

अभियोग में शामिल किया गया। २४ दिन तक मुकदमा चला। न्याय का ताण्डव नृत्य किया गया परन्तु अन्त में वही हुआ जो पहले ही से सरकार ने निश्चय कर लिया था। आप को मृत्यु की सजा सुनाई गई।

आप जेल में लाये गये, काल कोठरी में बन्द किये गये आप सिक्ख थे इसलिये टोपी की जगह पर कम्बल का टुकड़ा सिर पर बाँधने को दिया गया। बदनाम करने के लिये किसी कैदी ने एक दिन शरारत की—थोड़ी अफीम आपकी पगड़ी में बांध दी। तलाशी लेने पर जब अफीम पाई गई तो जेल अधिकारियों ने आप पर आत्मघात करने का अभियोग लगाया, लेकिन अन्त में भेद खुल जाने से असली अपराधी का पता लग गया और उसे सजा दी गई। आपने जो इस समय जेलर को उत्तर दिया था वह बहुत ही सुन्दर था। आपने कहा—"मृत्यु सामने खड़ी है, उसके आलिंगन के लिये तैयार हो चुका हूँ। आत्म हत्या कर मैं मृत्यु-सुन्दरी को कुरूपा नहीं बनाऊँगा। विद्रोह के अपराध में मृत्यु दण्ड पाने में मुझे गर्व है"। फाँसी के तख्ते पर भी वीरतापूर्वक प्राण दूँगा।

फाँसी का दिन समीप आया और चुपके से वीर देश भक्त बलवन्त सिंह को फाँसी दे दी गई किसी को कानों कान खबर तक न लगी। सरकार ने ऐसा क्यों किया इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता है किन्तु सम्भव है जनता में असन्तोष फैलने के भय से ऐसा किया गया हो। एक दिन जब आपकी स्त्री आप से मिलने आई तो अधिकारियों

ने कहा कि कल सवेरे ही उनको फाँसी हो गई। उनकी धर्मपत्नी कलेजा थाम कर रह गई। बेचारी पर वज्रपात हो गया।

फाँसी के दिन का समाचार बाद में मिला जिस दिन वीर बलवन्त को फाँसी दी जाने वाली थी उस दिन आप प्रातः काल उठे, ईश्वर की वन्दना की। भारत माता को अन्तिम नमस्कार किया, स्वतन्त्रता का गान गाया। हँसते हँसते फांसी के तख्ते पर जा खड़े हुये। फिर क्या हुआ? क्या पूछते हो? वही जल्लाद, वही रस्सी, वही फाँसी और वही प्राण त्याग।

आज बलवन्त सिंह इस संसार में नहीं है, उनका नाम है और देश के सामने उनका काम है! उनकी आत्मा तभी प्रसन्न होगी जब भारत स्वतन्त्र होगा।

हरिनाम सिंह

पंजाब प्रान्त के सिक्खों ने कैनेडा में जाकर अपने देश की आजादी के लिये जो प्राणों की आहुति दी थी, उनमें हरिनाम सिंह का नाम भी आदर से लिया जा सकता है।

आपका जन्म गाँव साहरी जिला होशियारपुर में हुआ था। पिता का नाम लाभसिंह था। पढ़ने लिखने में आप बड़े चतुर थे, किन्तु हाई क्लास पहुँचते ही एकदम स्कूल छोड़ कर सेना

में भरती हो गये। वहां पर बलवन्त सिंह भी थे, उनके सत्संग का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा स्वतन्त्रता के भावों की जागृति यहीं पर हुई, भला ऐसे विचारों का युवक कब तक नौकरी कर सकता था। डेढ़ वर्ष के बाद नौकरी छोड़ कर घर चले आए। कुछ दिन तक घर पर रहे, पर तबियत न लगने के कारण आप घर द्वार छोड़ कर बर्मा पहुँचे। वहाँ हाँगकाँग पहुँचे और ट्रामके में भरती हो गये। जो भारतीय कैनेडा और अमेरिका जाने के लिये यहाँ आते थे उन्हें इमीग्रेशन वाले निराश कर घर लौटा देते। हरिनाम सिंह जी उनको हर तरह की सहायता करते और विपत्ति में ढाढ़स बधाते थे।

कैनेडा में भारतीयों की दशा को सुनकर आपका भी मन अमेरिका जाने के लिये उत्सुक हो उठा। आप वहाँ के लिये चल दिये और विक्टोरिया में रहने लगे। आप आते ही काम में जुट गये जिसके लिये आपने संकल्प किया था। अपने उच्च शिक्षा की कमी का अनुभव करके संयुक्त राष्ट्र के सीएटल नगर जाकर पढ़ने लगे और तीन वर्ष तक बड़े यत्न से विद्योपार्जन करने लगे।

इधर कैनेडा के भारतीयों ने डेढ़ लाख पूंजी से एक इण्डियन ट्रेडिंग कम्पनी खोली। उनका मैनेजर एक अंगरेज बनाया गया। कम्पनी का कार्य खूब अच्छी तरह चलने लगा वहाँ के गोरे भला भारतीयों की व्यापारिकता उन्नति कब देख सकते थे, लोगों ने मैनेजर को भड़काना शुरू किया। उसने बेईमानी करनी आरम्भ कर दी। हरिनामसिंह जी कम्पनी के हिस्सेदारों में थे, आपने उनकी बेइमानी ताड़ ली, फिर तो

झगड़ा शुरू हुआ। गोरे लोगों की आप पर कड़ी दृष्टि रहने लगी और वहां लोग आपको फांसने की चेष्टा भी करने लगे। आपके एक मित्र इस डर से हरनामसिंह को संयुक्त अमेरिका ले गये।

कुछ दिन बाद आप कैनेडा फिर आ गये यहाँ आकर 'दी हिन्दुस्तान' नामक एक अंग्रेजी पत्र निकालना शुरू किया। आपके बढ़ते हुये प्रभाव को देख कर सरकार चिन्तित होने लगी और उनपर बम बनाने और सिखाने तथा विद्रोह प्रचार आदि के दोष लगा कर ४८ घंटे के अन्दर कैनेडा से निकल जाने की आज्ञा हुई। आपने अपने एक अंगरेज मित्र 'रैमिस्बर्ग' को जो कि संयुक्त अमेरिका में रहते थे तुरन्त तार दिया. उन्होंने कैनेडा सरकार को तार दिया कि उन्हें निवासित न किया जाय। मैं उन्हें लेने के लिये आ रहा हूँ। वह उसी समय कैनेडा को अपनी निजी बोट लेकर चल पड़े और उन्हें साथ लेकर अमेरिका आये। हरिनामसिंह यहीं आकर वर्कले यूनिवर्सिटी में फिर पढ़ने लगे। वहां से 'गदर' नामक पत्र में आप जोशीले लेख लिखने लगे।

इधर जो सज्जन भाई गुरुदत्ता सिंह और भाई दिलीप सिंह एक बम केस में पकड़े गये। उधर कामा गाटा मारू जहाज बन्दर पर आ पहुँचा। हरिनाम सिंह अपने अन्य साथियों सहित दोनों उपरोक्त सज्जनों को छुड़ाने के लिये प्रयत्न करने लगे। इस मामले में आप पकड़ गये। फिर देश निकालने की आज्ञा हुई। कुछ दिन के झगड़े के बाद यह जान कर कि इस बार कोई सफलता न होगी इसलिये आप भारत की ओर आने वाले

एक जहाज पर सवार हो गये। चीन, जापान तथा श्याम आदि देशों में गदर-पार्टी का कार्य करते हुये बर्मा पहुँचे।

सन् १९१५ के दिन थे। सिंगापुर का विद्रोह दमन हो चुका था। यहां पर एक नये विद्रोह की योजना हो रही थी. उसकी तिथि भी निश्चित हो चुकी थी उसके लिये प्राण-पण से सभी तैयारी कर रहे थे। एक दिन आप मांडले में सहसा गिरफ्तार किये गये। अभियोग चला मृत्यु-दण्ड दिया गया। आप इस बीच में जेल से भाग गये किन्तु शीघ्र ही पकड़े जाने के कारण फांसी दे दी गई।

हरिनाम सिंह बड़े स्वतन्त्र प्रकृति के आदमी थे। श्री भागसिंह श्री हरिनाम सिंह और बलवन्त सिंह इन तीनों सज्जनों में अगाध प्रेम था। तीनों ही सज्जनों ने एक-एक कर बारी-बारी से भारत की स्वतन्त्रता के लिये आत्म दान दे दिया। देश के लिये वे जिये और देश के लिये ही वे मर भी गये।

" हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा "
मरना भला है उसका जो अपने लिये जिए"।

वीर बन्ता सिंह

भारत में समय-समय पर सदैव वीर उत्पन्न होते रहे हैं। इस युग में भी ऐसे वीर पैदा हुए हैं जिन्होंने अतीत की स्मृति को पुनर्जीवित कर दिया है। वे लोग कुछ ऐसे निर्भय होकर

जीवन बिता गये कि जिससे देश में एक नवीन जागृति उत्पन्न हो गई उन्होंने देश के लिये अपना अस्तित्व हँसते-हँसते मिटा दिया मृत्यु से ऐसे मानों वे निर्भीक थे, जैसे छोटा बालक सिंह से खिलवाड़ कर रहा हो। ऐसे वीर उत्पन्न हुए और अपना काम करके चले गये अपने स्मृति चिन्ह छोड़ गये। उन वीरों के भिन्न अपने तरीके थे। हमें उनकी कार्य शैली पर विवेचन नहीं करना है। किन्तु उनकी वीरता, साहस और बलिदान से देश इन्कार नहीं कर सकता है। बन्ता सिंह भी एक ऐसे ही वीर पुरुष थे।

आपका जन्म १८६० ई० में सगवाल नामक गांव, जिला जालन्धर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बूटा सिंह था। पांच वर्ष की आयु में आप स्कूल में भर्ती किये गये। पढ़ने में बहुत चतुर थे। सातवीं, आठवीं दोनों श्रेणियां एक ही वर्ष में पास कर लीं। आप जालन्धर के डी० ए० वी० हाइ स्कूल में पढ़ते थे। उसी समय सन् १६०५ ई० में कांगड़ा जिले में भूचाल हुआ था जिससे हजारों आदमी तबाह हो गये। आपने इस समय सैकड़ों लोगों की सहायता की और तन मन से दुर्दशा ग्रस्त लोगों की सेवा शुश्रुषा की। आपकी कार्य कुशलता और तत्परता देख कर सभी आप पर मुग्ध हो गए। उस समय आपने एक छोटा सा दल भी स्थापित कर लिया था जिसका नेतृत्व आपके ही हाथ में था। उसके द्वारा आप दीन दुःखियों की सहायता करते थे। इस दल की सहायता से उस समय लोक सेवा का बहुत कुछ कार्य हो सका था।

हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करने पर आपने विदेश जाने की

तैयारी की, उस समय सिक्ख लोग चीन, जापान तथा कैनेडा अधिकतर जाया करते थे। पहले पहल आप चीन गए और वहां से अमेरिका चले गये। अमेरिका वास का आप पर बहुत प्रभाव हुआ, आपकी आंखें खुली पद-पद पर अपनी गुलामी का अनुभव करने लगे यह देख कर आपका हृदय क्षुब्ध हो उठा, आपने देखा कि गुलामी मौत से बढ़ कर है। इसलिये आपने प्रण कर लिया कि यदि जिन्दा रहूंगा तो आजाद रहकर वरन् इसको पाने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दूंगा। आपने देश लौट कर देश को स्वतन्त्र करने का इरादा किया।

आपने स्वदेश लौट कर अपने गांव में, एक स्कूल खोला और एक पंचायत बनाई। सभी लोग आपका बहुत मान करते थे इसलिये पंचायत के कर्त्ता-धर्त्ता आप ही बनाये गये। सब लोग पंचायत द्वारा किये हुये फैसले को मानने लगे। आपका प्रभाव लोगों पर यहां तक पड़ गया कि एक बार चीफ कोर्ट के फैसले के बाद भी दोनों पक्ष ने आपके निर्णय को स्वीकार किया। यह बात साधारण न थी, अफसरों के कानों तक यह खबर पहुँची। वे बहुत बिगड़े। पर कर क्या सकते थे? उस समय अमेरिका से लौटे हुए पंजाबी आपके घर पर बहुधा आया जाया करते थे। पुलिस की नजर उन लोगों पर कड़ी रहती थी यह रिपोर्ट भी पहुँची, अच्छा अवसर मिला। एक दिन अचानक पुलिस ने आपके घर पर छापा मारा। उस समय आप घर पर न थे, आपके बहुत से कागजात पुलिस उठा ले गई उनमें आपके लिखे कई एक ट्रैक्ट भी थे। उन्हें देख कर आप पर वारन्ट निकाला गया,

परन्तु आप पकड़े न जा सके। बाद में आपको गिरफ्तार करने वाले के लिये पुरस्कार भी घोषित किया गया था।

एक दिन लाहौर में एक गुप्त सभा होने वाली थी उसमें सम्मिलित होने के लिए आपने एक साथी के साथ जा रहे थे। उसी रास्ते से एक सब इन्स्पेक्टर पुलिस आ रहा था उसको इन पर कुछ सन्देह हुआ। वह आपकी तलाशी लेने का आग्रह करने लगा। आपने बड़े सहज भाव से उसे समझाने की चेष्टा की कि शरीफ आदमी इस तरह व्यवहार नहीं किया करते। रास्ते चलते-चलते किसी भले आदमी की तलाशी नहीं की जाती। मेरी तलाशी लेने का कोई कारण भी नहीं है आप जाइए। परन्तु वे साहब भला कब पीछा छोड़ने वाले थे। बन्तासिंह के लाख कहने पर भी उसने इनकी एक भी न सुनी। जब आपने देखा कि यह बातों से न मानेगा तो आपने कहा—"अच्छा तलाशी ही ले लो" वह तलाशी लेने के लिये जो आगे बढ़ा, तो आपने थैले से अपना पिस्तौल निकाल यह कहते हुए कि "तलाशी न लेते तो अच्छा था, हमारे पास तो यही है, सो लो" उस पर फायर कर दिया। गोली लगते ही वह जमीन पर लोट गया आप मौका पाकर भाग निकले। अभी भागे ही थे कि आपके साथी के पांव में ठोकर लग गई और वह गिर गया। आपने पिस्तौल के जोर से लोगों की भीड़ और पुलिस को रोक कर और उसे उठा कर खड़ा किया। अधिक चोट लगने के कारण आपका साथी भाग न सका। तब आपने अकेले ही भागने का निश्चय किया, यह दोपहर की घटना है।

आप दूसरे दिन वल्ला और शियामीर स्टेशन पर पहुँचे।

वहाँ पर पहले ही से पुलिस आपकी इन्तजारी कर रही थी लेकिन आप छुक छिप कर गाड़ी में चढ़ ही गये, उसी डिब्बे में बहुत से पुलिस के सिपाही भी चढ़े थे, आपने उनको देखा जब गाड़ी अगली स्टेशन पर ठहरने वाली थी उसी समय आप गाड़ी से कूद पड़े। पुलिस वाले अपने हाथ मल कर रह गये आया हुआ शिकार हाथ से निकल गया। वहाँ से आप जालन्धर पहुँचे।

उस समय 'गदर पार्टी' के प्रमुख कार्यकर्त्ता भाई प्यारसिंह को होशियारपुर के जैलदार चन्दासिंह ने पकड़वा दिया। आपने मिलकर लोगों से फैसला किया कि अब इन देशद्रोहियों को दंड देना चाहिए। आपने भाई बूटासिंह और निवन्दसिंह को साथ लिया और चन्दासिंह को उसके घर में जाकर मार डाला। उसी समय डाईनामेट से अमृतसर के एक पुल को भी उड़ा दिया। आपसे प्रायः जहाँ तहाँ पुलिस से मुठभेड़ हो जाया करती थी। आपका कुछ ऐसा रौब छा गया था कि आपको देखते ही पुलिस वाले वाले नौ दो ग्यारह हो जाते थे। एक बार पुलिस के घुड़ सवारों ने आपका पीछा किया आप साठ मील तक उनके आगे-आगे भागते चले गये, कहीं ठहरे नहीं। इतना परिश्रम करने के कारण आप बीमार हो गए; अतः आप अपने घर चले गए और बहुत दिनों तक वहीं विश्राम करते रहे। आप शरीर से बहुत मजबूत थे। अमेरिका में आप लोगों ने दौड़ने का अच्छा अभ्यास किया था।

आपको कुछ ऐसा ज्ञान सा हो गया था कि वे किसी अपने सम्बन्धी के विश्वासघात से ही पकड़े जाँयगे। उन दिनों

लाहौर-षड्यंत्र का मुख्य केश चलता था। लोगों की धर पकड़ जारी थी। इनके भी पीछे पुलिस लगी ही रहती थी, आपका स्वास्थ्य अच्छा न था, इसलिये मजबूर होकर घर पर जाना पड़ा कुछ समय तक वहीं रहे। एक दिन एक सम्बन्धी उनसे मिलने आया और उसने उनसे अपने घर चलने का आग्रह किया उन्होंने चलने के लिये इन्कार किया परन्तु वह न माना और उनको अपने घर ले गया, उसने कहा कि मैं आपकी सेवा करूंगा और आपको सब तरह आराम पहुँचाऊंगा वे उनका आग्रह टाल न सके। वहाँ पर जाकर शीघ्र ही उसी रिश्तेदार ने पुलिस को बुला लिया। पुलिस खबर पाते ही पहुँच गई। चारों ओर से सशस्त्र पुलिस ने उनके घर को घेर लिया। भारत में विश्वासघात करने वालों की कब कमी रही है। यदि भारत में ऐसे लोगों की कमी होती तो भारत कभी का आजाद हो गया होता और भारत को पराधीनता के दिन देखने को न मिलते।

जब पुलिस घर के भीतर घुसी। आप एक छोटी सी कोठरी में थे द्वार खुलते ही पुलिस को सामने खड़े हुए देखा तो आप खिलखिला कर हँस पड़े। और अपने सम्बन्धी से कहने लगे—"भाई पुलिस को बुलाना था तो मुझे एकदम निशस्त्र क्यों कर दिया "पिस्तौल, रिवाल्वर नहीं तो एक लाठी या डंडा ही रहने देते। एक वीर सैनिक की भांति लड़ता-लड़ता प्राण तो दे सकता।

इस पर पुलिस के अफसर ने कहा—बड़े बहादुर बने फिरते हो क्या दूसरे सब लोगों को कायर ही समझ रक्खा है?

आपने मुस्करा कर कहा—इस समय मुझे निरास्त्र एक कोठरी में बन्द देख कर आप लोग गिरफ्तार करने के लिये आगे बढ़ने का साहस कर रहे हैं। ज़रा बाहर निकलने दीजिये फिर देखूं कि कौन गिरफ्तार कर सकता है। परन्तु कायरों में इतनी हिम्मत कहाँ कि उसका रण जौहर देखने और अपनी कायरता पर आँसू बहाते। आपको कोठरी में ही गिरफ्तार कर लिया गया, होशियारपुर सशस्त्र पुलिस की देख रेख में भेज दिया गया। डिप्टी कमिश्नर की अदालत में पेश किये गये कोई एक घण्टा तक डिप्टी कमिश्नर से निर्भीकतापूर्वक बातचीत होती रही। वह आपकी योग्यता, वीरता तथा धीरता पर मुग्ध था। आपके पकड़े जाने की खबर सब जगह बिजली की भांति फैल गई, लोग सैकड़ों की संख्या में आपके दर्शनों के लिये जमा होने लगे। आप ज्योंही अदालत से बाहर हुये हज़ारों आदमी देखने को उमड़ पड़े। कचहरी का हाता खचाखच भरा था। आपने डिप्टी कमिश्नर से अपने भाइयों से कुछ कहने के लिये आज्ञा माँगी। उसने हुकम दे दिया। आपने उत्साह भरे शब्दों में लोगों को सान्त्वना देते हुए कहा—

"प्यारे भाइयो, आज मेरी गिरफ्तारी देखकर आप लोग निराश न हों। हमारी मृत्यु सामने देखकर आप घबरायें नहीं हम लोगों की कुर्बानी बेकार न जायेगी। वह दिन जल्दी आ रहा है जब हमारा देश विदेशियों के चंगुल से छूट कर स्वतन्त्र हो जायेगा"।

आप वहाँ से लाहौर लाये गये और अभियोग चला आपको मृत्युदण्ड सुनाया गया। मृत्युदण्ड सुनकर आप उछल पड़े और

कहने लगे—हे परमात्मन् ! तुझे कोटिशः धन्यवाद है कि तूने देश के लिये प्राणों की आहुति देने का मौका दिया। मृत्युदण्ड की सजा सुनने के बाद से फाँसी के लगने के दिन तक आपका ११ पौंड वजन बढ़ गया।

आखिर एक दिन प्रातःकाल आपको फाँसी दे दी गई इस तरह से एक आजादी के दिवाने ने अपना जौहर दिखाकर अपनी इह लीला समाप्त की। यह सचमुच बहादुर था, देश भक्त था और मातृभूमि की स्वतन्त्रता का मतवाला था, जिसने आजीवन स्वतन्त्रता की उपासना की। इसकी वीरता की कहानियाँ पंजाब में अब भी लाखों आदमियों के जबानों पर हैं। यद्यपि इसका नश्वर शरीर नहीं है किन्तु यश रूपी शरीर तो जीवित ही है।

डाक्टर मथुरा सिंह

डाक्टर मथुरा सिंह सिक्ख जाति के अमूल्य रत्न थे। वे देश की स्वतन्त्रता के लिये उत्पन्न हुये थे। उन्होंने सौभाग्य से उस जाति में जन्म लिया था जिसमें अर्जुनदेव और गुरु गोविन्द सिंह ऐसे वीर उत्पन्न हो चुके थे। जिस जाति के सात-सात आठ-आठ वर्ष के बालकों में भी आत्म-बलिदान के भाव मौजूद थे और जिन्होंने हँसते-हँसते धर्म के लिये प्राणों की आहुति दे दी, इसी आत्म-त्याग जाति के रत्नों का सूत्र आपकी

नसों में विद्यमान था, उससे प्रेरित होकर आपने यदि अपने प्राणों की आहुति दी तो आश्चर्य ही क्या।

डाक्टर मथुरा सिंह का जन्म झेलम जिले के ढूंढियाल नामक गांव में सन् १८८३ ई० में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार हरीसिंह था। पहले आपकी शिक्षा गाँव में ही हुई फिर चकवाल के हाई स्कूल में दाखिल हुये आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। आपने अल्प काल में ही मैट्रिक पास कर ली और रावलपिन्डी में आकर डाक्टरी का काम करने लगे। तीन चार वर्ष में ही आप बड़े होशियार हो गये।

आपने डाक्टरी की उच्च शिक्षा पाने की इच्छा से विदेश जाने का निश्चय किया। आप सन् १९१३ ई० में अमेरिका के लिये चल पड़े परन्तु पास में अधिक रकम न होने के कारण शंघाई में रुक गये और डाक्टरी का काम शुरू कर दिया। परन्तु आपको तो कैनेडा जाना था। अस्तु काफी रुपया कमा कर कैनेडा को चल दिये। जब वहाँ पर पहुँचे तो आपको तथा आपके एक साथी को छोड़ कर किसी को उतरने की आज्ञा न मिली, ऐसी दशा में आपने उतरना उचित न समझा, अन्त में बहुत आग्रह करने पर उतरे। इस अपमान से आपको बड़ा दुखः हुआ। इस कारण उतरते ही इमीग्रेशन वालों से झगड़ा हो गया। अदालत तक की नौबत आ गई। पर जीत गोरों की ही हुई अमेरिका में रहते हुए आपको अनेक कटु अनुभव हुये पद-पद पर अपमान सहना पड़ता था। इन सब बातों को सोच कर आप पंजाब लौट आये।

आप पंजाब पहुँच कर लोगों को संगठित करने का काम जोरों से करने लगे। आपने बम बनाने का काम अपने जिम्मे लिया, क्योंकि आप इस काम में बड़े सिद्धहस्त थे। अमेरिका से सैकड़ों प्रवासी भारतीय चल पड़े, जिनमें से अधिकांश सिक्ख थे। वे भी सभी भारत पहुँच कर एक बहुत जबर्दस्त विप्लव की तैयारी करने लगे। इसके लिये तिथि भी निश्चित हो गई। देखते-देखते सब आयोजन विफल हो गये। कृपाल की नीचता से सब किया धरा नष्ट हो गया। धर-पकड़ शुरू हो गई। परन्तु मथुरा सिंह न पकड़े गए। एक बार एक सरकारी जासूस द्वारा आपको सन्देश भेजा गया कि यदि आप सरकारी गवाह बन जांय तो उन्हें क्षमा के साथ ही साथ कुछ पुरस्कार भी दिया जायगा। आपने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और कुछ भी परवाह न की।

एक बार एक खुफिया आफीसर आपके पास मुलाकात करने आया, उसकी भीतरी मंशा थी कि अवसर पाकर डाक्टर साहब को गिरफ्तार कर लिया जाय, पर वह खूब जानता था कि डाक्टर साहब बड़े निर्भीक क्रान्तिकारी हैं अतः उसे अकेले उनको गिरफ्तार करने की हिम्मत ही न पड़ी। उलटा वह उनसे कहने लगा कि सरकार ने आपके लिये क्षमा प्रदान की है तथा पुरस्कार देने का वचन दिया है। यही कहने के लिये आया हूँ। परन्तु वे ऐसी बातों में कब आने वाले थे। आप असली रहस्य समझ गये और उससे किसी तरह पिण्ड छुड़ा कर काबुल को चल पड़े किन्तु बीच ही में वजीराबाद स्टेशन पर पुलिस ने पकड़ लिया। घूस रिश्वत देकर वहां से भी बच

निकले। तथा कोहाटा को चल पड़े। वहाँ पुलिस को पहले ही से सब मालूम हो चुका था, इसलिये पुलिस का बड़ा जबर्दस्त पहरा लगा दिया गया। ट्रेन में पुलिस थी। रास्ते में ट्रेन की तलाशी ली गई, परन्तु उस पर भी आप पकड़े न गये। वहाँ से कुछ दिन बाद आप काबुल जा पहुँचे। काबुल में आपने थोड़े ही समय में काफी ख्याति प्राप्त कर ली। आपकी योग्यता देख कर आपको काबुल का चीफ मेडिकल आफीसर नियुक्त किया गया।

भारत के भीतर विप्लव के सभी प्रयत्न निष्फल हो चुके थे देश भक्त फांसी पर लटकाये जा रहे थे। किन्तु जो भारतीय विदेशों में थे वे अभी अपने प्रयत्नों में लगे हुये थे। बाहर तो अभी बड़े जोरों से प्रयत्न हो ही रहा था। काबुल में उस समय 'भारत की अस्थायी सरकार' बनी हुई थी जो जर्मनी कमेटी से सहयोग करती हुई भारत स्वतन्त्रता के प्रयत्न में लगी हुई थी डाक्टर साहब भी इसी कार्य में जुट गये। उसी के सम्बन्ध में आपको जर्मनी जाना पड़ा कुछ दिनों बाद आप फिर लौट आए। ईरान तक तो आपको अनेक बार जाना पड़ा। इन देशों के भारतीय क्रान्तिकारियों ने रूस के जार के पास एक पत्र इस आशय का भेजने का निश्चय किया कि वह भारत में विप्लव कराने में क्रान्तिकारियों की मदद करें। कुछ लोगों के साथ आप चल पड़े। इधर एक नीच आप लोगों की सभी बातों की खबर भारत सरकार को दिया करता था जब सरकार को यह खबर लगी कि आप चल पड़े तो उसने इनका पीछा करवाया। ताश-कन्द में पहुँचते-पहुँचते आप गिरफ़्तार हो गये। फारस लाकर

आप लोगों की शिनाख्त की गई। आप लोगों पर मुकद्दमा चला बहुत लोगों ने यत्न किया कि आपको भारत सरकार के सुपुर्द न किया जावे। अन्त में आप लोग भारत सरकार के सुपुर्द कर दिये गये। वहाँ से आप लोग हिन्दुस्तान लाये गये आप लोगों पर अंग्रेजी अदालत में अभियोग लगाया गया। अन्त में फांसी का हुक्म सुनाया गया। आपने खुशी से अपनी मृत्यु का संवाद सुना। आपके छोटे भैया मुलाकात के लिये गये। आपने पूछा—'क्यों भाई मेरे मरने की तुम्हें चिन्ता तो नहीं ?" बालक ने रो दिया आपने उससे कहा—"यह समय आनन्द मनाने का है। क्या सिक्ख लोग भी देश के लिये मरते समय रोया करते हैं। मुझे तो अत्यन्त आनन्द है। कि मैं भारतीय विप्लव को सफल बनाने के लिये जो मुझसे हो सका कर चुका हूँ मैं बड़ी शान्ति से फांसी के तख्ते पर प्राण त्याग करूंगा।

सन् १९१७ ई० को २७ वीं मार्च को आपको फांसी दी जाने वाली थी, उस दिन आप बहुत प्रसन्न दिखलाई दे रहे थे। आपकी दृढ़ता और वीरता देखकर जेल के अधिकारी तक दंग रह गये। निश्चित समय पर आपको फांसी दे दी गई। इस तरह से देश का प्यारा। भारत मां का दुलारा स्वतन्त्रता का अभिलाषी भारत से चल बसा। वीरों की यही गति होती है वह वीर था, और सचमुच त्याग और तपस्या की अनुपम मूर्ति था जिसने उसके बदले में फांसी का उपहार पाया।

बन्ता सिंह धामियाँ

बब्बर अकाली आन्दोलन भारत के विप्लव-इतिहास की मुख्य घटना है। इस आन्दोलन का सूत्रपात्र कैसे हुआ इसका अपना निजी इतिहास है। सन् १६२२ ई० के फरवरी मास में जब सत्याग्रह स्थगित हुआ तो लोगों की आशाओं पर पानी फिर गया। लोग जिस स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे। वह अब बहुत दूर दिखाई पड़ने लगा सशस्त्र क्रान्तिकारियों ने अपना कार्य जो दो तीन वर्षों से स्थगित कर रक्खा था। वे पुनः अपना संगठन करने लगे। पंजाब के कुछ वीरों ने देखा कि न तो पंजाब-हत्याकाण्ड का बदला लिया गया और न मार्शल ला का और न गुरु के बाग के निहत्थे भारतीयों के प्रति किये अत्याचारों का प्रतिकार हुआ। इसलिये कुछ वीरों ने इस पर कमर कसी कि इन अत्याचारों का बदला लिया जाय। तथा सशस्त्र क्रान्ति की जाय। इन घटनाओं में "मुंडेर युद्ध" सबसे अधिक प्रसिद्ध है। तीन बब्बर अकाली एक मकान में घिर गये थे और घंटों तक असंख्य सशस्त्र सैनिकों से युद्ध करते दो ने तो वहीं प्राण दे दिये और तीसरा व्यक्ति इतने कठिन घेरे से भी साफ बच कर निकल गया। उसका नाम श्री बयामसिंह था। मरने वाले थे श्री बन्तासिंह धामियाँ और श्री ज्वालासिंह कोटला।

श्री बन्तासिंह धामियाँ कलाँ के रहनेवाले थे। आपका जन्म सन् १६०० ई० में हुआ था। ये लड़कपन से ही बड़े नट-खट स्वभाव के थे। खेल-कूद में सदैव सबसे आगे रहते।

दिन भर खेलना-कूदना और ऊधम मचाना इनका काम था। घर वाले और मुहल्ले के लोग इनसे तंग रहा करते थे। गाँव के स्कूल में पढ़ने के लिये बैठाये गए, चार-पांच वर्ष तक कुछ पढ़ते रहे, पर इन्हें पढ़ना कहां अच्छा लगता था। कुछ बड़े होते ही पढ़ना छोड़कर फौज में नौकरी कर ली और तीन वर्ष तक ५५ नं० की पल्टन में काम करते रहे। फिर नौकरी में चित्त न लगने के कारण नौकरी छोड़ दी और घर पर स्वतन्त्र रूप से रहने लगे। कसरत करना और मस्त रहना आपकी दिन चर्या थी। दौड़ने में तो आप एक ही थे। शरीर भी बहुत मजबूत था। शरीर से यद्यपि मोटे न थे परन्तु बदन में अपार शक्ति, साहस और वीरता भरी हुई थी।

उन्हीं दिनों बब्बर अकाली आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उन बब्बर अकालियों की साहसपूर्ण घटनाएँ पढ़ कर आप बहुत प्रभावित हुए और शीघ्र ही इस दल में शामिल होकर बड़ी तत्परता से काम करने लगे। आपकी धारणा थी कि पुराने पापों का प्रायश्चित्त केवल निज प्राणोत्सर्ग करने से ही हो सकता है। वे अपनी उस कालिमा को निज खून से धोने के प्रयत्न में व्यग्र होकर कार्य क्षेत्र में अग्रसर हुए थे। भारत जब तक स्वतन्त्र न होगा तब तक जीवन धारण करना व्यर्थ है। ऐसे जीवन पर धिक्कार है। इनका रक्त खौलने लगा परन्तु शस्त्रादि के लिये रुपयों की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसलिए इस दल ने डाके डालना प्रारम्भ किया। श्री धन्नासिंह जी ने भी पूरा भाग लिया। सन् १९२३ ई० की तीसरी मार्च को जमशेर नामक स्टेशन मास्टर के घर पर डाका डाला गया। इस दल के नायक

बन्तासिंह ही थे। जिस समय डाका डाला जा रहा था, उसी समय इनके दल के एक पाशविक प्रवृत्ति के व्यक्ति ने एक स्त्री को देख कर उस पर हाथ डालना चाहा। बन्तासिंह की निगाह उस पर पड़ी। आपने कहा—"माता अपने गहने स्वयं उतार कर दे दीजिये, हम आपको नहीं छुयेंगे" उस स्त्री ने रोकर उस नीच की नीचता की कथा कह सुनाई और लाने के ढंग पर कहा—"ऐसा ढोंग क्यों दिखाते हो" ? पहले तो बन्तासिंह कुछ समझा नहीं कि यह क्या कह रही है। जब उसने सब मामले की जांच की तो आपका क्रोध भड़क उठा और आग बबूला हो गया। गड़ांसा लेकर उस नीच की ओर चल दिया। एक साथी ने आपके हाथ पकड़ लिया और सबके बहुत अनुनय विनय करने के बाद आपका क्रोध शान्त हुआ। आपने कहा—"ऐसे ही नीच व्यक्ति ऐसे पवित्र आन्दोलन को बदनाम कर देंगे।

इस घटना के बाद बन्तासिंह और भी मुस्तैदी से काम करते रहे और कई एक देश घातकों को मृत्युदण्ड दिया १२ मार्च को पुलिस के खुशामदी नम्बरदार बूटा सिंह को जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में सरकार की विशेष सहायता किया करता था, उसके घर पर आक्रमण कर उसे खतम कर दिया।

पुलिस भी सचेत थी उसको इन सब बातों का पूरा पता था वह भी आप लोगों को पकड़ने के फिराक में थी इसके लिये भारी पुरस्कार की घोषणा भी की गई थी। किन्तु आपको पकड़ना कोई आसान काम न था। सचमुच लोहे के चने चबाना

था। बब्बर अकालियों का नाम सुन कर पुलिस वालों के देवता कूच कर जाते थे। आमना-सामना होने पर भी आपको पकड़ने की हिम्मत न पड़ती थी। एक बार एक जंगल में कुछ घुड़ सवारों से आप से भेंट हुई थी। ये घुड़ सवार आप को गिरफ्तार करने को तैयार थे, आपने उन सवारों को अकेले ही ललकारा, परन्तु वे यह कह कर चलते बने कि "हम न तो आपको गिरफ्तार करना चाहते हैं और न मारना ही चाहते हैं क्योंकि आप लोग न हों तो भला सरकार हमारी इतनी इज्जत ही क्यों करे।"

धन्ना सिंह की वीरता की अनेक कहानियाँ सुनी जाती हैं। कहा जाता है कि एक दिन एक छावनी में अकेले ही घुस कर रिसाले के पहरेदार का घोड़ी और रायफल छीन कर चलते बने। छावनी के लोग हाथ मलते ही रह गये।

इसी तरह आप कई बार पुलिस के फन्दों से बच गये और बहुत दिनों तक पुलिस के साथ आँख-मिचौनी खेलते रहे अन्त में १२ दिसम्बर सन् १९२३ ई० को आप पुलिस के घेरे में आ गये। आप लोग पुलिस के इस चक्कर में इस बार भी न आते किन्तु एक देशद्रोही की मदद से पुलिस अपने कार्य में सफल हो सकी। बात यह थी शाम-चुगामी गाँव, जो कि जालन्धर से दस या बारह मील की दूरी पर है, वहाँ का एक व्यक्ति जगत-सिंह सन्देह में पकड़ा गया। पुलिस उसके विरुद्ध कुछ प्रमाण न पा सकी, इसलिये उसे धमका कर इस बात पर राजी किया कि वह अगर बब्बर अकालियों को पकड़वा दे तो वह छोड़ दिया जायगा और उसके साथ किसी प्रकार की कोई भी

कार्यवाई न की जायेगी, इस शर्त पर वह छोड़ दिया गया उसने अपने स्वार्थ साधन के लिये प्रयत्न शुरू किया अकालियों का पता लगा कर उनसे मित्रता स्थापित कर ली कुछ दिन पुलिस की हवालात में रह आने के कारण उसे अपनी वीरता की डींगें मारने का बहुत अवसर मिल गया। किन्तु वह तो निरा पशु था। उसने एक दिन बन्तासिंह, ज्वालासिंह और वर्यामसिंह को अपने घर पर टिका लिया और उधर पुलिस को खबर दे दी। थोड़ी देर में सशस्त्र पुलिस ने और फौज के सिपाहियों ने गाँव घेर लिया।

कुछ घंटे दिन रहते ही सेना ने गांव को घेर लिया। इधर इन लोगों को भी पता चला कि हम लोग बुरी तरह घेर लिये गये हैं। तब वे लोग एक चौबारे में जा चढ़े जहाँ से शत्रु की गोली का अच्छी तरह जवाब दे सकते थे। वे मरना चाहते थे किन्तु वीरतापूर्वक लड़ कर। वह सांग्रामिक दृष्टि से ऐसा सुन्दर स्थान था कि उन तीन आदमियों ने ही घंटों पुलिस को नाकों दम कर रक्खा था। दोनों ओर से खूब गोलियां चलीं और कई घंटों तक धुआंदार गोलियों की वर्षा हुई। उन लोगों पर सिपाहियों की गोलियां प्रायः व्यर्थ जाती थीं। सैनिक लोगों की मशीनगनें और रायफलें सब व्यर्थ हुई जाती थीं। सामने मकान की छत पर मशीनगन चलाई गई परन्तु कुछ प्रभाव न हुआ। जब अफसरों ने देखा कि इस तरह से काम न चलेगा तो उन लोगों ने एक घृणित उपाय का अवलम्बन किया जो मनुष्यता की दृष्टि से सर्वथा निन्दनीय है। पम्प से मकान पर तेल डाल कर आग लगा दी गई। एक तो मकान में बन्द आदमियों

पर छापा मारा गया, दूसरे आग लगा दी गई। इससे बढ़कर पाशविकता और क्या हो सकती है? इसी बीच में ज्वालासिंह के एक गोली लगी। वे बुरी तरह घायल हो गए। उनमें उठने की जरा भी शक्ति न थी। बन्तासिंह मकान से निकल भागने का प्रयत्न करने लगे, तब तक एक गोली सनसनाती हुई आई और बन्तासिंह के लगी वह भी गिर पड़े। उस समय उनमें इतनी भी शक्ति न रही कि खिड़की के पास जाकर शत्रु पर गोली चला पाते। आपने अपने साथी वर्यामसिंह से वेदना भरी आवाज में कहा—वर्यामसिंह निकल भागो भाई देखो बच सको तो बच जाओ, यदि बचे रहोगे तो एक न एक दिन इन लोगों से बदला ले सकोगे। फिर कभी हमारा इनसे बदला लेना। परन्तु हाँ, मेरी एक प्रार्थना है कि इस रिवाल्वर को चढ़ा कर सिर पर या छाती पर मार दो, क्योंकि अब जीते जी शत्रुओं के हाथ में बन्दी बनने की इच्छा नहीं होती। इस प्रकार से मरना शत्रुओं के हाथ से मरने की अपेक्षा अच्छा है। तड़प तड़प कर शत्रुओं के हाथ में मरने की अपेक्षा एक बार अन्त कर दो तो अच्छा है।

कैसा करुणापूर्ण दृश्य है। सामने आजन्म सुख-दुख के साथी हमारे बन्तासिंह घायल हुए आँखों के सामने तड़प रहे हैं उन्होंने अन्तिम इच्छा भी प्रकट कर दी है। कौन मित्र होगा जो अपने मित्र की अन्तिम इच्छा पूरा करना न चाहता होगा, परन्तु कितनी कठिन और कितनी भयंकर वह अन्तिम इच्छा है। अपने प्रियजन को अपने ही हाथों से गोली मारना कोई सुगम कार्य नहीं। परन्तु यह भी तो नहीं देखा जा सकता कि

शत्रु उन्हें शान्तिपूर्वक मरने भी न दें और शत्रु इनकी दुर्दशा करके अन्त में इनकी जान लेंगे ही। कितनी चिन्तापूर्ण परिस्थिति थी। घर में धांय-धांय करके आग की लपटें निकल रही हैं, अपने दो साथी मृत्युशय्या पर लेट चुके हैं। बाहर शत्रु की भीषण मशीनगनें आकाश को अपने धुयें से मलिन कर रही हैं, बन्दूकों की धड़ाधड़ आवाज दिशाओं को बहरा बना रही हैं। देरी करने और अधिक सोचने-समझने का अवसर नहीं, क्षण भर में शत्रु के हाथ पड़ जाना होगा। यह सब सोच कर वर्यामसिंह ने भागने का निश्चय किया। यद्यपि भागने को दिल नहीं चाहता था, जहां उसके प्राणों से प्यारे दो साथी मृत्युशय्या पर शयन कर रहे हों, सुख की नींद सो रहे हों, वहां उसे भाग कर जीवन की रक्षा करना आनन्ददायी नहीं हो सकता, किन्तु मित्र का अनुरोध भी तो नहीं छोड़ा जा सकता। अन्त में आपने रिवाल्वर भर कर बन्तासिंह के हाथों पकड़वाते हुए, रुंधे हुए गले से बिदा माँगते हुए कहा—"भाई आजतक न जाने कितनी हत्याएँ कर डालीं कितनी ही बार निःशङ्क भाव से लोगों पर गोलियाँ चला दीं, परन्तु अपने ही साथी, अपने सहोदर से भी प्यारे साथी, पर गोली चलानी पड़ेगी यह कभी भी न सोचा था। यह लो रिवाल्वर, जब जरूरत समझना अपने हाथ से ही गोली मार लेना।

साथी मर रहा है, सामने अपनी मौत नृत्य कर रही है बाहर दनादन गोली बरस रही है। वर्यामसिंह ने फिर एक बार बन्तासिंह को फिर छाती से लगाया और अन्तिम बिदा माँग कर भभकती हुई अग्नि में कूद पड़ा। वह वीर उस घेरे

से सहज में ही निकल गया। दो एक सिपाहियों ने पीछा करने का साहस किया। रिवाल्वर हाथ में था, तुरन्त गोली चलाकर यमपुर को पहुँचा दिया सैनिकों को पीछा करने की हिम्मत न हुई।

मकान धांय-धांय जलने लगा। गोली भी बराबर चलती रही। अन्त में उस वीर की मृत्यु कैसे हुई इस बात का पता न चला। वन्तासिंह के प्राण पखेरू गोली से गये या आग में जल कर उसका मृत्तिका का शरीर कंचन हो गया। यह बात नहीं कही जा सकती। इस तरह की वीर-गति बिरले ही पाते हैं। इस वीर का लोहा इसके शत्रुओं तक ने स्वीकार किया है। यह वीरता की प्रतिमा साहस की मूर्त्ति, गम्भीरता का अनन्त सागर था। इसने विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ा था और संसार के लिए अपने प्राणों की आहुति देकर सब का प्यारा होकर मरा।

श्री बर्यामसिंह धुग्गा

श्री बर्यामसिंह धुग्गा का जन्म होशियारपुर जिले के एक धुग्गा नामक गाँव में हुआ था। आप बड़े सुदृढ़ तथा शक्तिशाली व्यक्ति थे। शरीर गठा हुआ और मजबूत था। आपको विशेष शिक्षा न मिल सकी थी। बहादुर आप बचपन से ही थे

सैनिक शिक्षा की ओर विशेष रुचि थी। बड़े होने पर सैनिक शिक्षा पाकर एक सेना में भरती होकर नौकरी करने लगे। सेना में भी आपकी वीरता प्रसिद्ध थी। आपको सेना के अफ-सर बहुत चाहते थे आप बहुत समय तक सेना में ही काम करते रहे।

आपके घर वालों से एक आदमी की शत्रुता थी उसने अव-सर पाकर बर्यामसिंह धुग्गा के परिवार वालों को नष्ट कर डाला था। उस समय आप बालक थे। आपके हृदय में उससे बदला लेने का भाव जमा ही हुआ था किन्तु छोटे होने के कारण अपनी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ न हो सके थे। एक दिन शत्रु से बदला लेने की उमंग उठी और आप इतने व्यग्र हो उठे कि अपनी भावना को दबा न सके। सैनिकों को कितने 'डिसिप्लिन' में रहना पड़ता है। यह बात किसी से छिपी नहीं है। आपने सायंकाल की हाजिरी दी और रात ही रात अपना काम पूरा करके लौट आने का निश्चय किया। आप हाजिरी दे कर चल दिये। बीस मील की दूरी पर वह रहता था आप भागते ही गये और उसको कत्ल करके और अपना नाम घोषित कर सुबह की हाजिरी तक पलटन में फिर आगए। इसलिए आपके विरुद्ध कोई भी कार्यवाई न की जा सकी। भला फौज के रजिस्टर भी झूठे हो सकते हैं। कुछ दिन बाद आपने नौकरी छोड़ दी और स्वतन्त्र रूप से रहने लगे।

बाद में संगति के कारण आप डकैत बन गए। दोआबे में आप बड़े प्रसिद्ध डकैत थे। आपकी धाक चारों ओर फैली हुई थी पंजाब में क्रान्ति की लहर चल ही रही थी। बब्बर

अकाली जत्थे के बनते ही आप उसमें शामिल हो गए और श्री बन्तासिंह जी के साथ मिल कर सारे काम में योग देते रहे बन्तासिंह जी के कारण आप में देशभक्ति के भावों की जागृति हुई यद्यपि उच्च शिक्षा नहीं मिली थी किन्तु हृदय तो भावुक था और बुद्धि तीव्र थी। इसलिये सारी बातें थोड़े ही समय में समझ गये। बन्तासिंह के कारण आप में एक अनोखा परिवर्तन हो गया।

१२ दिसम्बर सन् १९२३ ई० को बन्तासिंह के साथ आप भी 'मुण्डेर नामक' गांव के घेरे में आ गए। तीनों वीरों ने जिस साहस के साथ शत्रुओं के दांत खट्टे किये वह एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है। उसका वर्णन हम बन्तासिंह के वर्णन में पीछे कर आये हैं। अस्तु मकान में आग लगने पर आप साहस कर घेरे में से भाग निकले। आपको देखते ही सिपाहियों के प्राण खुश्क हो गए।

इसके बाद आप दूर लायलपुर के जिले में चले गये। उधर एक सम्बन्धी के घर में ठहरे हुए थे। बचपन से उसी सम्बन्धी ने आपका पालन-पोषण किया था। परन्तु लोभ और स्वार्थ मनुष्य की बुद्धि नष्ट कर देता है। वर्यामसिंह जी से कहा गया—"हथियार गांव से बाहर खेतों में रख दीजिये ताकि किसी को सन्देह न हो सके"। वह सम्बन्धी महोदय आपको गाँव में ले गये भोजन आदि कराया। रात अंधेरी थी। भोजन करते ही कहा—"जाता हूँ शस्त्र छोड़कर दिल में न जाने क्या होने लगता है। लौट कर शस्त्रों वाले स्थान को चल दिये। परन्तु सेना तो वह स्थान पहले से ही घेरे हुए थी। पुलिस

सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० डी० गेल आपको जीवित ही गिरफ्तार करना चाहते थे किन्तु उस वीर का जीवित गिरफ्तार करना कोई आसान काम न था। उसने तो लड़कर मरने का इरादा कर रक्खा था जो वीर जीवन भर लड़ता रहा, वह इस समय कैसे अपना कदम पीछे रख सकता था। चारों ओर से सेना ने घेरा डाल दिया और धीरे-धीरे घेरा डालकर सेना ने बढ़ना शुरू किया। आप भी सब ताड़ गये। एक स्थान पर खड़े होकर सोचने लगे कि क्या किया जावे ? इतने में ही मि० डि० गेल ने जोर से कहा—"बर्यामसिंह आत्म समर्पण कर दो" बर्याम-सिंह ने कहा—'अरे हिम्मत है तो एक बार शस्त्र ले लेने दो, फिर दो दो हाथ हो ही जाँय"। मि० डी० गेल ने अवसर पाकर पीछे से पकड़ लिया। दोनों हाथ छुड़ा कर अपनी कृपाण बर्यामसिंह ने खींच ली और उसके बाजुओं को बुरी तरह घायल करके उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। शत्रुओं में उस समय सिंह घिरा खड़ा था। शत्रु उसको जीवित गिरफ्तार करना चाहते थे किन्तु उसकी कृपाण देखकर किसी की हिम्मत न होती थी कि उसके पास जाकर पकड़े। सब जी मसोस कर रह जाते थे। कई बार दो चार सिपाही हिम्मत करके आगे बढ़े किन्तु घायल होकर पीछे हटना पड़ता था। जब उसे किसी तरह काबू में आते न देखा तो मि० डी० गेल ने उसपर गोली चलाने की आज्ञा दे दी। चारों ओर से अकेले और निहत्थे बर्यामसिंह पर गोलियों की बौछार होने लगी। इस प्रकार छाती पर गोलियां खाकर वह वीर स्वर्गधाम को सिधारा।

उनका शव लायलपुर ले जाया गया। सहस्त्रों नर, नारी

उसके दर्शन के लिये लालायित थे लोग उसकी वीरता पर मुग्ध थे। सैकड़ों आदमी उसकी प्रशंसा कर रहे थे और उसके अनुपम साहस की सराहना कर रहे थे। लोग चाहे उसे कुछ समझें वह तो भारत माँ का लाड़ला पुत्र था। उसके कार्यों की कीर्ति सदा अमर रहेगी।

तरुण दलीपसिंह

तरुण दलीपसिंह का जन्म धमियांकलां जिला होशियारपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री लाभसिंह था। कुछ बड़े होने पर स्कूल में बैठाए गये। बालक ने तभी से अपनी कुशलता का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया। दलीपसिंह पढ़ने लिखने में सर्वश्रेष्ठ न होने पर भी अपने साथियों में सर्व-प्रिय अवश्य थे। उनसे अपनी इच्छानुसार काम ले लेना तो इनके बाएँ हाथ का खेल था।

सन् १९२२ ई० की बात है। दलीपसिंह के लड़कपन के खेल छूटने भी न पाये थे कि उस कोमल हृदय पर एक गहरी चोट लगी। नान करना साहब की दुर्घटना तथा अकालियों पर किये गये अत्याचारों ने उस मात्र के हृदय को एकदम बेचैन कर दिया। १९२३ ई० में लाड़ प्यार से पाले गये उस बालक दलीप ने घरबार पर लात मार कर अकाली मत की दीक्षा ग्रहण की।

इसके बाद आपने क्या-क्या किया उसके बारे में अदालत में फैसला सुनाते समय आपके सम्बन्ध में कहे गये जज के शब्द ही आपकी प्रशंसा के लिये पर्य्याप्त हैं।

एक दिन सन्तासिंह के साथ 'कन्दी' नामक स्थान पर कुछ पर्चे बांटने जा रहे थे कि एकाएक पुलिस ने घेर लिया। १२ अक्टूबर १९२३ ई० को तरुण दलीप जंजीरों में बांध कर मुल्तान जेल लाये गए। बालक समझ कर लोगों ने चाहा कि डरवा कर कुछ बातें मालूम कर ली जांय किन्तु आशाओं पर पानी फिरता देख उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। भला वे एक छोटे से बालक की इस धृष्टता एवं गुस्ताखी को कैसे सहन कर सकते थे। बस मार पड़ने लगी। कभी-कभी बीच-बीच में कुछ लालच भी दिया गया, पर अन्त में उसी एक खामोशी के और कुछ हाथ न लगा।

दलीपसिंह देखने में बहुत भोले और सीधे थे, इनकी आकृति भव्य और सुन्दर थी। आयु भी उस समय केवल १७ ही वर्ष की थी। आपकी बाल्यावस्था तथा भोलेपन पर ही मि० टैप सेशन जज मुग्ध थे। वे नहीं चाहते थे कि उन्हें फांसी की सजा दी जाय। परन्तु सभी गवाहों की गवाही आपके विरुद्ध सुन कर आप बहुत भुंभलाते थे और एन केन प्रकारेण यही चेष्टा करते कि दलीपसिंह के विरुद्ध कुछ न लिखें। कई दिन तक यह खींचातानी चली। आखिर एक दिन दलीपसिंह हाथ बांध कर जज महोदय के सामने जाकर खड़े हो गये और कहा—"आपकी इस कृपा दृष्टि के लिये मैं बहुत धन्यवाद देता हूँ, परन्तु कृपा कर मेरा वक्तव्य पहले लिख लीजिये। मैंने यह सभी कुछ किया

है और अगर आज छूट जाऊँ तो फिर यही सब करूँगा परन्तु आप मुझे जीवित रखने के लिये क्यों लालायित हो रहे हैं। मैं तो फांसी पर लटक कर अपने प्राण दिया चाहता हूँ। उसका कारण यह है कि मुझे ईश्वर की कृपा से मानव-देह जैसा दुर्लभ पदार्थ मिला है। इसे मैंने अभी तक किसी तरह भी अपवित्र नहीं किया है और चाहता हूँ कि आज इसी तरह पवित्र-देह माँ के चरणों में भेंट कर दूँ। कौन कह सकता है कि कुछ दिन और जीता रहा तो यह पवित्रता स्थिर रह सकेगी या नहीं। इसके बाद इस बलिदान का सारा महत्व और सौन्दर्य ही जाता रहेगा।

जज हैरान होकर उसके मुख की ओर ताकने लगा और मन ही मन सोचने लगा—यह भी कैसा अजीब आदमी है। संसार तो मृत्यु से छूटने के लिये लाखों प्रयत्न करता है, परन्तु यह जानबूझ कर उस अग्नि में निर्भयता के साथ कूदना चाहता है। अभी यह बालक है इसे दुनियाँ की हालत का अभी पता नहीं है। किसी के बहकाने से यह निन्दित काम करने लगा है। जज ने कहा—दलीप मैं तुम्हें फिर एक अवसर देता हूँ कि अपने बयान पर फिर विचार कर लो। सम्भव है तुमने किसी आवेश या मिथ्या ज्ञान के कारण ऐसा किया है। अन्त में वही निश्चय रहा जो पहले था। मृत्यु-दण्ड सुनाया गया और फांसी की रस्सियों से झूला झूल गया।

तरुण दलीप! कायरता के युग में भारत के सोये हुए प्राणियों में स्फूर्ति संचार फूंक कर एकाएक तुम किस लोक में विलीन हो गये। १७ वर्ष की छोटी अवस्था में तुमने किस नशे में

उन्मत्त होकर वे सब काम किये थे। वह कार्यकुशलता, वह साहस और वह उत्साह और वह लगन तुमने इतनी जल्दी कहां से प्राप्त कर ली थी। तुम्हारा जीवन प्रकाश रूप था। क्षणिक दिव्य आभा दिखाकर संसार से चलते बने। भारत माँ! तुम ऐसे वीर पुत्रों को पाकर ही वीर प्रसविनी हो गई।

श्री नलिनी बागची

यदि पंजाब को करतारसिंह, बन्तासिंह, और बन्तासिंह धामियां ऐसे वीरों को पैदा करने का अभिमान है तो बंगाल को भी श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी और श्री नलिनी बागची सरीखे रण बांकुरे पैदा करने का गौरव है। जिसने जीवन को निर्मय और निर्भय होकर बिताया, कायरता जिसके पास कभी फट-कने न पाई, जिसने अपने अस्तित्व को हँसते-हँसते मिटा दिया। ऐसे वीर विप्लव दल और क्रान्तिकारी समाज में ही दिखाई पड़े।

पंजाब का विराट-विप्लव आयोजन विफल हो चुका था। इस पर भी विप्लवी एकदम निराश न हुए थे। जो लोग उस समय की धड़ पकड़ से बच गये थे। उन्होंने फिर नये सिरे से उस महान् यज्ञ की आयोजना प्रारम्भ कर दी। बिहार में संगठन की कमी थी। अस्तु वीर भूमि के श्री नलिनी बागची

को भागलपुर के कालेज में पढ़ने के लिये भेजा गया। यहां आकर नलिनी बिलकुल बिहारी बन गया। नलिनी बड़ा विलक्षण व्यक्ति था, इनको बिहारी बनने की सूझी। सर के लम्बे-लम्बे बाल कटाकर उन्होंने टोपी पहननी शुरू कर दी एक मोटे कपड़े का कुर्त्ता तथा फेंटदार धोती बाँधकर वे कालेज में पढ़ने जाते। इस तरह से आप अपने अज्ञात के दिवस बिताने लगे। भला अग्नि कहीं गूदड़ों में छिप सकती, समय पाकर वह अपना उग्र रूप प्रकट हो कर देती है। इतना सब होते हुए भी और सब प्रकार से अपने को अप्रकट रूप में रखते हुए भी आप पुलिस की निगाह से न बच सके और विवश हो, उन्हें कालेज छोड़कर फिर बंगाल जाना पड़ा।

सन् १६१७ के दिन थे। बंगाल में उस समय भी चारों ओर धर-पकड़ जारी थी, इस कारण इनका यहां अधिक समय तक ठहरना न हो सका। परिस्थिति अधिक भयानक होते देख कुछ दिनों के लिये कार्य को स्थगित कर चुने-चुने कार्यकर्त्ताओं, को किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाने का आदेश हुआ। व्यर्थ में प्राणों की आहुति देने से क्या लाभ? यदि प्राणों का उत्सर्ग ही करना है तो कुछ करके मरना चाहिए। यही सोच कर नलिनी वागची अपने चार साथियों को साथ लेकर गोहाटी की ओर चले गये और वहाँ जाकर एक किराये के मकान में रहने लगे। सोते समय वह वीर रिवाल्वर भर कर तकिये के नीचे रख लेता और बारी-बारी से एक आदमी खिड़की में बैठ कर पहरा देता।

अभी अधिक दिन न बीते थे कि किसी ने पुलिस को पता दे दिया कि अमुक मकान में कुछ बंगाली युवक रहते हैं। उस ज़माने में दो चार बंगाली युवकों का एक साथ रहना एक भयानक बात समझी जाती थी, इसका कारण यह था कि बंगाल में उस समय क्रान्ति हो रही थी। बस फिर क्या था। दूसरे ही दिन प्रातःकाल मकान घेर लिया गया। पहरे वाले युवक ने धीरे से और साथियों को जगा दिया और सब लोग नीचे आकर पुलिस पर गोलियाँ बरसाने लगे। पुलिस को इस प्रकार के आक्रमण का लेशमात्र भी ध्यान न था। गोलियों के बरसते ही पुलिस वाले क्षण भर में तितर-बितर हो गये। ये लोग भाग कर पास की पहाड़ी पर जा पहुँचे।

तीसरे पहर का समय था। एकदम हज़ारों सशस्त्र सिपाहियों से पहाड़ी घिर गई। एक बार फिर बन्दूक तथा पिस्तौलों की आवाज से आकाश गूंज उठा। किन्तु इतनी सेना के सामने इने-गिने युवक कब तक ठहर सकते थे अस्तु दो को छोड़ कर शेष सभी वहीं पर मारे गये। बचे हुये दोनों युवक किसी प्रकार आँख बचाकर निकल गये। सात दिन तक बिना खाये पिये पहाड़ी पर घूमते रहने से नलिनी के अंग शिथिल होने लगे। इसी बीच एक पहाड़ी कीड़ा भी इनके चिपक गया। नलिनी वहाँ से पैदल ही बिहार पहुँचे। किन्तु भाग्यवश पुलिस वहाँ भी पहले ही से आपकी तलाश में थी। आपको बिहार से भी भागना पड़ा।

बंगाल में हावड़ा-स्टेशन पर पहुँच कर आपको कोई भी साथी न मिला। शरीर बिलकुल कमज़ोर हो चुका था। दो

सप्ताह से खाना तो दूर रहा अन्न के दर्शन भी न हो सके थे। पहाड़ी कीड़ा अब भी उसी भांति चिपका था। वह कीड़ा क्या था मानों मृत्यु का दूत था जो इस बुरी तरह पीछे पड़ा कि नलिनी को उसने काफी परेशान कर दिया कहावत है—दुःख कभी अकेला नहीं आया करता। वीर नलिनी किन भयंकर कठिनाइयों में पड़ा था और उस पर उस कीड़े ने उसके शरीर को विपाक्त कर दिया उसे ज्वर भी आने लगा। पास में कोई साथी नही है। यदि इस दुःख में कोई सच्चा साथी है वही 'रिवाल्वर'। रिवाल्वर पास में भरा हुआ है। चलने की शक्ति नहीं, किराया करके कहीं जाने के लिये पैसे नहीं, खाने के लिये दाना नहीं, और पुलिस का भय भी अभी दूर न हो सका था। निराश हो नलिनी किले के मैदान में एक वृक्ष के नीचे पड़ रहा। कैसा भीषण दृश्य है। दूसरों के लिये जान देने वालों की यह दुर्दशा। धन्य है वीर नलिनी इस पर भी नहीं घबराया, उसने अपना साहस नहीं छोड़ा

इसी प्रकार दो दिन उस पेड़ के नीचे पड़े-पड़े बीत गये। मनुष्य किसी की मदद नहीं करता है तो भगवान तो उसे देखता है। होनहार की बात थी, किसी कारण से उनका एक साथी उधर से आ निकला था भगवान ने उसे उसकी मदद करने को उसके मित्र को भेज दिया जो कुछ भी हो। नलिनी का मित्र अपने साथी का यह दृश्य देख कर फूट-फूट कर रोने लगा। शरीर में विष अधिक फैल गया था। चेचक भी सम्भव है विष के कारण उत्पन्न हो गई थी। इस कष्ट में देखकर मित्र का हृदय विदीर्ण हो रहा था। वह नलिनी को अपने कंधे पर लाद कर घर तक लाया। उस समय तक संयोग

वश कोई सवारी भी न मिल सकी थी। उसने घर के एक स्वच्छ कमरे में नलिनी को आराम से पलंग पर लिटाया और इलाज के लिये सोचने लगा। किन्तु अब इलाज कैसे हो ? नलिनी को बाहर ले जाना मौत को निमन्त्रण देना था। उनके साथी ने नलिनी के शरीर पर हल्दी मिला कर मट्ठे की मालिश करनी शुरू कर दी तथा छाछ ही इन्हें पीने को देने लगा।

भगवान की लीला बड़ी विचित्र है ! नलिनी इसी से अच्छा होने लगा, जिस दिन दोनों ने एक साथ बैठ कर भोजन किया उस दिन उस साथी को आनन्द की सीमा न रही, प्रेम के कारण नलिनी की भी अश्रु धारा बड़े वेग से बह निकली। सच-मुच क्या ही दृश्य था, दोनों मित्र अपार आनन्द में अश्रु की धारा बहा रहे हैं। स्वस्थ होने पर भला नलिनी को कब चैन थी ? वह तो स्वतन्त्रता के लिये व्याकुल था, आजादी की मदिरा ने उसे पागल कर रक्खा था। मित्र के साथ नलिनी फिर काम के लिये निकल पड़ा। संयोग-वश घर से निकलते ही उसका साथी गिरफ्तार हो गया। और नलिनी इस बार भी बच गये।

नलिनी ने हावड़ा में एक मकान किराये पर लिया और उसी में तारिणी मजूमदार के साथ रहने लगे। अभी चैन से बैठने भी न पाये थे कि फिर पुलिस के घेरे में आ गये। दोनों साथियों ने बाहर आकर फिर सामना शुरू कर दिया। दोनों ओर से गोली चलने के बाद तारिणी वीरगति को प्राप्त हुआ। नलिनी के भी गोली लग चुकी थी, किन्तु उसके अरमान अभी पूरे न हुए थे। अफसर ने सामने आकर कहा—"आत्म-समर्पण कर दो" उत्तर में नलिनी के रिवाल्वर की गोली ने साहब की टोपी नीचे

गिरा दी। इस बार इस धड़ाके की आवाज के साथ ही नलिनी भी जमीन पर आ गिरा।

नलिनी के गिरते ही उसे गिरफ्तार कर लिया गया। जिस प्रकार शिकारी शिकार को घायल पाकर घेर लेता है उसी प्रकार पुलिस वालों ने उसे घेर लिया। नलिनी घायल होता हुआ भी मस्ती के साथ उठा और पास ही में खड़ी घोड़ा गाड़ी में सवार हो गया। अस्पताल के कमरे में नलिनी एक खाट पर पड़ा है। चारों ओर पुलिस अफसरों का जमाव है।

"तुम्हारा क्या नाम है ? कहां के रहने वाले हो ? पिता क्या करते हैं ? तुम्हें मरने के पहले अन्तिम बयान देना होगा" आदि बातों के कहे जाने पर वीर ने धीरे से कहा—"तंग न करो, कृपा कर मुझे शान्ति से मरने दो"

बिना सम्मान के, बिना प्रशंसा के और बिना अश्रु बहाए जाने का कितना ज्वलन्त उदाहरण है। जीवन भर संकटों के साथ खेल कर अन्त समय भी उसकी यही इच्छा थी कि कोई उसे न जाने कि वह कौन था और कैसे मर गया। वह अज्ञात और असम्मानित तौर पर ही इस संसार से जाना चाहता था। उसे- इसकी इच्छा न थी कि मेरे नाम पर लोग अश्रु बहायें।

१५ जून १९१८ को मां का एक और पागल पुजारी उसकी गोद से सदा के लिए छिन गया। धन्य हैं ऐसे वीरों को जो दूसरों के लिये अपने प्राणों को तृणवत् समझ कर इस संसार से चले जाते हैं।

गोपी मोहन साहा

सरकार ने क्रान्तिकारियों को नष्ट करने का कई बार प्रयत्न किया, किन्तु वे नष्ट न हो सके। जब पंजाब में कुछ शान्ति होती तो बंगाल में नया षड़यंत्र निकल आता। आग धीरे-धीरे भीतर सुलगती रही। कभी वह आग बुझती सी जान पड़ती थी तो कभी भभकती हुई दिखलाई पड़ती थी। सब प्रकार के उपायों में असफल हो जाने पर क्रान्तिकारी दल को छिन्न भिन्न करने के लिये बंगाल सरकार ने आर्डिनेन्स की शरण ली, मनमानी गिरफ्तारियां होने लगीं। जिसको चाहा पकड़ कर अनिश्चित समय के लिए जेल में फेंक दिया। न कोई सबूत की आवश्यकता थी और न अदालत में जज के सामने लाने का कोई काम था। इतना ही नहीं, जेल में बेचारे नवयुवकों पर अत्याचारों की कमी न थी। कहीं-कहीं तो अत्याचार और निर्दयता अपनी चरम सीमा को पहुँच गए थे।

सन् १९२० ई० में महात्मा गांधी जी ने शान्तिमय असहयोग आन्दोलन चलाया। सारा भारत जागृत हो उठा और एक वर्ष में स्वराज्य का स्वप्न देखने लगा। बंगाल के युवकों का यद्यपि इसमें विश्वास न था। फिर भी उन लोगों ने महात्माजी के सामने सिर झुकाया और क्रान्तिकारी होते हुए भी शान्ति वादी बन गये। १९२२ ई० में असहयोग आन्दोलन महात्माजी को किन्हीं कारणों से स्थगित करना पड़ा। एक-एक करके सभी नेता तथा हजारों कार्य-कर्त्ता जेलों में ठूंस दिये गये। बंगाल

के नवयुवकों को यह बर्दाश्त न हुआ और वे अपने उसी पुराने प्रोग्राम पर जुट गये बंगाल गवर्नमेन्ट को भी डर हुआ कि असहयोग से निराश नवयुवक यों ही चुपचाप बैठे न रहेंगे। इसलिये उसने अनुमान पर अच्छे अच्छे कार्यकर्त्ताओं को आर्डिनेन्स के अनुसार जेल में बन्द कर दिया। न उसने नियमानुसार किसी पर कोई जुर्म साबित किया और न उनकी सजा का कोई समय ही निश्चित किया। यही नहीं उन पर क्रूरता करने में भी कमी न की गई। कहा जाता है कि ये सभी काम पुलिस-कमिश्नर मि० टेगार्ट के इशारे पर ही हो रहा था। एक तरह से बंगाल में टेगार्ट का ही राज्य था, उसकी ही दुन्दुभी बज रही थी। अतः वह लोगों की आंखों में काँटे की भाँति खटकने लगा।

एक नवयुवक जिसका नाम गोपीमोहन साहा था। टेगार्ट की मनमानी कार्रवाइयों से अन्दर ही अन्दर जल रहा था। जब यह पढ़ता था, उसी समय क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गया था। जब सब लोग जेलों में बन्द कर दिये गये तो यह और तड़फड़ाने लगा। जब यह जेलों के अत्याचारों को सुनता तो व्याकुल हो उठता। मि० टेगार्ट पर यह इतना क्रुद्ध हुआ कि दिन रात उसी की सूरत उसकी आँखों के सामने नाचा करती। लोगों का कहना है कि उसकी अशान्ति इतनी बढ़ गई कि वह बात करते-करते टेगार्ट का नाम लेकर चिल्ला उठता था एक दिन सोये-सोये मि० टेगार्ट को ललकार कर उठ बैठा। उसके बाद वह एक प्रकार से पागल-सा हो गया। सोते-जागते हर समय उसे टेगार्ट का ही ध्यान रहने लगा।

मि० टेगार्ट के कारनामें और अत्याचारों से उसके हृदय में प्रतिहिंसा की आग सुलग उठी। धीरेधीरे उसके स्वभाव में भी परिवर्तन होने लगा। जो मोहन, मोहन बन कर पहले सबको हँसाया करता था, उसने अब मौन व्रत धारण कर लिया। उसकी चंचलता गम्भीरता में परिणत हो गई। अब वह एकान्त में बैठ कर न जाने घंटों तक क्या सोचा करता था। मन ही मन न जाने क्या निश्चित कर, एक दिन वह टेगार्ट के बंगले के सामने जाकर घूमने लगा। कलकत्ते की चोरंगी रोड पर उसका बंगला था। यह वीर इसी सड़क पर बहुत घूमा करता। एक दिन टेगार्ट के बंगले से एक अंगरेज निकला। गोपी मोहन ने समझा यही मि० टेगार्ट हैं। आपने दनादन पिस्तौल छोड़ी, गोली के लगते ही वह जमीन पर गिर पड़ा। जब साहा ने देखा कि यह टेगार्ट नहीं है तो पिस्तौल से गोली छोड़ना बन्द कर दिया। पिस्तौल रख देने पर साहा को गिरफ्तार कर लिया गया।

मुकद्दमा चला। युवक ने अदालत में जो बयान दिया उसे सुन कर जज दंग रह गया। उस वीर ने कहा—कि "मुझे दुख है कि मैं जिसे मारना चाहता था उसे न मार सका और एक निरपराध व्यक्ति की हत्या हुई। जिसका मुझे बड़ा दुख है।" अदालत से फांसी की सजा हुई। फांसी के दिन यह युवक जितना प्रसन्न दीख रहा था उसका वर्णन करना कठिन है। उस पर एक अजीब मस्ती थी वह प्रसन्नचित्त से इस संसार से बिदा हो गया।

कुछ लोगों ने उसे श्रद्धा से देखा किसी ने कहा वह मस्त था पागल था दीवना था किसी ने कहा उसे देश प्रेम की लगन थी

किसी ने कहा—उसके काम में निस्वार्थ देश-सेवा की झलक थी। जो कुछ भी हो वह फांसी के तख्ते पर एक शान के साथ चढ़ा और वीर की भांति परलोक को चला गया उसके कार्य के पीछे जो महान आदर्श छिपा था उसे भुलाने का सामर्थ्य किसी में कभी भी न हो सकेगा।

गेंदालाल दीक्षित

अन्य प्रान्तों की भांति युक्त प्रान्त को भी भारत मां के चरणों में बलिदान होने का सौभाग्य प्राप्त है। राम और कृष्ण की जन्मभूमि ने भी अनेक सुरभित-सुमन मां के चरणों में सादर और सप्रेम समर्पित किये हैं। उन्हीं अमूल्य रत्नों में से एक खास रत्न पं० गेंदालाल दीक्षित भी थे। आपका जन्म आगरा जिले की बाह तहसील के मई नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम भोलानाथ दीक्षित था। इनकी मां दुर्भाग्य से जब ये ३ वर्ष के ही थे तभी मर गई थीं। हिन्दी मिडिल पास करके आप इटावा अंग्रेजी पढ़ने को गये और वहां के हाई स्कूल में पढ़ते रहे। वहां से आगरा चले गये और आगरे से ही आपने इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। आगे पढ़ने की इच्छा रहते हुए भी आर्थिक-स्थिति ठीक न होने के कारण पढ़ना

छोड़ना पड़ा, और जीविका के लिये औरैय्या के डी० ए० वी स्कूल में अध्यापकी का कार्य करना पड़ा।

बंग भंग के दिन थे, स्वदेशी आन्दोलन चल रहा। था इस आन्दोलन ने नवयुवकों में एक हलचल सी उत्पन्न कर दी थी। आप पर भी इसका प्रभाव पड़ा। लोकमान्य तिलक के तो आप अानन्य भक्त बन गए। महाराष्ट्र में उधर शिवा जी के उत्सव मनाने का आन्दोलन चल रहा था। आपने भी 'शिवाजी समिति' नामक संस्था कायम की, इस समिति का नाम नवयुवकों में देश प्रेम उत्पन्न करना था। बंगाल के नवयुवकों को प्राणों की किञ्चित् मात्र भी चिन्ता न करते हुए, बम तथा रिवाल्वर का प्रयोग करते देख पं० गेंदा लाल ने भी उस नीति का अनुसरण करने का निश्चय किया किन्तु उपयुक्त साधन प्राप्त न होने के कारण आपको अपने निश्चय से हटना पड़ा और नीति को त्याग देना ही आपने श्रेयस्कर समझा।

संगठन और प्रचार के कार्य में आर्थिक-संकटों से विवश होकर आपको डाके डालने पड़े, इसके लिये आपने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाकुओं का साथ किया। अपने स्वार्थ के लिये डाके डालने के आप विरोधी थे। देश हित के लिये डाका डालना कोई दोष न था। आपके दल में अधिकतर अशिक्षित थे इस लिये आपको विशेष सफलता न मिली। कुछ दिन के लिये आप बम्बई चले गये। वहां से लौटने पर आपको कुछ शिक्षित नवयुवक मिले जिनके मिलने से आपको यह आशा बंधी कि बंगाल की भांति यहां भी राज विद्रोह समितियां स्थापित हो सकती हैं। आपने उन युवकों को अस्त्र-शस्त्र देकर उन्हें उनका

प्रयोग भी दिखलाया। इसी बीच में एक युवक से आपकी भेंट हुई जिन्हें समिति के लोग 'ब्रह्मचारी' के नाम से सम्बोधित करते थे। ब्रह्मचारी जी ने चम्बल और यमुना के बीच के जंगलों में रहने वाले डाकुओं का संगठन किया। यह ग्वालियर राज्य में डाके डालने लगे। इनका दल खूब बढ़ गया और धन भी खूब इकट्ठा हो गया 'ब्रह्मचारी जी डाके डाल कर धन लाते थे। ग्वालियर राज्य की ओर से उनकी गिरफ्तारी का सिर तोड़ प्रयत्न हो रहा था। ब्रह्मचारी के दल के एक आदमी को लोभ देकर फोड़ा गया और ब्रह्मचारी को पकड़वाने का आयोजन किया गया. नीच ने भी पकड़वाने का वचन दे दिया।

डाका डालने का एक स्थान निश्चय किया गया। वह स्थान इतनी दूर था कि वहाँ पहुँचने में दो दिन लगते थे एक दिन जंगल में पड़ाव डालना था। साथ में ८० आदमी थे। राज्य का एक गुप्तचर इनमें आ मिला और जंगल में इनको टिका दिया स्वयं भोजन लाने को चला गया, थोड़ी देर बाद वह ताजी-ताजी पूड़ी ले आया। ब्रह्मचारी जी और उनका दल क्षुधा से पीड़ित था। यद्यपि ब्रह्मचारी कभी दूसरे का भोजन नहीं करते थे किन्तु विवश होकर उनको उस दिन वह पूड़ियां खानी पड़ी। पूड़ियों के खाते ही जीभ ऐंठने लगी, उनको मालूम हो गया कि इस भोजन में विष मिला है। वह गुप्तचर इनको पूड़ी खाते देखकर पानी लाने के बहाने चल दिया। ब्रह्मचारी जी ने पूड़ियों में जब विष होना अनुभव किया तो तुरन्त उस आदमी पर गोली चला दी। गोली की आवाज सुनते ही पुलिस के बहुत से सवार जो उस जंगल में छिपे थे आ धमके परस्पर युद्ध आरम्भ

हो गया और खूब गोलियाँ चलीं। जब तक इन लोगों को होश रहा तब तक यह बड़ी वीरता से लड़े। ब्रह्मचारी और गेंदा लाल दोनों आहत हो गए। इनके दल के ३५ मनुष्य उस समय घायल हुए। ब्रह्मचारी, गेंदा लाल तथा इनके अन्य साथी पकड़ कर ग्वालियर के किले में बन्द कर दिये गये।

गेंदा लाल जी ने 'मातृवेदी' नाम की एक संस्था कायम की थी। उस संस्था के सदस्य ग्वालियर गये और अपने नेता को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। संस्था के सदस्य महल देखने के बहाने किले में गये और पण्डित जी से मिले। सब हाल जान कर निश्चय किया गया कि जैसे भी हो पण्डित जी को छुड़ाया जाय। किन्तु असावधानियों के कारण भेद खुल गया गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। मामला बहुत बढ़ गया और मैनपुरी सचित्र के नाम से कोर्ट में अभियोग चला।

सरकारी गवाह सोमदेव ने पं० गेंदा लाल को इस षडयंत्र का नेता बनाया और ग्वालियर में उनके पकड़े जाने का हाल कह सुनाया। अस्तु आप ग्वालियर से मैनपुरी लाये गये। किले में बन्द रहने तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण आपका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। आप इतने दुर्बल हो गए थे कि स्टेशन से मैनपुरी जेल तक जाने में (केवल एक मील में) आठ जगह बैठना पड़ा। आप को तपेदिक का रोग हो गया था। जेल पहुँचने पर आपको जेल सम्बन्धी सब समाचार मिले।

आपने पुलिस वालों से कहा, कि तुम लोगों ने इन बच्चों को क्यों गिरफ्तार किया है। बंगाल और बम्बई के बहुत से

क्रान्तिकारियों से मेरा सम्बन्ध है। मैं बहुतों को गिरफ्तार करवा सकता हूँ। दिखाने के लिये दो चार नाम भी बता दिए। पुलिस वालों को आशा हुई कि जेलों के कष्टों के कारण यह सारा हाल खोल देगा। यह अवश्य ही सरकारी गवाह बन जावेगा। अब क्या था, पण्डित जी सरकारी गवाह समझे जाने लगे। पुलिस आपकी आव भगत करने लगी। वे जेल से सरकारी गवाहों में रख दिये गये। एक दिन मालूम हुआ कि पं० गेंदा लाल एक और सरकारी गवाह सहित गायब हैं। पुलिस ने बहुत सर मारा परन्तु गेंदा लाल का पता न लगा सकी।

पं० गेंदालाल वहां से भाग कर रामनरायण के साथ कोटा पहुँचे। वहां दुष्ट रामनरायण आपका सब सामान लेकर और एक कोठरी में आपको बन्द करके चलता बना। तीन दिन तक बिना अन्न जल के आप उस कोठरी में बन्द रहे और बड़ी कठिनाई से कोठरी से निकल कर पैदल चलकर आगरा पहुँचे। किन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ भी आपको आश्रय न मिला। कहीं भी ठहरने का स्थान न मिलने पर विवश हो आप अपने घर चले गए। घर वालों को पुलिस ने बुरी तरह सता रक्खा था। आपको देखकर सब बड़े भयभीत हुए। घर वालों ने सोचा—पुलिस को बुलाकर आपको गिरफ्तार करा दिया जाय। कैसी शोचनीय स्थिति थी घर वाले भी देश के काम करने वाले को घृणा और भय की दृष्टि से देखते थे। पिता पुत्र को इसलिये घर में रहने देना नहीं चाहता था कि पुलिस उसको परेशान करेगी। आपने घर वालों की यह दशा देखकर कहा—आप घबड़ाइए नहीं, मैं बहुत शीघ्र ही आप लोगों के यहां से चला जाऊँगा"। अन्त में

दो तीन दिन बाद आपको अपना घर छोड़ना पड़ा। उस समय आपकी हालत इतनी कमजोर थी कि दस कदम चलने पर आपको मूर्च्छा आ जाती थी। जैसे तैसे आप दिल्ली पहुँचे। वहां जीवन निर्वाह के लिये एक प्याऊ पर नौकरी कर ली। स्वास्थ्य दिनों दिन बिगड़ रहा था। अपनी अवस्था का परिचय देते हुये आपने अपने एक सम्बन्धी को पत्र लिखा। पत्र पाते ही वह सज्जन आपकी पत्नी को साथ लेकर दिल्ली आ गए।

बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी अवस्था में कोई परिवर्तन न हुआ। दिनों दिन अवस्था और खराब होती गई और आपको घड़ी घड़ी पर मूर्च्छा आने लगी। आपकी स्त्री यह दशा देखकर फूट-फूट कर रोने लगी। उस समय का हृदय विदारक दृश्य आपके आत्मीय से न देखा गया। वह बाहर आकर रोने लगे। पण्डित जी को जब होश आया और उन्होंने यह हालत देखी तो अपने सम्बन्धी को ढाँढस देते हुए कहा तुम रोते क्यों हो। तुम लोग दुःख मत करो। यदि देश-सेवा हेतु प्राण चले गये तो मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया। मुझे शान्ति के साथ अपना अन्तिम जीवन बिताने दो पत्नी को सम्बोधन करके पूछा—तुम क्यों रोती हो? पत्नी ने उत्तर दिया प्राणनाथ! आपके सिवाय मेरा इस संसार में कौन है? पण्डित जी ने एक ठन्डी सांस लेकर और मुस्कराते हुए कहा—"आज लाखों विधवाओं का कौन है? लाखों अनाथों का कौन है? २२ करोड़ किसानों का कौन है? दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारत माता का कौन है? जो इन सब का मालिक है, वही तुम्हारा

भी। तुम अपने को सौभाग्यवती समझो यदि मेरे प्राण देश सेवा के निमित्त जाते हों। मुझे केवल इतना ही दुख है कि मैं अत्याचारियों के अत्याचार का बदला न ले सका। आपने फिर कहा—तुम्हारे पिता अभी जीवित हैं, भाई भी हैं और मेरे बहुत से कुटुम्बी तथा मित्र हैं, वे सब तुम्हारी मदद करेंगे। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो।

इसके पश्चात् आप फिर बेहोश हो गये, अवस्था बड़ी भयंकर हो गई थी। उनके सम्बन्धी ने सोचा कि यदि यहीं पर प्राणान्त हो गया तो अन्तिम संस्कार भी करना कठिन हो जायगा। पुलिस को पता लग गया तो बड़ी मुसीबत का सामना करना होगा। इसलिये उन्हें सरकारी अस्पताल में भरती कराकर वे उनकी स्त्री को साथ ले कर चल दिये। लौट कर देखा तो पण्डित जी चुपचाप बिस्तर पर पड़े थे। उनका नश्वर शरीर संसार को त्याग चुका था। उस समय दिन के दो बजे थे और दिसम्बर सन् १९२० की २१ वीं तारीख थी।

जिस देश के लिये सर्वस्व त्यागा, सारे कष्ट सहे और अन्त में प्राण तक दे दिये, उस देश के किसी ने यह भी न जाना कि पण्डित गेंदालाल कहाँ विलीन हो गये। भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में आप का नाम आदर के साथ अंकित होगा। आप भारत की निधि और इस प्रान्त के त्यागी, वीरात्मा और उज्ज्वल क्रान्तिकारी पुरुष थे।

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल'

रामप्रसाद के पूर्वज ग्वालियर राज्य के थे। इनके पितामह श्री नारायण जी अपने कुटुम्ब और भाभी के दुर्व्यवहार के कारण शाहजहाँपुर आकर रहने लगे थे। इनके पिता का नाम मुरलीधर था। सन् १९०० ई० के लगभग आपका जन्म शाहजहाँपुर में हुआ। यही स्थान हमारे चरित्र नायक का शिक्षा क्षेत्र रहा उर्दू की शिक्षा पाने के बाद माता-पिता ने स्थानीय एक अँग्रेजी स्कूल में भरती करा दिया। बालकपन में रामप्रसाद जी उच्छृंखल प्रकृति के थे। स्कूल की संगति का आप पर भी प्रभाव पड़ा और जो दोष साधारणतः लड़कों में आ जाते हैं, उनसे आप बच न सके। किन्तु इसी बीच में आर्य समाज के प्रसिद्ध स्वामी सोमदेव से आपका परिचय हो गया। यहीं से आपके जीवन ने पलटा खाया और वे स्वामी जी के साथ-साथ आर्य समाज के भक्त बन गये। स्वामी जी को आप गुरु कहा करते थे। इन्हीं की कृपा से आपका जीवन संयम-शील हुआ और धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचारों की ओर प्रवृत्ति हुई। यह भी कहा जाता है कि देश सेवा के भाव पहले-पहल आपको स्वामी जी से ही मिले।

रामप्रसाद जी ने जब से देश सेवा का व्रत लिया तब से आपने शरीर-सुदृढ़ बनाने का भी प्रयत्न किया। आप नित्य व्यायाम करते थे और साथ ही ब्रह्मचर्य व्रत का भी पूर्ण पालन करने लगे। इसके फलस्वरूप आप थोड़े ही दिनों में असाधारण शक्तिशाली हो गये। घोड़ा चढ़ने, साइकिल चलाने और

तैरने आदि विद्याओं में बड़े निपुण थे। साठ साठ मील पैदल चले जाते थे और उस पर भी हिम्मत न हारते थे। व्यायाम और प्राणयाम इतना करते थे कि देखने वाले लोग दंग रह जाते थे। आपने स्कूल में तो कुछ उच्च शिक्षा ग्रहण न कर पाई थी किन्तु उसके बाद स्वाध्याय की प्रवृत्ति हो जाने के कारण आप एक जानकार हो गये थे। हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था। हिन्दी में कई पुस्तकें भी लिखी थीं। रामप्रसाद जी में लिखने की अपेक्षा व्याख्यान देने की शक्ति अच्छी थी। व्याख्यान आपका बड़ा जोशीला और प्रभावोत्पादक होता था।

सन् १९१५ के विराट विप्लव-आयोजन में विफल हो जाने के बाद भी क्रान्तिकारी लोग एकदम निराश न हुए। कुछ लोगों ने मैनपुरी को केन्द्र बनाकर फिर से कार्य आरम्भ कर दिया था। श्री गेंदालाल दीक्षित की अध्यक्षता में बहुत दिनों तक काम होते रहने के बाद अन्त को इसका भी भेद खुल गया और गिरफ्तारियों का बाजार गर्म हो उठा। इस दल के बहुत से लोग पकड़े गये, परन्तु मुख्य कार्यकर्त्ता कोई भी हाथ में न आ सका। पण्डित रामप्रसाद जी भी इस षडयंत्र के प्रमुख व्यक्ति थे उस समय आपकी अवस्था १९ वर्ष के लगभग थी। अंग्रेजी की दसवीं कक्षा में पढ़ते थे। जोरों से धर-पकड़ होते देख और अपनी गिरफ्तारी का हाल सुनकर आप फरार हो गए।

सन १९१६ में लखनऊ में काँग्रेस हुई। आप उसमें शामिल हुए। इनके हृदय में क्रान्तिकारी विचार अंकुरित हो गए क्रान्तिकारी दल का संगठन करने लगे। मैनपुरी विप्लव-दल के नेता

श्री गेंदालाल के ग्वालियर में गिरफ्तार हो जाने पर उन्हें जेल से छुड़ाने का आपने घोर प्रयत्न किया। किन्तु भेद खुल जाने के कारण आप सफल न हो सके।

१६ वर्ष की उमर में अपने साथ के १५ और विद्यार्थियों को लेकर पहिली डकैती की थी। इस पहले ही प्रयास में आपने जिस दृढ़ता तथा साहस से काम लिया, उसे देख कर यही कहना पड़ता था कि वे स्वभाव से ही मनुष्यों के नेता थे।

स्कूल के पन्द्रह विद्यार्थियों को लेकर आप डकैती के लिये चल दिए। पिता से कहा—मेरे मित्र की शादी है, वे गाड़ी ले जाना चाहते हैं। मुझे भी उनके साथ जाना पड़ेगा। संध्या समय प्रस्थान कर दिया गया, कुछ रात बीतने पर एक स्थान पर गाड़ी रोक दी गई। जिस स्थान पर डाका पड़ना था वह स्थान वहां से १० मील की दूरी पर था। गाड़ी पर एक आदमी छोड़ दिया गया और शेष सभी साथी पैदल चल दिए। पहले दिन तो अंधेरे में मार्ग भूल जाने से वह गांव न मिला सब निराश हो कर लौट आए। दूसरे दिन थोड़े ही प्रयत्न से वह स्थान मिल गया। अंधेरी रात थी चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। सब बे सुध सो रहे थे। राम प्रसाद जी ने तीन लड़कों को मकान की छत पर चढ़ने की आज्ञा दी लाड़-प्यार से पाले गये स्कूल के लड़कों ने काहे को कभी ऐसे भयानक कार्य में भाग लिया था? देर करते देख कप्तान ने जोर से कहा—"यदि ऐसा ही था तो चले ही क्यों थे। साहस कर लड़के मकान की छत पर चढ़ गये आज्ञा हुई "अन्दर कूद कर दरवाजा खोल दो "किन्तु यह काम तो और भी कठिन था। कप्तान ने फिर कहा—जल्दी करो।

देर करने से विपत्ति की सम्भावना है, इस प्रकार तीन बार कहने पर भी कोई नीचे न उतर सका। वे लोग इधर उधर देख ही रहे थे कि एक जोर की आवाज के साथ बन्दूक की गोली से एक का साफा नीचे आ गिरा। इस बार तीनों बिना कुछ सोचे विचारे मकान में कूद पड़े। अन्दर जा कर मकान का दरवाजा खोल दिया सब लोगों का यथा स्थान खड़ा कर स्वयं छत पर से आदेश देने लगे। डकैती अभी समाप्त भी न हो पाई थी कि गांव में खबर हो गई और चारों ओर से ईंटें चलने लगे। आपने जिस ओर से ईंटें आ रही थीं, उधर जाकर कहा—"ईंटें बन्द कर दो अन्यथा गोली से मारे जाओगे" .इतने में एक ईंट आंख पर आकर लगी, देखते देखते कपड़े खून से तर हो गए। उस समय उस साहसी वीर ने आंख की कुछ परवाह न करके गोली चलाना शुरू कर दिया। दो ही फायरों के बाद ईंटें बन्द हो गई इधर डकैती भी समाप्त हो चुकी थी। सब लोग वापस चल दिए उनके साथी प्रायः थक चुके थे। आधी दूर चल कर ही सब लोग बैठने लगे। बहुत कुछ साहस बंधाने पर उठकर चले ही थे कि एक विद्यार्थी बेहोश होकर गिर गया। होश आने पर उसने कहा मुझमें चलने की शक्ति नहीं है। 'तुम लोग मेरे लिए संकट में न फँसो, मेरा सिर काट कर लेते जाओ। अभी कुछ रात शेष है तुम लोग आसानी से पहुँच सकते हो। सर काट लेने पर मुझे कोई भी पहचान न सकेगा। इस प्रकार तुम सब बच सकोगे" साथी की इस बात से सबके आंसू आ गये। राम-प्रसाद जी के आंख में चोट लग जाने के कारण काफी खून निकल चुका था किन्तु फिर भी आपने हिम्मत न हारी और सबसे

आगे चलने के लिये तैयार हो गये। आपने उस विद्यार्थी को को अपने कंधे पर बिठा लिया और यथेष्ट स्थान पर आ गये। उस विद्यार्थी को गाड़ी में बैठा कर ले आये। मकान में पिता के पूछने पर कह दिया—"बैल बिगड़ गए, गाड़ी उलट गई और मेरे चोट आगई।

मैनपुरी षडयंत्र में आपका नाम खुलने के कारण आपके लिए गिरफ्तारी का 'वारण्ट' था आप फरार हो गए थे। फरार होकर आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागते फिरते थे। उस समय की कथा भी बड़ी करुणाजनक है। इस बीच में कई बार आपको मौत का सामना करना पड़ा। साथ ही अनेक विपत्तियां भी झेलनी पड़ी। कभी कभी तो ऐसे दिन भी आगए थे कि पास में एक भी पैसा न था। आपने घास तथा पत्तियां खाकर ही अपने जीवन का निर्वाह किया। आप इस बीच में नेपाल, आगरा तथा राजपूताना आदि स्थानों में घूमते रहने के बाद एक दिन अखबार में देखा कि सरकारी एलान में आप पर से भी वारण्ट हटा लिया गया है। आप घर वापस आगए और रेशम के सूत का एक कारखाना खोलकर कुछ दिन तक काम काज देखते रहे। किन्तु जिसके हृदय में एक बार आग लग चुकी हो। उसे फिर चैन कहां। अस्तु फिर से दल का संगठन प्रारम्भ कर दिया।

एक बार किसी स्टेशन पर जा रहे थे। कुली बक्स लेकर पीछे पीछे चल रहा था कि ठोकर खाकर गिर पड़ा। बहुत सी कारतूसों के साथ कई एक रिवाल्वर्स बक्स में से निकल कर प्लेटफार्म पर गिर पड़े कुली पर एक सूट-बूट धारी साहब बहादुर द्वारा बुरीतौर से मार पड़ती देख पास खड़े हुए दारोगा

साहब को दया आ गई। कुली को क्षमा करने की प्रार्थना कर बेचारे स्वयं ही सारा सामान बक्स के अन्दर भरने लगे। उस दिन आप तनिक भी डर जाते और बुद्धिमानी से काम न लेते तो निश्चय ही गिरफ्तार हो गए थे।

९ अगस्त सन् १९२५ ई० को सन्ध्या समय ८ बजे आठ नम्बर गाड़ी हरदोई से लखनऊ जा रही थी। एकाएक काकोरी तथा आलम नगर के बीच ५९ नम्बर के खम्भे के पास गाड़ी खड़ी हो गई। जंजीर का खिंचना था कि गाड़ी खड़ी हो गई और मुसाफिर लोग खिड़कियों से मुख निकाल-निकाल कर झांकने लगे कि क्या मामला है? गार्ड भी उतर कर उस कमरे की ओर जाने लगा, जिस कमरे से जंजीर खींची गई थी। गाड़ी खड़ी होते ही कुछ नौजवान रेल के डिब्बों से उतर पड़े और कुछ क्षण में ही कार्य आरम्भ कर दिया गया। गार्ड साहब को पिस्तौल दिखाकर जमीन पर लेटने की आज्ञा दी गई। वे औंधे मुख जमीन पर लेट गए और सब ने अपने-अपने हथियार निकाल लिए। चार मनुष्य—दो गाड़ी के एक ओर और दो दूसरी ओर पहरे पर खड़े हो गये। इनके पास मेजर पिस्तौलें थीं, जिनकी मार १००० गज तक होती है। जिनमें दस गोलियाँ एक साथ भरी जाती हैं। कुछ व्यक्ति रेल के थैले वाले डिब्बे में घुस गये और धक्का देकर उस खजाने के सन्दूक को डिब्बे से नीचे गिरा दिया। इसके बाद यह समस्या उपस्थित हुई कि इस सन्दूक को खोला कैसे जाय? यदि गार्ड या अन्य किसी के पास चाभी होती तो मिल जाती। किन्तु गाड़ी में किसी के पास चाभी नहीं रहती। जो सरकारी खजाने जाते

हैं उनका ढंग यह होता है कि प्रत्येक स्टेशन पर जब गाड़ी रुकती है तो स्टेशन मास्टर अपना थैला लाकर उस सन्दूक में डाल जाता है। यदि उसमें थैला डालना चाहे तो डाल सकता है किन्तु कोई उसमें से निकाल नहीं सकता। उसकी बनावट ही ऐसी होती है।

लोगों ने घन आदि से सन्दूक तोड़ना प्रारम्भ किया। जब सन्दूक तोड़ने में देरी होने लगी तो असफाक ने, चट से आकर घन लेकर सन्दूक तोड़ने में जुट गया। थोड़ी ही देर में बड़ा सा सूराख हो गया। थैले निकाल लिये गये और चादर में बाँध लिये गये। यह सब काम १० मि० से भी कम में पूरा किया गया और थैलों को लेकर झाड़ियों की ओर सब लोग चल दिये।

इस काम में दस व्यक्ति सम्मिलित थे। अशफाकउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा शचीन्द्र बख्शी इस काम के लिये चुने गये थे। इस टुकड़ी का नेतृत्व अशफाक कर रहे थे। शेष सात व्यक्ति पण्डित रामप्रसाद जी नेतृत्व में काम कर रहे थे। प्रायः ऐसे अवसरों पर वे हमेशा किया करते थे। पण्डित रामप्रसाद जी के लिये यह कोई नई बात न थी। पुराने कार्य-कर्त्ता और कई डाकों में भाग ले चुके थे। लोगों का यह भी कहना है कि काकोरी की घटना के आपही प्रमुख-व्यक्ति थे। आपही ने यह योजना सुझाई थी। और अन्त तक आपही की चतुरता से यह काम पूर्ण हो सका। शाहजहाँपुर से ही हथि-यार, छैनी, घन और हथौड़े आये थे।

रेल के मुसाफिरों को बराबर दहाड़-दहाड़ कर चेतावनी दी जा रही थी कि वे अपने स्थान पर सावधानी से बैठे रहें बाहर न उतरें, उनके लिये खतरे की बात है। इसके अतिरिक्त कुछ हिसाब से गोलियाँ भी बराबर रेल के दोनों और समानान्तर रेखा में चलाई जा रही थी। इस पर भी एक आदमी उतरा और वह मारा गया। ये लोग थैले लेकर लखनऊ के चौक की ओर रवाना हुये। रास्ते में थैलों को खोलकर नोट तथा रुपये निकाल लिये और थैलों के चमड़ों को फेंक दिया गया।

२५ सितम्बर से गिरफ्तारियाँ आरम्भ हो गई और उसी में पण्डित रामप्रसाद जी भी पकड़े गये। डेढ़ साल तक अभियोग चला। आपको फांसी की सजा सुनाई गई। बहुत कुछ प्रयत्न किया गया किन्तु फांसी की सजा कम न हुई सन् १९२७ ई० के १९ दिसम्बर को आपको गोरखपुर में फांसी दी गई।

जनता में उन्हें डाकू के नाम से प्रसिद्ध किया गया। पर वह क्या सचमुच डाकू था ? उसने अपने जीवन में गरीबों को सताने के लिये कभी भी डाका नहीं डाला। माताओं के लिये उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। एक समय एक पेशेवर डाकुओं के सरदार ने आपके पास आकर अपने आपको क्रान्तिकारी दल का सदस्य बतलाया। और आप से सहयोग की प्रार्थना की आपने वचन दिया कि पहली डकैती में दर्शक की भांति ही रहेंगे। डाका डाला गया और आप उसमें शामिल हुये अन्दर घुसने पर लोग अपनी मनमानी करने लगे। एक आदमी ने एक स्त्री का हाथ पकड़ लिया और बुरी भावना से

उसे एक रुपया पूछने के बहाने कोठरी की ओर ले चला। आपसे यह बर्दाशत न हुआ—आपने ललकार कर कहा—खबरदार "अगर किसी ने स्त्रियों की ओर आंख उठाई। तो गोली का निशाना बनेगा और सरदार से कहा—"कायर यदि भविष्य में तू ने फिर कभी अपनी स्वार्थ-सिद्ध के नाम पर क्रान्तिकारी को कलंकित किया तो अच्छा न होगा। जा आज तुझे क्षमा करता हूँ. इस डकैती में सिर्फ चौदह आने पैसे इनके हाथ लगे थे।

गोरखपुर की जनता ने आपकी अर्थी बड़ी शान और सजधज के साथ निकाली—अर्थी पर फूल बरसाये गये पैसे आदि भी लुटाये गये उनकी इच्छा के अनुसार वैदिक विधि से अन्त्येष्टि संस्कार किया गया।

अन्त समय में रामप्रसाद जी 'बिस्मिल' यह शैर कही—

"मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरजू रहे।"

"एक हसरत दिल में बिस्मिल के मिट जाने की है"

अशफाकुल्ला खाँ

अशफाक उल्ला मुसलमान जाति के भूषण और चमकते हुए सितारे थे। यह पहले मुसलमान हैं जिन्होंने भारत मां, के चरणों पर अपने को बलिदान कर दिया। साम्प्रदायिक पक्षपात से वह कोसों दूर रहते थे। उनका हृदय बड़ा विशाल और विचार उदार थे। वे सब के साथ समानता का व्यवहार करते थे। लोगों का कहना है कि मुसलमान होने पर भी उनके साथ रहने से यह नहीं मालूम पड़ता था कि लोग किसी गैर के साथ रह रहे हैं। वह नौ जवान था, उसमें नौजवानी कूट कूट कर भरी थी। उसके रग रग से एक अजीब मस्ती प्रकट होती थी।

अशफाक शाहजहां पुर के निवासी थे। उनका खानदान वहां के प्रसिद्ध रईसों में से था। इनको बचपन से ही खेल कूद में शौक था। इनका शरीर सुगठित और चेहरा रोबदार था। तैरना, घोड़े की सवारी करना शिकार खेलने आदि में बड़े सिद्ध हस्त थे। हृदय भी आपको बड़ा भावुक मिला था। देश की दशा देखकर आपके मन में एक कसक रहने लगी। मन में एक प्रकार की टीस सी बनी रहती। देश सेवा के कामों में सह-योग देने लगे। क्रान्तिकारी दल वालों की खोज में रहने लगे। अन्त में इनको अपने ही घर में एक 'पीर' मिल गये। रामप्रसाद 'बिस्मिल' से इनका परिचय हुआ और उन्हीं के साथ उन्होंने काम शुरू कर दिया। ये दोनों सहोदर भाई के समान प्रेम से रहते थे। रात दिन एक साथ उठना बैठना, सोना, घूमना और

खाना-पीना होता था। शिकार खेलने में भी हमेशा दोनों का साथ रहता था। दोनों शिकार के प्रेमी थे परमात्मा ने दोनों की जोड़ी बहुत ही सुन्दर मिलाई थी मालूम पड़ता था खुदा ने इन दोनों को किसी एक खास मकसद को पूराकरने के लिये भेजा था सचमुच हुआ भी ऐसा ही। क्रान्तिकारी दल को अस्त्र-शस्त्र खरीदने के लिये कई हजार रुपयों की जरूरत हुई। लोगों का कहना है कि किसी जहाज पर गुप्तरूप से बहुत अधिक संख्या में हथियार आये हुये थे। इसके लिये लोगों ने अपने घरों में जहाँ तक बन पड़ा चोरियाँ आदि की, चन्दा भी किया गया किन्तु जितनी रकम चाहिये थी पूरी न हो सकी। इसी के अनुसार स्कीमें बनने लगीं। निश्चय किया गया कि किसी गाँव में डाका डाला जाये, शायद एक डकैती डाली गई। किन्तु उससे कुछ धन नहीं मिला। तब पण्डित रामप्रसाद जी ने यह कहा—कि रेल के थैले लूट लिये जांय। इस में वाद विवाद छिड़ गया। अशफाक उल्ला खां इसके विरुद्ध थे, उनका कहना था कि ऐसा करना सरकार को चुनौती देना होगा और सरकार क्रान्तिकारियों के पीछे हाथ धोकर पड़ जायगी। अन्त में बहुमत से रेल के थैले लूटने का निश्चय रहा। दोनों मित्रों में कुछ सैद्धान्तिक विचारों का मत भेद था। अशफाक का कहना था कि इस काम के लिये यह समय उपयुक्त नहीं रामप्रसाद जी का कहना था किसी काम के लिये कोई समय निश्चित नहीं होता। जब ही जो काम किया जा सके कर लेना चाहिये। ईश्वर की इबादत के लिये कोई खास वक्त मुकर्रर नहीं, यह नहीं कि वह अमुक वक्त मिलेगा और अमुक वक्त न मिलेगा। इसी तरह

अच्छे कामों को करने के लिये कोई खास वक्त नहीं। अशफाक को पण्डित जी की यह युक्ति पसन्द न आई और उसने इस विवाद को बढ़ाना उचित न समझा, जो बहुमत से तय हो गया उसने मान लिया।

६ ता० की आठ नवम्बर की गाड़ी जो हरदोई से लखनऊ को आती है उसी में रेल का खजाना जा रहा था। इसके अतिरिक्त कोई और भी खजाना जा रहा था। जिसके साथ बन्दूकों का पहरा था। कुछ पलटनियां गोरे भी हथियार सहित मौजूद थे। जिनमें शायद एक मेजर के ओहदे का भी सेकण्ड क्लास में मौजूद था। साथियों में से इस बात की खबर एक ने दी तो सब लोग असमञ्जस में पड़ गये। श्री अशफाक उल्ला ने उस समय भी अपना विरोध इस काम के प्रति प्रकट किया, किन्तु लोग उसकी बात पर सहमत न हुये क्योंकि क्रान्तिकारी लोग इस काम को करने के लिये तुल गये थे और अपना कदम आगे बढ़ा चुके थे अपने को पीछे हटाने में वे सम्भव है अपना अपमान समझते हों।

यह एक महत्व पूर्ण घटना है कि यों तो अशफाक मना कर रहा था किन्तु जब उसने देखा कि लोग इस काम पर तुले ही हैं और इसको करेंगे ही तो वह भी कमर कस कर तैयार हो गया। उसकी सुन्दर बड़ी बड़ी आँखे, तेज से चमक उठीं, बिजली की तरह वह तड़प उठा और अपना पार्ट अदा करने लगा। अत्यन्त साहस और वीरता जो उसमें उस समय देखी गई वह विलक्षण थी। उसका मने करना किसी डर या शंका से प्रेरित होकर न था, प्रत्युत वह बुद्धिमत्ता की प्रतिध्वनि थी। बाद के इतिहास ने

यह सिद्ध कर दिया कि अशफाक सही पर था लोग गलती पर थे। यह बात बिलकुल सच है कि यदि क्रान्तिकारी लोग उस समय इस कार्य में इतनी शीघ्रता न करते तो इस दल के पांव न उखड़ते। अशफाक ने बड़ी वीरता से इस कार्य में सहयोग दिया और जो काम औरों से न हो सका उसे इसने पूरा किया।

काकोरी का केस चला। अशफाक उसके प्रमुख व्यक्ति घोषित किये गये। सरकारी वारण्ट निकला। आप पुलिस की आंखें बचा कर फरार हो गये। बहुत दिनों तक भागे हुए रहे। कुछ मित्रों ने उनसे रूस आदि देशों में भाग जाने को कहा—पर आपने उत्तर दिया कि वहां मेरा काम नहीं है। मेरा काम तो अपनेही देश में है। अन्त में पकड़े गये और रामप्रसाद जी के दाहिने हाथ समझे जाकर फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिये गये।

लखनऊ में एक दिन पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट इनसे जेल में मिले और कहने लगे—अशफाक तुम मुसलमान हो और मैं भी मुसलमान हूँ। मुझे तुम्हारी गिरफ्तारी पर बड़ा अफसोस है। तुम काफिर रामप्रसाद के साथी कैसे बन गये ? तुम इन काफिरों के चक्कर में कैसे आ गये। यह सुन कर अशफाक की आखें लाल-लाल हो गई और उनकी आंखों से मानों आग बरसने लगी। उन्होंने कहा—"खबरदार ! ऐसी बात मुंह से अब न निकालियेगा। रामप्रसाद वगैरह सच्चे हिन्दुस्तानी हैं उन्हें साम्प्रदायिक राज्य से घृणा है और अगर यह सच भी हो तो अंग्रेजों के राज्य

से हिन्दुओं के राज्य को मैं अधिक पसन्द करूँगा। क्योंकि वे हमारे ही साथी हैं और हमारे भाई हैं।

हम बता आये हैं कि रामप्रसाद जी की और अशफाक की अत्यन्त दोस्ती थी। इसी कारण अशफाक के रिश्तेदार उसे काफिर कहते थे। एक बार अशफाक बीमार हो गये और बीमारी हालत में राम राम कह कर चिल्लाने लगे। इनके माता-पिता ने कहा कि राम राम क्या चिल्लाते हो पाक खुदा का नाम लो। किन्तु यह तो राम के दीवाने थे वहाँ खुदा की दाल कैसे गलती। घरवालों ने कहा—यह काफिर हो गया है। इतने में एक पड़ोसी आया वह इस राम राम के भेद को जानता था तुरन्त रामप्रसाद को बुला लाया रामप्रसाद को देखते ही कहा राम तुम आ गये। थोड़ी देर में दौरा शान्त हो गया और तबियत अच्छी हो गई।

अशफाक के हृदय में धर्मान्धता के भाव न थे उनकी दृष्टि में मन्दिर और मस्जिद समान थे। शाहजहाँपुर में जब हिन्दू-मुसलिम दंगा हुआ तब आप आर्य-समाज मन्दिर में रामप्रसाद के साथ बैठे हुए थे। मुसलमानों का एक दल समाज मन्दिर पर आक्रमण के लिये आ गया। आप फौरन पिस्तौल लेकर बाहर निकल आये और कहने लगे—मुसलमानों में एक कट्टर मुसलमान हूँ किन्तु फिर भी इस मन्दिर की एक एक ईंट मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है। मेरे निकट मन्दिर और मस्जिद में भेद नहीं है। व्यर्थ का झगड़ा मत करो और यहाँ से चले जाओ यदि किसी ने इधर आँख उठाई तो गोली का निशाना बनेगा।

फांसी के समय अशफाक बड़ी प्रसन्नता के साथ तख्ने के पास गये, तख्ते को उन्होंने चूमा और उपस्थित जनता से कहा—"मेरे हाथ इन्सानी खून से कभी नहीं रंगे। मेरे ऊपर जो इल्जाम लगाया गया है वह गलत है, खुदा के यहां ही मेरा इनसाफ होगा" इसको जजों ने बेरहम, बर्बर, मानव कलंक आदि विशेषणों से याद किया है। मगर क्या इन जजों ने जलियान वाला बाग में जनरल 'डायर' को गोली चलाते देखा था सुना नहीं। वह काम क्या उनका उचित था। मैं पहला मुसलमान हूँ जो भारत की स्वतन्त्रता के लिये फांसी पर चढ़ रहा हूं। मन ही मन अभिमान का अनुभव कर रहा हूँ किन्तु मैं विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं हत्यारा नहीं था जैसा कि मुझे साबित किया गया है। अब मैं बिदा होता हूँ, ईश्वर आप सब का भला करें। सब को अन्तिम सलाम।"

फैजाबाद जेल में यह कौम-परस्त देश-भक्त मुसलमान युवक फांसी पर लटका दिया गया। अशफाक एक अच्छे शायर भी थे। मृत्यु के कुछ समय पहले उन्होंने कुछ शेर लिखे थे।

फना है सबके लिये हम पै कुछ नहीं मौकूफ।
बका है एक फकत जाति किब्रिया के लिये।
कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह है।
रख दे कोई जरा सी, खाके वतन कफन में ॥
ऐ पुख्ताकार-उल्फत१ हुशियार डिग न जाना।
मेअराज आशकार२ है, इसदार३ और रसन में ॥

१—प्रेम दृढ़ करने वाले। २—प्रेम का उच्च ध्येय ३—शूली।

बुजदिलों ही को सदा मौत से डरते देखा।
जो कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा॥
मौत से वीर को हमने नहीं मरते देखा।
तख्तये मौत पै भी खेल ही करते देखा॥
मौत इकबार जब आती है तो डरना क्या है।
हम सदा खेल ही समझा किये मरना क्या है?
वतन हमेशा रहे शाद कामय और आजाद।
हमारा क्या है अगर हम रहे, रहे न रहे॥
तंग आकर हम भी उनके जुल्म से बेदाद से।
चल दिये सूये अदम, जिन्दाने फैजाबाद से॥

वीर रोशन सिंह

रोशन सिंह वीर, दृढ़, साहसी और एक बलवान क्षत्रिय थे। यह शाहजहांपुर के नवादा नाम ग्राम के निवासी थे इन्होंने बालपन से तलवार, बन्दूक, गदकाफरी आदि का अभ्यास किया था। बन्दूक चलाने में तो यह इतने सिद्धहस्त थे कि उड़ती हुई चिड़िया भी मार गिराते थे। कुश्ती लड़ने का भी इन्हें अच्छा अभ्यास था। यद्यपि आपकी शिक्षा उच्च श्रेणी की न थी किन्तु

४—सफल मनोरथ।

हिन्दी और उर्दू का अच्छा अभ्यास था। ये शरीर से खूब मजबूत थे और सदैव कसरत किया करते थे। लोगों का कहना है कि फांसी घर में भी वे अन्तिम दिन तक व्यायाम करते रहे। यह अपने साथी अभियुक्तों में सबसे अधिक बलवान थे।

इन पर आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा था। आप नियमानुसार पूजा पाठ किया करते थे। आप बड़े धैर्य शील और कष्ट सहिष्णु थे। जेल में अपने पूज्य पिता के स्वर्गवास का हृदय विदारक समाचार सुन कर भी आप विचलित न हुये आंखों में आंसू तक न आये।

असहयोग आन्दोलन में इन्होंने गांव गांव घूम कर स्वराज्य का सन्देशा पहुँचाया था। इसी आन्दोलन में दो वर्ष की कड़ी कैद की सजा हुई थी। जेल से लौट कर यह रामप्रसाद बिस्मिल के दल में मिल गये और बड़ी मुस्तैदी से काम करने लगे। यह क्रान्तिकारी दल के प्रमुख व्यक्ति समझे जाते थे। सामरिक विभाग के एक प्रधान स्तम्भ थे। आपको भी सन्देह में पकड़ा गया और अभियोग चलाया गया। कहा जाता है कि आप पर काकोरी कांड का भी अभियोग लगाया गया। मुकदमा का फैसला सुनाया गया। रामप्रसाद जी व राजेन्द्र बाबू को फाँसी की सजा सुनाई जा चुकी थी। रोशन सिंह के सम्बन्ध में किसी को स्वप्न में भी सन्देह नहीं था कि उन्हें फांसी होगी क्योंकि अभियोग में इनके खिलाफ कोई सबूत नहीं पाया गया इनको स्वयं भी इसका अनुमान न था, किन्तु फांसी का हुक्म सुन कर सब दंग रह गये, लोग आश्चर्य से चारों तरफ देखने लगे, पर रोशन सिंह जी जरा विचलित न हुए।

आपने अपने एक मित्र को पत्र लिखा—कि इस सप्ताह के भीतर मुझे फांसी होगी। आप लोग मेरे लिये हरगिज़ रंज न करें। मेरी मौत खुशी का बाइस होगी। दुनियाँ में पैदा होकर मरना जरूरी है। मेरी मौत किसी प्रकार अफसोस के लायक नहीं। मेरा विश्वास है कि दुनिया की कष्ट भरी यात्रा समाप्त करके अब मैं आराम की जिन्दगी के लिये जा रहा हूं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो आदमी धर्म युद्ध में प्राण देता है उसकी वही गति होती है जो जंगल में रहकर तपस्या करनेवालों की होती है।

रोशनसिंह जी के चेहरे पर अन्तिम समय तक शोक की रेखा तक न थी। वे फांसी के दिन रात भर ईश्वर आराधना तथा गीता के पाठ में लगे रहे। २० दिसम्बर को प्रातःकाल प्रयाग की जेल में फांसी दे दी गई। आपने तख्ते पर चढ़ते समय 'ओ३म्' का उच्चारण किया और बन्देमातरम् का उच्चारण करते हुए भारत माता की जय का नारा लगाया। क्षण भर में काम तमाम हो गया, लाश त्रिवेणी तट पर पहुँचाई गई। अन्तिम संस्कार वैदिक विधि से किया गया। सबके मुँह से यही शब्द निकल रहे थे कि "यह वीर था, सच्चा बहादुर था"।

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

काकोरी षड़यंत्र के अभियोग में फांसी पाये हुये चार व्यक्तियों में राजेन्द्र बाबू भी एक थे। सम्भवतः सन् १९२२ या १९२३ ई० में आप क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित हुए।

इनका जन्म सन् १९०१ ई० में पबना जिले के भरंगा ग्राम में हुआ था। इनके पिता के नाम क्षितमोहन लहिड़ी था जो बड़े ही उदार विचार के थे। बंग-भंग के समय उन्होंने उसमें काफी भाग लिया था। आपके विचारों की छाया आपके पुत्र राजेन्द्र नाथ पर भी पड़ी। राजेन्द्र बाबू की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव पर हुई। सन् १९०९ ई० में आप बनारस आये और हिन्दू-यूनीवर्सिटी की एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करके कालेज में पढ़ने लगे। ये अर्थशास्त्र और इतिहास के प्रेमी थे। और एम० ए० में इतिहास ही पढ़ते थे। इन्हें अपनी (बंगाल) मातृ-भाषा से भी बड़ा प्रेम था। आपने अपनी माता बसन्त कुमारी की स्मृति में एक पुस्तकालय खोल रक्खा था बंगला के पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी लिखा करते थे। बनारस से क्रान्तिकारियों का 'अग्रदूत' नामक एक हस्त-लिखित पत्र निकलता था, उसके संचालकों में यही अग्रणी थे। विश्वविद्यालय के बंगला साहित्य-परिषद् के यह मंत्री भी थे। इस प्रकार इनका जीवन एक क्रिया शीलता का जीवन था।

राजेन्द्र बाबू बहुत ही मिलनसार तथा बुद्धिमान व्यक्ति थे। बाल्यावस्था ही से इन्होंने देश सेवा के लिये अपने को अर्पित

करने का संकल्प कर लिया था। ज्यों ज्यों अवस्था बड़ी होती गई त्यों त्यों अपने संकल्प को कार्य-रूप में परिणत करने लगे, लेकिन आप अपने कामों का ढिंढोरा नहीं पीटते थे और न नेता बनने की धुन ही आपके सिर पर सवार थी। इस पर भी आप अपने कार्यों के द्वारा क्रान्तिकारी दल के एक प्रमुख नेता समझे जाते थे। अब क्रान्तिकारी दल की प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य थे।

जिस समय काकोरी में डाका पड़ा उस समय आप हिन्दी यूनिवर्सिटी में एम० ए० में पढ़ते थे। वहीं कलकत्ते के दक्षिणेश्वर बम केस के सम्बन्ध में गिरफ्तार किये गये। मुकदमा चला १० वर्ष जेल की सजा दी गई। इतने ही में खुफिया पुलिस ने काकोरी केस में आपको भी शामिल किया आप भी तलब किये गये मुकदमा कायम हुआ अन्त में अदालत ने आपको भी लोगों की भांति आजन्म काला पानी और फांसी की भिन्न सजायें दी। इसके बाद वे लखनऊ से बाराबंकी भेजे गये। ११ अक्टूबर सन् १९२७ का दिन फांसी के लिये तय हुआ। चीफ कोर्ट में अपील की गई तथा उच्च कर्मचारियों से माफी की प्रार्थना की गई लेकिन कुछ परिणाम न निकला, सजा बहाल रही।

पहले बाराबंकी जेल में रक्खे गये, किन्तु फिर गोंडा जेल में भेज दिये। वे जेल में सदैव प्रसन्न रहे और दिन भर मस्ती के साथ गाया करते थे। वे अत्यन्त सरल स्वभाव के निर्भय व्यक्ति थे। वे मौत का मजाक किया करते थे। वे क्षण भर के लिये भी कभी चिन्तित न हुए। उन्होंने जो पत्र अपने सम्बन्धियों

को अन्तिम समय लिखे हैं वे महत्व के हैं। उनसे उनकी गम्भीरता साहस और त्याग की आभा झलकती है।

राजेन्द्र बाबू को १७ दिसम्बर १९२७ ई० को गोंडा जेल में फांसी दे दी गई। राजेन्द्र बाबू का बलिदान अभूतपूर्व था २६ वर्ष की अवस्था में अपनी सुनहरी झलक दिखाकर इस लोक से सदा के लिये चल दिये।

श्री यतीन्द्रनाथ दास

यतीन्द्रनाथ दास ने भारत के राजनैतिक कैदियों की मंगल कामना के लिये क्षण क्षण में होनेवाली असाह्य जन्म वेदना को सहते हुए मन्द-मन्द जलने वाली क्षुधाग्नि की असह्य वेदना को सहते हुए प्राणोत्सर्ग कर दिया। संग्राम में सम्मुख युद्ध कर वीर गति प्राप्त करना, फांसी के तख्ते पर हँसते-हँसते प्राण त्याग करना, कठिन और अनुपम आदर्श अवश्य है किन्तु मोमबत्ती की तरह घुल-घुल कर प्रसन्नता पूर्वक प्राण देना महान् प्रशंसनीय आदर्श है।

अमर शहीद यतीन्द्रनाथ दास का जन्म १९०४ में कलकत्ता में हुआ। इनके पिता का नाम बंकिम बिहारीदास है इस समय इनकी उमर ५२ वर्ष की है सन् १९१४ में यतीन्द्र की मां का

देहावसान हुआ। यतीन्द्र के बाबा श्री महेन्द्रनाथ दास महोदय सरकारी अदालत में मुंसिफ थे। बारकपुर के पास इच्छापुर नामक गांव में यतीन्द्र बाबू का पैतृक वास स्थान था। फिलहाल आग्णनाथ पंडित स्ट्रीट में रहते थे।

भवानीपुर के मित्र इंस्टीट्यूशन में यतीन्द्रनाथ दास का शिक्षण शुरू हुआ, लिखने-पढ़ने में तो विशेष नहीं, परन्तु चरित्र की दृढ़ता और स्वभाव की मधुरता के कारण, क्या स्कूल, क्या मित्र गोष्ठी, क्या आत्म परिवार सभी जगह यथेष्ठ ख्याति प्राप्त की इन्होंने सन् १९२० ई० में मैट्रिक-परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की १९२१ ई० में यह आशुतोष कालेज में भरती होकर आगे पढ़ने लगे। इसी साल असहयोग आन्दोलन की लहर में पड़ कर इन्होंने कालेज छोड़ दिया। घर बार छोड़कर देश सेवा करने लगे। दक्षिण कलकत्ता कांग्रेस कमेटी में कार्य करना आरम्भ कर दिया।

१९२१ ई० में ही दक्खिन बंगाल में भयानक बाढ़ आई। उसमें यतीन्द्र ने जीवन को संकट में डालकर बाढ़ पीड़ितों की बहुत सहायता की। बाढ़ पीड़ितों के घर-घर में घूम कर भूखों को अन्न देकर उनकी प्राण रक्षा की वहाँ से लौटने पर फिर कांग्रेस का काम करने लगे ये अपने धुन के बड़े पक्के थे, जो इनके दिल में समा जाती थी, उसे करके ही छोड़ते थे। इस समय कांग्रेस का काम इन्होंने प्राणपण से किया दिन रात कांग्रेस की सभाएँ करना, अर्थ संग्रह और प्रचार का कार्य करना ही इनका काम था। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। इस समय १०) रुपया माहवार में एक प्राईवेट छात्र को पढ़ा

कर अपना खर्च चलाते थे इसमें से भी कुछ न कुछ कांग्रेस के काम में खर्च कर देते थे। बहुत सी रातें सिर्फ चना-चबैना खा कर काट दीं।

यतीन्द्र बाबू की कार्य कुशलता का लोहा सबने मान लिया। ऐसे कार्य कुशल व्यक्ति कब तक छिपाये जा सकते हैं। यतीन्द्र बाबू का नाम बंगाल में धीरे धीरे कस्तूरी की सुगन्धि की भांति फैलने लगा। साथ ही वे सरकार की आंखों में भी खटकने लगे। इस समय महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन चरम-सीमा पर था। देश की पुकार के सामने लड़कों ने पढ़ना छोड़ा, लोगों ने नौकरियाँ छोड़ीं और बहुतेरों ने अपना व्यापार छोड़ा और देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में कूद पड़े। यतीन्द्र बाबू भी उन्हीं वीरों में से एक थे। घर का बन्धन, पिता का असन्तोष ये सब भी मिलकर यतीन्द्र को न रोक सके। वे सत्याग्रह करते हुये गिरफ्तार हुये और चार दिन बाद छोड़ दिये गये। कुछ दिन बाद फिर उपरोक्त अपराध में गिरफ्तार हुये और उन्हें एक मास की सजा दी गई। फिर सन् १९२२ ई० में इनको तीन मास की सजा दी गई।

सुना जाता है कि उस समय जेल में उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। जिनके कारण इनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। उनका बलिष्ट—शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया। करीब डेढ़ मास तक बीमार रहना पड़ा, जेल से छूटने पर पिता के बुलाने से फिर घर में रहने लगे। स्वास्थ्य ठीक होने पर उन्हें फिर कालेज में भरती कराया गया। कालेज में पढ़ने के साथ ही साथ इनका राष्ट्रीय प्रोग्राम पहले जैसा ही

चलता रहा। सन् १९२४ ई० में उन्होंने इन्टरमिडियट पास की। सन् १९२५ में आप दक्षिण कांग्रेस कलकत्ता के सहकारी मन्त्री निर्वाचित हुये और विशेष रूप से कांग्रेस का कार्य करने लगे।

प्रथम श्रेणी में इन्टर पास कर ये बंगवासी कालेज में भरती हो गये। कालेज में पढ़ते समय उन्होंने विश्वविद्यालय के सेवा दल में योगदान दिया जिससे इनकी सैनिक सुलभ मनोवृत्ति विकसित हो उठी। इसी वर्ष आपने अकथ परिश्रम से इन्होंने दक्षिण कलकत्ता तरुण संघ की स्थापना की समिति का मुख्य उद्देश्य गरीब विधवाओं, अपाहिजों, और असमर्थ पुरुषों की यथा साहस सहायता करना। इस समित के सदस्य प्रति रविवार ,को दक्षिण कलकत्ता के हर एक घर से भीख मांग लाया करते थे और इसी से सब की सहायता करते थे। समिति की ओर से एक पुस्तकालय और एक व्यायाम— शाला भी जारी की गई। इसके भी सहकारी मन्त्री यतीन्द्र नाथ दास थे।

५ नवम्बर सन् १९२५ की गम्भीर रात्रि में जब कि यतीन्द्र निद्रादेवी की गोद में शान्ति से शयन कर रहे थे, पुलिस के कठोर स्वर ने उनकी निद्रा में व्याघात किया। जगकर यतीन्द्र नाथ के बाहर जाने पर पुलिस उन्हें बंगाल आर्डिनेन्स के अनुसार गिरफ्तार कर ले गई और उनको प्रेसीडेन्सी जेल में रक्खा गया। बाद में मेदनीपुर सेन्ट्रल में भेज दिए गये। यहां का जलवायु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल न था। एक दिन यतीन्द्र आंधी से मूर्छित हो गए। यह मूर्छा ही भयंकर सिद्ध होती यदि

जेल के कर्मचारी गण आकर उनकी सेवा—सुश्रूषा न करते। चिकित्सा के लिये कलकत्ता की प्रेसीडेन्सी जेल में लाये गये। किन्तु यहां पर भी तबियत ठीक न होने के कारण ढाका जेल में भेज दिये गये। ढाका जेल में उन्हें अपार कष्ट सहने पड़े ढाका से ये फिर मैमनसिंह सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। यहां पर भी इनके अपमान का अन्त न था। यहां के असह्य दुर्व्यवहार के कारण ये एक दिन अत्यन्त गर्म हो गए। इसका कारण यह था कि सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उन्हें अश्लील गालियां दी थीं। इस कारण इनकी उससे हाथापाई हो गई। जिसके फल स्वरूप इनपर ऐसी मार पड़ी कि मूर्छित होकर मृत्यु के सन्निकट पहुँच गये। इस काण्ड का यहीं तक इति श्री नहीं हुई। इन पर मार तथा दुर्व्यवहार के अभियोग लगाकर मामला चलाया गया यतीन्द्र ने सब अत्याचारों को चुपचाप सहन न किया, बल्कि प्रतिवाद स्वरूप खाना-पानी छोड़ दिया। इन्होंने २३ दिन तक लगातार अनशन व्रत किया। २३ दिन बाद बंगाल सरकार के मध्यस्थ बनने से और सुपरिन्टेन्डेन्ट के माफी मांगने से इन्होंने अनशन भंग किया। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आवश्यक सब सुविधाएँ देने का वचन दिया और सब शिकायतें दूर की गईं तब उन्होंने भोजन किया।

अपनी इस पराजय से जेल के अधिकारी इनसे जलने लगे और इन्हें पंजाब की मियां वाली जेल में पटक दिया। इस जेल में भी इनको असह्य यंत्रणाएं भोगनी पड़ी। यहीं पर इन्हें अपनी बहिन की बीमारी का संवाद मिला। बीमार होने के कारण

कलकत्ता जेल लाए गये और पुलिस के कड़े पहरे में बहिन से मिलने की आज्ञा दी गई। वहां से चटगांव जेल भेज दिए गए। चटगांव में इन्हें अपनी बहिन की मृत्यु का संवाद मिला। क्षण भर के लिये ये चंचल हो उठे परन्तु दूसरे क्षण ही चित्त स्थिर कर लिया। वीरों के हृदय में शोक का स्थान ही कहाँ ?

सन् १६२८ के दिसम्बर महीने की २६ ता० को यतीन्द्र छोड़ दिये गये। जेल से मुक्त होते ही ये तुरन्त देश सेवा में लग गए। पिछली कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने शक्तिशाली, सुसंगठित, स्वयंसेवक दल गठन करने में जो अदम्य उद्योग किया था वह सचमुच प्रशंसनीय था। अपनी अद्भुत कार्यक्षमता के प्रभाव से ये थोड़े ही समय में दक्षिण कलकत्ता स्वयं सेवक दल के कमांडर बन गये। कलकत्ता के स्वयं सेवक दल को अपूर्व शक्तिशाली और सुसंगठित करने के लिये यतीन्द्र ने बड़ा परिश्रम किया था। वह स्वयं सेवक दल राष्ट्रीय सेना का स्वरूप धारण कर रहा था। आखिरी बार गिरफ्तार होते समय इन्होंने कहा कि "बंगाल के स्वयं सेवक क्या उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ण न करेंगे"

लाहौर-षड़यंत्र के सम्बन्ध में १४ जून को फिर गिरफ्तार किये गये। भगत सिंह एवं दत्त को आजीवन काले पानी की सजा देकर क्रम से मियां वाली और लाहौर सेन्ट्रल में भेज दिया गया और उनके साथ वही साधारण, चोर' गिरहकट और जघन्य अपराधों में दण्डित व्यक्तियों के साथ होने वालों के समान व्यवहार किया जाने लगा। ये दोनों राजनैतिक अपराध में सजा पाये हुये व्यक्ति थे। राजबन्दी का सा व्यवहार

उनके साथ होना चाहिये था पर सरकार को गरज क्या थी। एक बार काकोरी-केस के बन्दियों ने जेल के अत्याचारों से दुखित होकर ४५ दिन का कठिन अनशन किया था। उस समय स्वर्गीय श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के विशेष आन्दोलन और सरकार से माँगें पूरी कराने के लिये समय माँगने पर वह अनशन स्थगित हुआ था। सरकार ने उस समय कुछ सुविधाएँ भी दी थीं। पर सरकार तो अपने राह पर चली जाती है उसे किसी की क्या परवाह? जेल में अत्याचारों की वृद्धि देख कर और उनको कम कराने की दृष्टि से अनशन का आश्रय लिया गया।

राजनैतिक-कैदी व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिये दंडित होकर नहीं आते हैं उनका नैतिक चरित्र ऊँचा होता है वे शिक्षित होते हैं। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही है कि वे पढ़ने लिखने की सुविधा चाहें। मानवोचित व्यवहार जिसमें स्वाभिमान का भी स्थान हो, उसकी वे आशा करते हैं। उनका अधिकार है कि स्वच्छता, औषधि और मनुष्योपयोगी भोजन वे चाहा करें।

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने राजनैतिक कैदियों को यह अधिकार दिलाने के लिए अपने अपने स्थान पर १५ जून से अनशन प्रारम्भ कर दिया। अनशन चल रहा था और लाहौर षडयंत्र का मुकदमा शुरू हो गया था। अभियुक्तों को अदालत आना पड़ता था। इस अनशन से में हलचल मच गई। अनेक प्रान्तों में राजनैतिक पीड़ित दिवस मनाये गये देश के कोने कोने में सभायें हुईं। अनशनकारियों की मांगों का समर्थन किया गया श्रद्धेय विद्यार्थी जी ने लाहौर जाकर अनशन

कारियों को समझाने की कोशिश की, पर लोग अपनी मांगों की पूर्ति के बिना तिल भर भी झुकने के लिये तैयार न थे। सरकार मांगों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे रही थी। इसलिये सब अभियुक्तों ने मिल कर १२ जुलाई को अनशन करने की घोषणा कर दी। उन दिनों तेरह अभियुक्त लाहौर के दोनों जेलों में अनशन कर रहे थे। कुछ लोगों का नवातपान जारी था। यतीन्द्र नाथ दास की हालत अधिक खतरनाक हो रही थी वे मृत्यु शय्या पर पड़ गये थे। अन्त में पंजाब सरकार कुछ झुकी। एक जेल जांच कमेटी बनी, मेम्बरों ने जाकर अनशन कारियों से भेंट की, उन्हें आश्वासन दिया गया कि उनकी तमाम बातें और मांगें मान ली जांयगी। यतीन्द्र नाथ दास की हालत बहुत खराब हो गई थी। अतएव इन मांगों में से एक यह भी मांग थी कि यतीन्द्र नाथ दास बिना किसी शर्त के रिहा कर दिए जांय। सरकार ने यह बात मान ली थी। यह घटना २ सितम्बर की है ८१ दिन के अनशन के बाद सरकार भगत सिंह और वीरवर बटुकेश्वर दत्त तथा ५१ दिन के बाद अन्य साथियों ने दूध पीकर अनशन भंग किया।

दूसरे दिन सरकार ने यतीन्द्र नाथ दास को बिना शर्त के छोड़ने से इन्कार कर दिया। वह उन्हें जमानत पर छोड़ने को तैयार थी। यतीन्द्र की हालत बिलकुल खराब हो चुकी थी डाक्टर उनके जीवन से निराश हो चुके थे। किन्तु उस हालत में भी यतीन्द्र ने अपना अनशन न तोड़ा। सितम्बर के प्रारम्भ से ही डाक्टर लोग कह रहे थे कि उनके जीवन की कोई आशा नहीं है। उनके रक्त का दौरा केवल हृदय के ही आस पास होता

था सब अंग करीब करीब निर्जीव हो गये थे। दृष्टि-शक्ति क्षीण हो चुकी थी। उनके छोटे भाई को जेल में उनकी परिचर्या करने की आज्ञा दे दी गई थी। अब यह बिलकुल निश्चय सा हो गया था कि यदि सरकार न झुकी तो मृत्यु अवश्य होगी। सरकार को इस बात से बड़ा अंदेशा था। इसलिये बाहर से पुलिस मगाकर शहर में यत्र तत्र नाके बन्दी कर दी गई थी।

यतीन्द्र नाथ दास कोई धोखे से शहीद हो गये हों, यह बात नहीं है, उन्हें भली भांति मालूम था कि वे प्रतिक्षण मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। तदनुसार उन्होंने अपनी इच्छा यह प्रकट की, कि उनका दाह संस्कार कलकत्ते के उसी स्थान पर हो जहां पर कि उनकी माता तथा बहिन का दाह संस्कार हुए थे।

उनके भाई उनके शव को कलकत्ते ले जाने के लिये रेलवे कम्पनी से लिखा पढ़ी करने लगे। जब सरकार ने यह बात देखी कि यतीन्द्र नाथ दास मरने पर तुले हैं तो सरकार की ओर से इस बात का गुप्तरीत से प्रयत्न होने लगा कि यदि कोई यतीन्द्र की जमानत कर दे तो सरकार छोड़ सकती है। यतीन्द्र नाथ दास के वकीलों से उनकी जमानत के लिये कहा—वे तैयार हो गये किन्तु यतीन्द्र ने किसी प्रकार की शर्त की रिहाई को ठुकरा दिया। जब सरकार ने यह देखा कि यतीन्द्र के सम्बन्धी लोग उसकी जमानत नहीं देंगे, तब न जाने किन दो व्यक्तियों ने अदालत में उपस्थित होकर उनके लिये मुचलका दाखिल कर दिया। ये दोनों व्यक्ति कौन थे, इसका किसी को

कुछ पता न था और कुछ का कहना तो यह है कि उनका आज तक पता न लगा।

अन्त में जो होना था वही हुआ। यतीन्द्र ने किसी शर्त पर अपने को छुड़ाना स्वीकार नहीं किया १३ सितम्बर सन् १९२९ को १ बज कर ५ मनट पर बोरस्टल जेल में यतीन्द्र नाथ दास शहीद हो गये। सारा देश उनके जीवन की भिक्षा माँग रही थी। किन्तु सरकार ने अपनी ही बात रक्खी, वह भी वीर प्रतिज्ञ था। मौत से खेल गया, पर अपनी बात से विचलित न हुआ, उसने अपनी टेक रख ही ली, वह अपनी आन-बान और शान का एक ही था। लोग चाहे उसे कुछ कहें, पर वह तो भारत माँ का सच्चा लाड़ला और स्वतन्त्रता का अनन्य पुजारी था। यतीन्द्र के इस बलिदान से राजनैतिक कैदियों की समस्या केवल आंशिक रूप से हल हुई है।

उस दिन लाहौर में सन्नाटा छा गया अर्थी का जुलूस निकाला गया। अर्थी के साथ हजारों आदमी थे। १४ सितम्बर को पौने सात बजे हावड़ा एक्सप्रेस लाहौर से रवाना हुई। हर एक स्टेशन पर अर्थी का स्वागत करने के लिये हजारों की भीड़ थी। हावड़ा स्टेशन पर पहुँचते ही अर्थी फूलों से सजाई गई उसके साथ एक बड़ा जुलूस निकला, जुलूस टाउन हाल को रवाना हुआ। रात भर शव टाउन हाल में रहा। १६ ता० को २॥ बजे अर्थी श्मशान घाट पहुँची। विधिवत संस्कार किया गया और उनका नश्वर-शरीर पंच तत्व के रूप में परिवर्तित होकर रजधूल में मिल गया।

यतीन्द्र के महात्याग ने भारत ही नहीं वरन् सारे संसार में एक नवीन आदर्श स्थापित किया है। दूसरों के लिये सब कुछ त्याग कर अमर हो गया।

सरदार भगत सिंह

सरदार भगत सिंह ने कल्यानपुर जिले के एक प्रसिद्ध सिक्ख वंश में जन्म लिया था। इनके पूर्वज महाराजा रणजीत सिंह के समय खालसा सरदार के नाम से प्रसिद्ध थे। पश्चिम में पठानों और पूर्व में शक्ति-शाली अंगरेजों के विरुद्ध सिक्ख साम्राज्य फैलाने में इन लोगों ने सिक्ख शासकों को काफी मदद पहुँचाई थी। उनके लिये अपना खून बहाकर इस परिवार ने पुरस्कार स्वरूप काफी जायदाद प्राप्त कर ली थी।

सरदार अर्जुन सिंह एक बड़े जमींदार थे, पर आपने एक ऐसे पथ का अनुसरण किया कि जिसमें धन और यश तो कमाना दूर रहा अपना अस्तित्व भी मिटा देना पड़ता है। आपही के अनुकूल सौभाग्य से आपकी धर्मपत्नी श्रीमती जय-कौर आपको मिलीं। आप एक वीर महिला हैं। प्रसिद्ध क्रान्ति-कारी अम्बा प्रसाद सूफी जिन्होंने सरकार के काश्मीर हड़पने-वाले षडयंत्र का भंडा फोड़ किया था। इस परिवार में आया जाया करते थे। एक बार सूफी साहब जब अर्जुन सिंह के

यहां आये हुए थे, पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने के लिये आ धमकी। किन्तु इस वीर महिला ने पुलिस की आंखों में धूल झोंक कर उन्हें साफ बाहर निकाल दिया। सूफी साहब के विषय में आप भी अपने उद्गार प्रकट किया करती हैं।

सरदार अर्जुन सिंह के तीन पुत्र थे। सरदार किशन सिंह सरदार अजीत सिंह और सरदार सुवरन सिंह। पंजाब में यह तीनों भाई अपनी देश भक्ति के लिये प्रसिद्ध हैं। देश भक्ति की बड़ी कसौटी पर आप लोगों को कसा जा चुका है। कहा जाता है कि सरदार अजीत सिंह ने लाला लाजपतराय को राजनैतिक क्षेत्र की ओर आकर्षित किया। सरदार अजीत सिंह एक धनी व्यक्ति थे पर देश की स्वतंत्रता के लिये उन्होंने अपने गार्हस्थ सुखों पर लात मारदी कलकत्ते में राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन था। सरदार किशन सिंह और सरदार अजीत सिंह कलकत्ते पहुँचे। यहां पर लोकमान्य तिलक का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा। भविष्य का कार्य-क्रम यहीं निश्चित करके लाहौर लौटे और देश के काम में जुट गए। पंजाब में जागृति की लहर जगाने वाले ये लोग थे।

इसी समय (अर्थात् १९०४ या ५) के लगभग दैव-योग से बंग-भंग हुआ। सारे बंगाल ने लार्ड कर्जन के इस कार्य का जोरों से प्रतिवाद किया। बंगाल के इस आन्दोलन से पंजाब भी प्रभावित हो उठा। लाला लाजपराय सरदार अजीतसिंह और इसके घनिष्ट मित्र सूफी अम्बा प्रसाद अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा देश में उत्तेजना फैलाने लगे। सरदार किशनसिंह और सरदार सुवरनसिंह ने भी काफी भाग लिया। पंजाब और

बंगाल के आन्दोलनों को दबाने के लिये सरकार ने पहले पहल १९०७ ई० में १८१८ का रेगुलेशन एक्ट काम में लिया। लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह इस कानून के शिकार बने। लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को बिना उनके मामले की जांच किये ही कैद की सजा दे दी गई। तथा एक एक साल बर्मा में नजर बन्द करके रक्खे गये। इसके बाद पंजाब छूटकर आ गये।

इसी समय सरदार किशन सिंह और सरदार सुवरन सिंह को भी राजद्रोहात्मक व्याख्यानों के लिये कैद किए गया। सरदार सुवरन सिंह की मृत्यु जेल में ही हो गई, उस समय उनकी अवस्था २८ वर्ष से कम ही थी।

सन १९०७ ई० के अक्टूबर मास में सरदार किशन सिंह के दूसरे पुत्र सरदार भगतसिंह का जन्म हुआ इसी दिन सरदार किशन सिंह नेपाल से लौट कर लाहौर पहुँच जाने और मांडले से सरदार अजीत सिंह जी के रिहा होकर भारत रवाना होने की खबर पहुँची। सरदार भगत सिंह की दादी को इन घटनाओं से बहुत प्रसन्नता हुई और वे बालक को "भागों वाला" अर्थात् भाग्यवान कहने लगीं। परिणाम स्वरूप बालक का नाम 'भगत सिंह रक्खा गया।

सरदार भगत सिंह बचपन से ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे। अपने बड़े भाई जगत सिंह के साथ वे गांव के प्रायमरी स्कूल में भर्ती कराये गये। १८ वर्ष की अवस्था में बड़े भाई जगत सिंह का स्वर्गवास हो गया। भगत सिंह के हृदय पर इसका बड़ा आघात लगा। किशन सिंह जी ने भगत सिंह को

लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल में भरती कराया। यहाँ से इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की असहयोग आंदोलन छिड़ा भगत सिंह ने डी० ए० वी० स्कूल छोड़ दिया और लाला लाजपतराय द्वारा खोले गये नेशनल कालेज में आप एफ० ए० में पढ़ने लगे। कालेज में आपकी सुखदेव और यशपाल से घनिष्ट मित्रता हो गई।

असहयोग आन्दोलन ने भगत सिंह को देश सेवा की ओर आकर्षित किया। अभी १५ वर्ष के भी न हुये थे कि आप पंजाब की गुप्त क्रान्तिकारी संस्थाओं में काम करने लगे। पंजाब में इसी समय 'बब्बर अकाली' नामक एक बड़ा ही साहसी और बलिदान होने वाला दल देश सेवा की भावना से संगठित हुआ। उनमें सच्ची लगन, ज्वलन्त देश भक्ति और माँ के चरणों पर सर्वस्व निछावर कर देने की उत्कट अभिलाषा थी। सन् १९१४ और १९१५ के लाहौर षडयंत्रों में सिक्खों ने जो अपूर्व आत्म-बलिदान किया, उसका प्रभाव भी उस समय के युवकों पर कम न पड़ा। इसी समय सरदार भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह 'डिफेन्स आफ इंडिया एक्ट' के अनुसार नजर बन्द कर दिये गये आप पर क्रान्तिकारियों को सहायता पहुँचाने का अपराध लगाया गया था। भगतसिंह भी बब्बर अकालियों के हिंसात्मक क्रान्ति के पथ की ओर अग्रसर हुये क्रान्तिकारी दल का पुलिस को पता चल गया, इस दल के अधिकांश सदस्य गिरफ्तार हो गये इस कारण भगतसिंह ने पंजाब छोड़ दिया। दूसरा कारण यह था कि भगतसिंह के घर वाले उनका विवाह करना चाहते थे और घर वालों से

यहाँ तक नहीं किया किन्तु रस्म अदायगी का दिन भी निश्चित हो गया जब भगतसिंह ने देखा कि यहां रहने से हम किसी प्रकार बच नहीं सकते तो एक दिन चुपचाप घर से गायब हो गये। सरदार किशन सिंह को लाहौर में एक पत्र भगतसिंह का मिला जिसमें उन्होंने शादी के कारण अपना घर छोड़ना बताया था।

भगतसिंह लाहौर से चलकर कानपुर आगए यहाँ गणेश शंकर जी विद्यार्थी से उनकी पहिचान होगई। इस युवक ने देश-सेवा करने का अपना दृढ़ निश्चित प्रकट किया और जीवन-निर्वाह के लिये कुछ काम उनसे चाहा। सहायता या दान लेने से इन्कार कर दिया। विद्यार्थी जी ने आपको प्रेस में काम दिया। यहाँ पर भगतसिंह ने अपना परिचय 'बलवन्त' के नाम से दिया था।

कानपुर उन दिनों उत्तरीय भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन के सूत्र का संगठन केन्द्र था। यू० पी० प्रान्त में श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल ने अपना संगठन शुरू कर दिया था तथा कुछ अन्य लोग भी स्थान स्थान पर अपने छोटे छोटे दल बनाने में लगे थे। श्री योगेश चटर्जी 'राय' महाशय के नाम से संगठन कर रहे थे। कानपुर में आकर आपका 'राय महाशय' से परिचय हुआ और आप यहीं पर भारत की एक सुसंगठित क्रान्ति संस्था के सदस्य बन गये। इसी स्थान से आपके जीवन में एक पूर्ण परिवर्तन हुआ और भारतीय क्रान्ति के इतिहास का एक अध्याय आपका जीवन हो गया।

कानपुर में एक और मित्र के घनिष्ठता उत्पन्न हुई जो अन्त समय तक बनी रही, उनका नाम बटुकेश्वर दत्त है। दोनों में खूब गहरी छनने लगी सन् १९२४ ई० की गंगा जी की भयंकर बाढ़ में इन दोनों ने जीवन की पर्वाह न कर किसानों को बचाने और उनकी सहायता पहुँचाने का प्रशंसनीय काम किया। इनके काम का प्रभाव जनता पर बहुत पड़ा। राष्ट्रीय स्कूल में हेड मास्टर की आवश्यकता हुई। श्री विद्यार्थी जी ने उन्हें वहाँ नियुक्त करके भिजवा दिया। इधर सरदार किशनसिंह इन्हें ढूँढ़ रहे थे उन्हें पता लगा कि भगतसिंह कानपुर में हैं वे इन्हें लेने के लिये आनेवाले ही थे कि भगतसिंह की माता बीमार पड़ गईं, खबर पाकर भगतसिंह लाहौर लौट गये।

लाहौर में उस समय अकाली आन्दोलन चल रहा था, भगतसिंह उसमें काम करने लगे। पुलिस की निगाह आप पर कड़ी रहने लगी परन्तु इन्होंने काम से कभी मुख नहीं मोड़ा।

सन् १९२४ ई० में फिर कई गुप्त संस्थाएँ कायम हुईं। बंगाल के पुराने विप्लव वादियों ने फिर अपना संगठन शुरू कर दिया, किन्तु १९२५ ई० के बंगाल आर्डिनेन्स ने उन पर कठोर प्रहार किया। युक्त प्रान्त और पंजाब में श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल, श्री योगेशचन्द्र चटर्जी और रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तिकारियों ने अनेक छोटे छोटे दलों को सुसंगठित करके 'हिन्दोस्तान रिपब्लिक एशोसियेसन नाम से एक संस्था कायम की। भगतसिंह का इस दल से विशेष सम्बन्ध था और एक तरह से वे इस संस्था के प्रमुख सदस्य समझे जाते थे। इस संस्था के सदस्यों ने ९ अगस्त सन १९२५ को काकोरी के

समीप ट्रेन डकैती की। इसमें सभी प्रान्त के लोग पकड़े गये। काकोरी षड्यंत्र केस के फलस्वरूप 'हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोशियेशन' भंग हो गई। सभी नेता जेल में थे थोड़े से अनुभवहीन व्यक्ति जो बच गये थे कुछ करने में असमर्थ थे। सरदार भगतसिंह, कानपुर के विजयकुमार सिंह तथा लाहौर के श्री सुखदेव क्रान्तिकारी दल को फिर से संगठित करने लगे।

'मान्टेगू—चेम्स फोर्ड रिफार्म स्कीम, में किये गये वायदे के अनुसार स्वराज्य की दूसरी किस्त में भारत को क्या अधिकार दिये जावें और कैसे दिये जावें इसकी रूप रेखा तैयार करने के लिये साम्राज्यवादी ब्रिटेन द्वारा नियुक्त सात सयानों का एक कमीशन सायमन के आधिपत्य में ३ फरवरी सन १९२८ को बम्बई में इंगलैण्ड से आया। सारे भारत ने एक स्वर से विरोध किया, विरोध के फलस्वरूप समस्त भारत में विराट हड़ताल की गई। हड़ताल की सफलता देख कर सरकारी अधिकारी भयभीत हो उठे जगह जगह दर्शकों पर लाठी बरसाई गई। और बहुत से अत्याचार किये गये। देश के जिस किसी भाग में सायमन कमीशन गया, हड़ताल' बहिष्कार, काले झण्डे "सायमन लौट जावो के नारों से उनका स्वागत किया गया।

३० अक्टूबर सन् १९२८ को सायमन कमीशन लाहौर आ रहा था। लाहौर के जिला मजिस्ट्रेट ने दफा १४४ की घोषणा करके शहर में जुलूस निकालने और जनता के स्टेशन पर जाने की पाबन्दी लगा दी। २९ अक्टूबर १९२८ को लाहौर में एक विराट सार्वजनिक सभा हुई ५० हजार से अधिक जनता एकत्र

थी। सभा में एक स्वर से निश्चय हुआ कि राष्ट्र का विरोध प्रदर्शन करने के लिये लाहौर के नागरिकों का जुलूस सरकारी हुक्म की परवाह न करके स्टेशन जाने और पूरी शक्ति से प्रदर्शन करें। ३० अक्टूबर १९२८ को जुलूस स्टेशन के हाते में आया। जुलूस का नेतृत्व पंजाब केशरी लाला लाजपत राय कर रहे थे। कुछ देर शान्ति रही, एकाएक पुलिस अपनी लम्बी लम्बी लाठियाँ ले निरास्त्र और शान्त जनता पर टूट पड़ी। पुलिस के उच्च कर्मचारी भी अपने हाथों लाठियां चलाने लगे। उन्होंने लाला लाजपत राय पर भी बड़ी निर्दयता से प्रहार किया, उनकी छाती पर गहरी चोट लगी। जनता ने शान्ति-पूर्वक अपने प्रिय नेता को पिटते देखा पर शान्त खड़ी रही। लाहौर के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० स्काट और असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० सान्डर्स अपनी असफलता पर खड़े खड़े हाथ खुजा रहे थे।

१७ नवम्बर १९२८ को प्रातःकाल देश की अमूल्य निधि-पंजाब केशरी लाला लाजपतराय का इसी चोट के कारण देहान्त हो गया। लाला जी की मृत्यु से देश में शोक की काली घटा छा गई। राष्ट्र घोर अपमान से तिलमिला उठा, नवयुवकों के हृदय में गहरी ठेस लगी। लाला लाजपतराय की मृत्यु एवं राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने के लिये क्रान्तिकारी लोग तैयार हो गये। वे अपने इस काम से सिद्ध कर देना चाहते थे कि भारत का नवयुवक हृदय एक दम निष्क्रिय एवं निर्जीव नहीं है, उनके भी हृदय है, उनके नसों में रक्त का संचार हो

रहा है, वे किसी तरह भी राष्ट्रीय अपमान चुपचाप सहन करने को तैयार नहीं हैं।

१७ दिसम्बर १९२८ की शाम को ठीक ४ बज कर ३० मिनट पर मि० सान्डर्स अपनी मोटर साइकिल पर बाहर निकले, फौरन ही किसी का रिवालवर तपड़ उठा, मि० सान्डर्स घायल हो गये मोटर साइकिल बेकाबू हो एक ओर जा गिरी मि० सान्डर्स दूसरी ओर। सरदार भगतसिंह यहीं पर न रुके, तीन लगातार और फायर किये गये। लोग दौड़ पड़े, सिपाही चाननसिंह ने पीछा किया। उसे लौट जाने के लिये कहा गया, पर वह न माना, किसी का रिवालवर गर्ज उठा, बेचारा चाननसिंह निर्जीव हो जमीन पर लोटने लगा।

इसके बाद सब लोग फाटक से घुसकर हाते से होते हुये पुलिस आफिस से दस कदम के फासले पर स्थित डी० ए० वी० कालेज के बोर्डिंग हाउस पहुँचे। थोड़ी देर पुलिस के आने की राह देखी गई, पर पुलिस न आयी। तब बाहर निकल कर सामने की साइकिल की दूकान से जबर्दस्ती साइकिलें लेकर सब लोग अपने अपने रहने की जगह पर चल दिये। घण्टे भर बाद पुलिस ने बोर्डिङ्ग हाउस को घेर लिया। तलाशी ली जाने लगी लड़कों पर पुलिस का कड़ा पहरा लगा दिया गया। स्टेशन पर पुलिस की सख्त देखरेख थी।

दूसरे दिन सबेरे भिन्न-भिन्न स्थानों पर 'हिन्दोस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के नाम के लाल स्याही से मोटे अक्षरों

में छपे हुए पर्चे चिपके थे। जिनमें लिखा था "सांडर्स मारा गया" लाला जी का बदला लिया गया।

पुलिस इस काण्ड के करने वालों की खोज में थी खुफिया पुलिस जमीन आसमान के कुलावे एक कर रही थी। पर ये लोग तो दो ग्यारह हो गये। सरदार भगतसिंह ने भाग जाने की तरकीब निकाली। एक बड़े सरकारी अफसर की तरह कपड़े पहने उन्होंने अपना एक बड़ा सा नाम रख लिया, उसी नाम के लेबुल छपाकर अपने ट्रंक और पोर्टमेन्टों पर चिपका दिये। पुलिस की आंखों में धूल झोंकने के लिये एक सुन्दर युवती 'दीदी' श्रीमती सुशीला देवी को भी साथ ले लिया और उसी लाहौर के सेन्ट्रल स्टेशन पर फर्स्ट क्लास कम्पार्टमेन्ट में रेल में सवार हुए। साथ ही में राजगुरु हाथ में 'टिफिन कैरियर लिये अर्दली के रूप में सरदार भगतसिंह के साथ ही थे। इस तरह से वे वीर लोग लाहौर से उस समय संकट से निकल सके थे। पुलिस अब भी उनकी तलाश में थी। किन्तु लाख उपाय करने पर भी पकड़ न सकी। वे बड़ी मुस्तैदी से अपना काम करते रहे।

८ अप्रैल सन् १९२९ की घटना है उस समय की केन्द्रीय असेम्बली में पब्लिक सेफ्टी नामक एक बिल विचारार्थ उपस्थित था, दोनों ओर से खींचातानी हो रही थी। ट्रेड डिस्प्यूटस बिल अधिक वोटों से पास हो चुका था। सभापति पटेल के विचारार्थ उपस्थित थे। पब्लिक सेफ्टी बिल पर अपनी सम्मति देने जा रहे थे सब लोगों की आंखें उन्हीं की ओर लगी थीं बड़ें उत्तेजना का समय था। पटेल साहब के घन्टी बजाते ही स्वराज्य-पार्टी और सरकारी पक्ष; के मेम्बर दो हिस्सों में बट गये

गिनती होने के बाद अध्यक्ष ने घोषणा की कि 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल पास। एकाएक विरोधी दल के सीटों के बीच में एक जोरों का धड़ाका हुआ लोग बम-बम चिल्लाने लगे धुवां मिटने भी न पाया था कि दूसरा धड़ाका हुआ। जहां बम गिरे थे आस-पास के बेंच चूर-चूर हो गए। जमीन में एक गढ़ा सा हो गया। पर किसी को चोट न आई। उसके बाद कुछ पर्चे भी फेंके गये। जिसमें एक फ्रेन्च क्रान्तिकारियों का हवाला देकर यह कहा गया था कि "बहरों को सुनाने के लिये धड़ाके की जरूरत है।"

सरदार भगतसिंह और वीर बटुकेश्वर दत्त अक्षुण्ण भाव से दर्शकों की गैलरी में खड़े रहे। इनके पास आत्मरक्षा के लिये रिवाल्वर भी मौजूद थी और उस समय आतंक छा जाने से पुलिस भी इधर-उधर खिसक गई थी ये लोग चाहते तो आसानी से निकल जाते किन्तु इन लोगों ने भागना उचित न समझा। थोड़ी देर बाद सार्जेन्ट सशस्त्र पुलिस के आ धमका। पुलिस की हिम्मत न पड़ रही थी कि उनके पास तक पहुँचें। दोनों ने अपने पास के भरे रिवाल्वर निकाल कर फेंक दिये और पुलिस अफसरों को अपने गिरफ्तार करने का इशारा किया सरदार भगतसिंह और वीर बटुकेश्वर दत्त स्वेच्छा से बन्दी बन गये। रंगमंच से अदृश्य होने के पहले एकबार उन्होंने फिर "इन्किलाब जिन्दाबाद" और "साम्राज्यवाद का नाश हो" के नारे लगाये, प्रतिध्वनि से असेम्बली भवन गूंज उठा। भयभीत दर्शक आश्चर्य चकित हो देखते रह गये।

सरदार भगतसिंह और वीरवर बटुकेश्वर दत्त गिरफ्तार करके जेल में भेज दिये गये और दोनों वीर अलग-अलग दो कोठरियों में बन्द कर दिये गये। ४ जून १९२९ से मि० मिडलटन सेशन जज देहली के सामने देहली जेल में ही मुकदमा शुरू हुआ और १२ जून १९२९ को फैसला सुना दिया गया। इन पर दो धाराओं के अनुसार मुकदमा चलाया गया था और सेशन जज ने दोनों को दोनों धाराओं में अलग-अलग आजीवन कारावास का दण्ड दिया। दोनों वीरों ने सहर्ष फैसले का स्वागत किया।

सन् १९२९ ई० की दस जुलाई के दिन लाहौर षडयंत्र का मुकदमा स्पेशल मजिस्ट्रेट राय साहब श्री कृष्ण के सामने प्रारम्भ हुआ। यह मुकदमा चलता रहा। ७ अक्टूबर सन १९३० ई० को "ट्रिब्यूनल" ने फाँसी की सजा सुनाई। सरदार भगतसिंह को फाँसी की सजा हुई। उनके साथ राजगुरू और सुखदेव को भी सांडर्स की हत्या के संबन्ध में फांसी की सजा हुई। उसने फाँसी की तारीख भी नियत करदी। आर्डिनेन्स के द्वारा ट्रिब्यूनल बनाया गया था। इसीलिये उसकी अपील हाईकोर्ट में नहीं हो सकती थी। सोचा गया प्रिवी कौन्सिल का दरवाजा खटखटाया जाये। वैसा किया भी गया किन्तु प्रिवी कौंसिल ने कुछ सुनने से इन्कार कर दिया। वायसराय से उन तीनों के प्राणों की भिक्षा देश की ओर से मांगी गई किन्तु वायसराय ने पंजाब सरकार पर अपनी बला टाल दी। यद्यपि वे चाहते तो उनको जीवन दान दे सकते थे, सारे देश ने एक स्वर से आन्दोलन किया किन्तु सरकार ने किसी की एक भी न सुनी। महात्मा

गांधी जी ने भी इस विषय में वायसराय से कहा था पर उनकी बात पर भी ध्यान नहीं दिया गया। सरकार तो इन वीरों के लिये तुल चुकी थी। जो उसने सोच रक्खा था वही किया।

२३ मार्च सन् १९३१ ई० की रात में तीनों वीरों को चुपचाप फाँसी दे दी गई और सतलज के किनारे शवों को भस्म कर दिया गया और राख नदी में बहा दी गई। ता० २४ को प्रातः काल सरकारी विज्ञप्ति द्वारा यह घोषणा की गई।

२२ मार्च के प्रताप में 'बालकृष्ण जी ने जो भगतसिंह के बारे में पत्र प्रकाशित किया था उससे भगतसिंह के विषय में अच्छा प्रकाश पड़ता है। उन्होंने लिखा कि हम यह बतला देना चाहते हैं कि भगतसिंह एक हिंसक पशु नहीं, वह वृत्ति से हत्यारा नहीं, वह खूंख्वार भी नहीं, किसी भी देश का युवक जितना सच्चा, चरित्रवान, वीर असन्तोषी, आदर्शवादी, उत्सुक निखरा हुआ तप्त वर्ण हो सकता है—वह भगतसिंह है।

भगतसिंह ने जो अपना बयान दिल्ली बम-केस में दिया वह ऐतिहासिक बयान है। ये लोग मतवाले न थे। इन्होंने जो अपना बलिदान किया वह किसी सिद्धान्त पर किया। चाहे वह सिद्धान्त सर्व सम्मत न हो। निःस्वार्थ भाव से देश सेवा और आत्म-समर्पण करने वाला यह वीर था। वह राजनीति का एक अच्छा विद्यार्थी था। उसका अध्ययन प्रौढ़ था। वह साहसी था, वीर था, और भारत मां का सच्चा दुलारा था। गरीबों व किसानों के दुःखों को वह अपना दुःख समझता था। उसकी आंखों में तेज था, बदन में बिजली की सी तड़प, सागर सा गम्भीर हृदय था। अन्तिम दिनों में पंजाब का ही नहीं अपितु सारे

भारत का वह प्रीति-पात्र था। उसने अपने कार्यों से अलौकिक यश उपार्जित कर लिया उसकी मृत्यु से सारा देश क्षुब्ध हो उठा, व्याकुल हो उठा और उसकी मृत्यु से सबको अपने आत्मीयजन का सा आघात पहुँचा।

भगतसिंह कैसे थे और क्या थे यह आज वर्णन की चीज नहीं। उनकी ज्वलन्त देश-भक्ति, उनका उत्कट त्याग उनकी अनुपमेय कर्मशीलता और उनकी महती वीरता अद्भुत थी देश की अधोगति से वे पीड़ित और व्यथित थे वे राष्ट्रीय अपमान को बर्दाश्त न कर सके। देश के लिये ही वे सब कुछ थे और अपने लिये जीना और मरना तो सभी जानते हैं।

श्री चन्द्रशेखर 'आजाद'

श्री चन्द्रशेखर का जन्म काशी के बैजनाथ टोला में हुआ था। उनके पिता का नाम भी पं० बैजनाथ था। थोड़ी ही वय से उसे अपने देश को 'आजाद' करने की धुन सवार हुई। सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन चल रहा था काशी भी उसके प्रभाव से बच न सका। चन्द्रशेखर अभी १४ वर्ष का ही था और वह बनारस में संस्कृत पढ़ता था। असहयोग आन्दोलन में लड़कों ने स्कूल और कालेज छोड़े और जवानों ने सरकारी नौकरियों को छोड़ा। काशी के बहुत से संस्कृत विद्यार्थियों ने भी उसमें प्रमुख भाग लिया उन्हीं में 'आजाद' भी था। असह-

योग आन्दोलन के समय वह अहिंसावादी स्वयं सेवक थे। 'आजाद' ने जिस मुस्तैदी से उस समय कार्य किया वह एक अद्भुत बात थी वह बहुत पाठशालाओं में गया, सैकड़ों लड़कों से मिला, स्कूलों में भी गया और उसने लड़कों में आन्दोलन करना शुरू किया। इस समय का आन्दोलन लड़कों के लिये एक नई वस्तु थी। लड़के ही क्या बूढ़े और नवयुवक तक इसमें काम करने से जी चुराते थे। सरकार का आतंकवाद इतना छाया हुआ था कि आन्दोलन में काम करने की साधारण पुरुष की हिम्मत ही नहीं थी। पुलिस की निगाह जिस पर कड़ी हो जाती थी उसको बड़ा परेशान किया जाता था। न केवल उसको ही किन्तु उसके घरवालों और कुटुम्बियों तक को परेशान किया जाता था। किस तरह परेशान किया जाता था और क्या परेशान किया जाता था। इस बात के लिखने का यहाँ अवसर नहीं।

कहने का अभिप्राय यह है कि उस समय के असहयोग आन्दोलन में भाग लेना कोई आसान काम न था। काम करने वालों पर सैकड़ों तरह के दबाव पड़ रहे थे। बहुतों को अनेक प्रकार से नीची-ऊँची बातें बतला कर बहका दिया जाता था साम, दाम, दण्ड और भेद सभी उपाय काम में लाये जा रहे थे। कि आन्दोलन सफल न हो, किन्तु सब कुछ करते हुए भी भारत का जनसंघ जाग उठा, उसके नवयुवक ही नहीं, अपितु छोटे-छोटे बालक भी सचेत हो गए। १६३०-३१ के आन्दोलन की अपेक्षा सन् १६२१ में लड़कों ने बहुत कम भाग लिया था। यों स्कूल छोड़ने को तो बहुतों ने छोड़ा यह उस आन्दोलन का मुख्य अंग ही था, किन्तु जेल बहुत कम गये। बनारस में तो

कठिनाई से आधे दर्जन १५ से कम उम्र वाले लड़के गिरफ्तार हुए थे। 'आजाद' इन आधे दर्जन लड़कों में से एक था।

'आजाद' गिरफ्तार होकर जब अदालत में लाये गये तो मजिस्ट्रेट ने पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है?" आजाद ने अपनी आजाद के आवेश में कहा—"मेरा नाम आजाद है" पिता का नाम 'स्वतन्त्र' निवास स्थान ? "जेलखाना"—है। भला मजिस्ट्रेट एक बालक के मुख से निकली हुई ऐसी बात कैसे सहन कर सकता था ? उसने 'आजाद' को १५ बेंत लगाये जाने की आज्ञा दी। बेंत लगाये जाने के लिये उसका कोमल शरीर बाँधा जाने लगा परन्तु उसने कहा—"बाँधते क्यों हो"मारो मैं खड़ा हूं। उस दृश्य को देखने वाले काँप गये क्या सचमुच बेंत लगाये जायेंगे ? हाँ बात सच थी। जब मजिस्ट्रेट ने हुक्म दे दिया था तो उसका पालन करना तो उनके कर्मचारियों का परम कर्त्तव्य हो जाता है। 'आजाद' पर तड़ातड़ बेंत पड़ने लगे और प्रत्येक बार पर उसके मुख से 'वन्देमातरम्' 'गाँधी जी की जय' आदि के नारे निकलने लगे। परन्तु अन्त में वह कोमल बालक मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसके बदन से खून बह रहा था, शरीर की खाल भी उधड़ आई थी उसकी दशा अच्छी न थी। किन्तु होश में आते ही वह उठ खड़ा हुआ और कुछ लोगों के साथ घर को चल दिया। उस समय वह ज्ञानवापी में रहता था।

'आजाद' के बेंत लगने की खबर जब शहर में फैली तो लोग बड़ी उत्सुकता से उसे देखने के लिये आने लगे। उसके

चेहरे पर जरा भी शोक या दुःख की क्षीण रेखा तक न थी वह वह लोगों से बड़ी प्रसन्नता से मिलता था। इन बेंतों का आघात उसके शरीर पर नहीं किन्तु उसकी आत्मा पर लगा। वह उसी दिन से विद्रोही हो गया। इस अमानुषिक दण्ड का प्रभाव उसके मन पर बुरा ही पड़ा। लोगों का कहना है कि उन बेंतों के दाग 'आजाद' के साफ साफ अन्त समय तक बने रहे। उस बालक की इस वीरता और निर्भीकता को देखकर सभी ने दाँतों तले अँगुली दबाई और तभी से लोग उसे 'आजाद' कहने लगे और वह 'आजाद' के नाम से विख्यात हो गया।

'आजाद' की उन दिनों बनारस में धूम थी। कुछ लोगों ने उस वीर-बालक का स्वागत करना चाहा। बनारस में धूमधाम से सभा हुई। लोगों ने उसके स्वागत में छोटी-छोटी वक्तृताएँ दीं। भाषण हो जाने के बाद 'आजाद' को खड़ा किया गया। सभा बड़ी थी 'आजाद' इतना छोटा था कि दूर से लोग उसे भली भांति देख न सकते थे। सब लोगों ने उठकर हल्ला किया। 'आजाद' मेज पर खड़े कर दिये गये, लोगों ने जोर से गांधी जी की जयकार किया। आजाद दो चार वाक्य बोला भी था। लोगों ने उसे फूलों की मालाओं से लाद दिया, उसको इतनी मालाएँ पहिनाई गईं कि उसका छोटा शरीर दिखाई ही नहीं पड़ता था। पत्र-पत्रिकाओं में उसके चित्र निकले और लोगों ने उसके साहस की प्रशंसा की।

सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन शान्त था। लोगों में विचार-परिवर्तन हो रहा था। असहयोग आन्दोलन की अस-

फलता के कारण विप्लव आन्दोलन ने फिर जोर पकड़ना शुरू किया। संयुक्तप्रान्त में क्रान्तिकारी आन्दोलन की नींव जमी। १९२३ ई० से जोर शोर से काम होने लगा। बनारस बहुत समय से क्रान्तिकारी दल का केन्द्र था। रास बिहारी बोस के समय में बनारस ने अपना एक विशेष महत्व कायम कर रक्खा था। बनारस से जितने आदमियों को सजा हुई। इतनी शायद किसी केन्द्र से नहीं हुई। 'आजाद' में भी हिंसात्मक-क्रान्ति के भाव उत्पन्न हुए। राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी और सचीन्द्र नाथ बकशी से उनकी मित्रता हो गई। प्रत्येक काम में इन तीनों का साथ रहता था।

'आजाद' ने काशी विद्यापीठ में अपना नाम लिखाया। वह विद्यालय-विभाग में पढ़ने लगा। विद्यापीठ में उसके आते ही कुछ सनसनी हुई, उसका कारण यह था कि लोग जानते थे कि यही 'आजाद' हैं किन्तु फिर कोई बात न रही वह आनन्द से पढ़ने लगा 'आजाद' ने नाम तो लिखा लिया, किन्तु उसका पढ़ने में मन नहीं लगता था, फिर अर्थमेटिक ऐसे सूखे विषय में उनका मन लगना तो असम्भव ही था। वह अधिक समय अपनी पढ़ाई कायम न रख सका। क्रान्तिकारियों से मिलना जुलना और संगठन आदि के कामों में उसका दिल बहुत लगता था। वह जिस काम में जुट जाता था उसको पूरा करके ही छोड़ता था उसमें कितनी लगन, कितना अथक परिश्रम और कितना अध्यवसाय था इसका अनुमान करना कठिन है। लोगों की धारणा है कि उसकी शिक्षा उच्च श्रेणी की नहीं थी। इस-लिये वह शायद सामूहिक रूप से ही दल को सबसे अधिक

सहायता देता था किन्तु यह बात नहीं। दल के संगठन में, सदस्यों की भरती करने में वह किसी से पीछे नहीं रहा। वह हर तरीके से दल के लिये गौरव की वस्तु था उसके द्वारा दल में प्रविष्ट किये गये लोगों में बिहार के श्री जोगेन्द्र शुक्ल और बनारस के स्वामी गोविन्द प्रकाश (रामकृष्ण खत्री) थे।

'आजाद' दल का प्रचार करने के लिये धीरे-धीरे बाहर भी जाने लगे 'आजाद' बहादुर तो थे ही और उसको सभी लोग बहादुर मानते भी थे। लोग यह भी जानते थे कि वह अनुशासन का पाबन्द है किन्तु किसी को क्या मालूम था कि हमारा यह साथी एक समय आवेगा कि जब वह उत्तरी भारत के क्रान्तिकारी दल का एक छत्र सेनापति होगा। उसके अनेक मित्रों को फाँसी दी गई और आजीवन कैद भी बहुतों को दिया गया। बड़ी भयंकर से भयंकर विपत्तियों में दिन रात पलने के कारण 'आजाद' 'आजाद' हो गया। आजाद के सम्बन्ध में उसके सभी साथी इस बात में सहमत हैं कि वह न तो विपत्तियों की कभी परवाह करता था और न कभी वह घबराता था। उसे अपनी बुद्धि की स्थिरता पर विश्वास था। वह निर्भय हो चला था। जिसने एक बार अपने प्राण को हथेली पर रख लिया और यह विश्वास कर लिया कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह ठीक है उसको भय ही किस बात का ?

सन् १९२४ तक क्रांतिकारियों की गुप्त सभायें फिर से कायम हो गईं। बंगाल, युक्तप्रान्त और पंजाब में यद्यपि भिन्न-भिन्न दल स्थापित थे परन्तु उनमें प्रान्तीयता ही थी। शचीन्द्र नाथ

सान्याल, योगेशचन्द्र चटर्जी, श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों ने उत्तरीय भारत में जोरों से संगठन किया। और सब विप्लव-वादियों के दलों को मिलाकर एक दल बनाया गया जिसका नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशियेशन' रक्खा गया। इसी दल में भगतसिंह, 'आजाद' और बहुत से क्रान्तिकारी शामिल हुये; काम जोरों पर चलने लगा। इस सभा ने पहला काम एक अँग्रेजी पर्चा बाँटने का किया। जो पर्चा रंगून से लेकर पेशावर तक गुप्त रूप से सभी जगह बँटा। उसी समय से दल के विस्तार का महत्व जनता में प्रकट हुआ। इस पर्चे का समाचार जब अखबारों में छपा तो दल का सम्मान बहुत बढ़ गया। लोगों ने विश्वास ही नहीं किया कि कोई दल ऐसा भी है जो इतना बड़ा काम कर सकता है और इतने पर्चे बाँट सकता है। बनारस में भी पर्चे बाँटे गये 'आजाद' ने इससे बड़ी सफलता पाई। एक शिक्षा-संस्था के अधिकारी सबेरे उठ कर क्या देखते हैं कि हर एक रजिस्टर के अन्दर से एक एक पर्चा निकल रहा है। लोग दाँतों तले उँगली दबा कर रह गये कि यह कैसे सम्भव हुआ। यह सब आजाद की करामात थी। उन्हीं ने इस बात की व्यवस्था की थी। उसने उस संस्था के चपरासी को ही अपना चेला बना लिया था।

सच बात तो यह है कि इस युग में 'अजाद' अपने पूरे जौहर में प्रकाशित न हो पाया था। यह तो बाद के युग की बात है कि दल का काम बढ़ जाने से और हर प्रकार से उसकी प्रतिभा पर से प्रतिबन्ध हट जाने के कारण वह खिल उठा।

आजाद को यदि किसी बात से असुविधा हुई तो वह यह कि वह सुशिक्षित न था। किन्तु उसके साहस के आगे किसी का कुछ न चलता था। इसके अतिरिक्त उसकी इस कमी को उसके मित्रों ने पूरा किया बौद्धिक क्षेत्रों में भगतसिंह और भगवती चरण ऐसे व्यक्ति दाहिने हाथ के रूप में मिले थे।

सन् १६२५ ई० की ६ अगस्त को काकोरी के पास गाड़ी रोक कर रेल का खजाना लूट लिया गया जो लोग इस काम में सम्मिलित थे उनमें चन्द्रशेखर आजाद भी था। काकोरी षडयंत्र केस में 'आजाद' का नाम एक प्रमुख षडयंत्रकारी के रूप में आया, किन्तु वह फरार था सारा बनारस छान डाला गया वह वहाँ से न जाने कहाँ चला गया। युक्त प्रान्तीय सरकार ने उसकी गिरफ्तारी के लिये २०००) रुपयों का इनाम भी घोषित किया। किन्तु 'आजाद' पकड़े न जा सके, उनका यह प्रण ही था कि "मैं कभी जिन्दा हाथ न आऊंगा" यह बात उन्होंने पूरी कर दिखाई। जैसा कि पाठकों को आगे चलकर पता चलेगा।

लोगों का कहना है कि बनारस से भागकर आजाद झांसी चले गये, वहाँ बहुत दिनों तक एक जंगल में छिपे रहे, बाद को जब जंगल का पुलिस को पता चल गया उससे पहले ही ये झांसी शहर में आगये। यहाँ पर अनेक क्रान्तिकारियों से इनकी भेंट हुई। इसी झांसी केन्द्र के राजगुरु को लाहौर षडयंत्र में फांसी हुई। इस केन्द्र का संगठन काशी के श्री शचीन्द्र बख्शी ने किया था। 'आजाद' ने उसी पर जाकर अपनी नींव

बनाई। वह झांसी में बहुत दिनों तक रहा, किन्तु वह बैठने वाला व्यक्ति न था उसने इस अरसे में दो खास काम सीखे। एक तो मोटर चलाना और दूसरा गोली चलाना। ये दोनों काम उसके बाद के जीवन में बहुत काम देने वाले थे। इन दोनों कामों में वह बहुत ही होशियार हो गया था, लोगों का कहना है कि उसका निशाना इतना सच्चा था कि वह लाखों में एक था।

काकोरी-केस में जो लोग पकड़े गए उन पर मुकदमा चला तीन को फांसी दी गई और बहुतेरों को काला पानी और सख्त कैद की लम्बी-लम्बी सजाएँ दी गईं। दल छिन्न-भिन्न हो गया जो महाशय दल के संचालक बने वे स्वभाव से डरपोक थे वे नौकरी भर ही चाहते थे। दल को अस्त-व्यस्त देख कर आजाद को क्षोभ हुआ, और वे फिर से उसे सम्हालने लगे। यद्यपि भगतसिंह दल के पुराने सदस्य थे वे कुछ करना भी चाहते थे, परन्तु अपने सच्चे साथी के न मिलने के कारण वे अपने विचारों के अनुकूल कुछ कर न पाये थे अब 'आजाद' उन्हें मिल गये। दोनों दीवानों ने मिलकर जो काम किया वह क्रान्ति-युग के महत्वपूर्ण संस्कारणों में सदा रहेगा। विप्लव वाद के ज्वलन्त इतिहास में इस युग का काल अमर रहेगा, और इन दोनों वीर आत्माओं की गाथाएं अविकल रूप से अंकित रहेंगी। चन्द्रशेखर आजाद तथा भगतसिंह अतीत युग के तथा वर्तमान युग के उन नेताओं से विभिन्न प्रकार के नेता थे। जो विपत्ति के काम में स्वयं शामिल न होकर दूसरे को आग में झोंक देते थे। जहां विपत्ति थी वहीं दोनों मौजूद थे। कठिन

से कठिन काम जो औरों से न हो सके उसे करने के लिये तैयार रहते थे।

१७ दिसम्बर १९२८ को सांडर्स हत्याकाण्ड हुआ। कहा जाता है कि यह निश्चय किया गया कि भगतसिंह और राजगुरु सांडर्स को मारेंगे और 'आजाद' उनके पार्श्व रक्षक के और से पीछे रहेगा। सांडर्स के मार चुकने के बाद जब वह डी० ए० वी० कालेज के बोर्डिंग हाउस में जा रहा था। तब चन्ननसिंह ने उसका पीछा किया। 'आजाद' ने उसे चेतावनी दी, किन्तु उस पर भी जब वह उसे पकड़ने के लिये आगे बढ़ा तो आजाद ने उसका काम तमाम कर दिया। इसके बाद से ही पंजाब में आजाद की खोज होने लगी। 'आजाद' लाहौर से बड़ी होशियारी से एक साधु का वेश बनाकर चुपके से निकल भागे। सब लोग देखते ही रहे और वह पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर चलते बने।

इसी मास में वायसराय की ट्रेन उलट देने का प्रयत्न किया गया। क्रान्ति के इतिहास में पहले-पहल बिना तार के बम से काम लिया गया। इस योजना में आजाद, यशपाल और एक फरार अभियुक्त का नाम लिया जाता है।

कहा जाता है कि लाहौर के दूसरे षडयंत्र में आजाद ने सरदार भगतसिंह और श्री बटुकेश्वर दत्त को छुड़ाने के लिये षडयंत्र किया था। साथ ही यह भी कहा जाता है कि बहावलपुर के मकान में धड़ाका हो जाने के कारण यह षडयंत्र सफल नहीं हो सका। उस धड़ाके में एक प्रमुख व्यक्ति श्री भगवती चरण की जान चली गई।

दिल्ली षड्यंत्र केस में भी 'आजाद' का नाम लिया जाता है। सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त जब असेम्बली में अपना काम पूरा कर चुके तो कहा जाता है कि आजाद उनके छुड़ाने के लिये नियुक्त किये गये थे। काम पूरा हो चुका था किन्तु आजाद ठीक समय पर न पहुँच सके थे। जब भगतसिंह और दत्त ने देखा कि आजाद नहीं आ सके हैं तो वह दोनों अक्षुण्य भाव से खड़े रहे। भगतसिंह और दत्त के पकड़े जाने से आजाद को ममान्तिक पीड़ा हुई। पर किया क्या जा सकता था। अन्तिम परिणाम को सोच विचार कर ही यह काम किया गया था।

पंजाब गवर्नमेंन्ट ने आपकी गिरफ्तारी के लिये ५,०००) रु० का इनाम निकाला और कहा जाता है कि आपका चित्र प्रत्येक बड़े-बड़े स्टेशन पर चिपकाया गया था। पर सरकार उनको उसके अन्तिम क्षण तक पकड़ न सकी। आजाद के पकड़े जाने का अर्थ फांसी पाना था। पुलिस सर गर्मी से खोज कर रही थी, किन्तु वे कहां थे। इसका किसी को क्या पता था? 'आजाद' इस समय सरकार की निगाह में खटक रहे थे, किन्तु वह लाचार थी, क्या कर सकती थी, वह शेर कभी हाथ ही न आया। उसे सरकार सारी शक्ति लगाकर भी बन्दी न कर सकी, कर कैसे सकती थी वह तो 'आजाद' था और आजादी के साथ रहा।

दल की अवस्था अस्त-व्यस्त हो रही थी। चारों तरफ विपद ही विपद नजर आती थी। आजाद के पुराने साथी सब फाँसी पा चुके थे और फांसी से बचे थे वे जेलों में यन्त्रणा का जीवन व्यतीत कर रहे थे। अपने मित्रों की इस दशा पर

'आजाद' को बड़ा खेद रहता था। इस कारण वे इन दिनों गम्भीर रहने लगे थे। देश में चारों ओर अखबार क्रान्तिकारियों को बुरा बताते थे। कहीं पर भी आशा की एक क्षीण रेखा भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। कैसी भयानक यात्रा थी। युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण की यात्रा के समान यह यात्रा थी। धीरे-धीरे प्राणों से प्यारे चारों पाण्डव मर चुके थे द्रौपदी भी अपना शरीर त्याग कर चुकी थी। पीछे देखो तो बस अपने साथियों की लाशें ही नजर आतीं थीं। जगह-जगह से दल के पैर उखड़ने की दुखद खबरें आतीं थीं। 'आजाद' की तरह मजबूत व्यक्ति ही इन बातों को बरदाश्त कर सकता था। नहीं तो वह कब का पागल हो गया होता।

इन सब गिरफ्तारियों, फांसियों आदि के बाद 'आजाद' करीब-करीब अकेले रह गये थे, आतंकवाद पर से उनका विश्वास उठ गया था। इसलिये वह पुराना जोश जाता रहा। दूसरे दल में कुछ ऐसे लोग शामिल हो गए थे जो अपना नेतृत्व कायम करना चाहते थे। और उसके नेतृत्व को मानने के लिये तैयार न थे। ऐसी हालत में 'आजाद' ने दल से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना ही श्रेयस्कर समझा उसके लिये बड़ी कठिन समस्या थी। एक तरफ घरवालों में मनो-मालिन्य होने की सम्भावना थी, दूसरी ओर फांसी के फंदे का सामना था। आजाद ने देश के नेताओं के सामने अपनी परिस्थित रक्खी। उन्होंने कहा—यह बुरा है, वह बुरा है॥ किन्तु यह नहीं बता सके कि 'आजाद' की तरह ऐसी अजीब परिस्थिति में पड़ा हुआ व्यक्ति क्या करे। आखिर आजाद

ने इस प्रश्न को सुलझा लिया और यह तय किया कि वह भारत के बाहर रूस चला जायगा। पकड़े जाने पर उसको अवश्य फांसी होगी। इसलिए हिन्दुस्तान से बाहर चले जाने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही क्या था? दल को विशेष ढंग पर संगठित काम करने के लिये इलाहाबाद में मीटिंग हुई थी। यह तय होने को थी।

सन् १९३१ की २३ फरवरी की बात है। 'आजाद' एक साथी के साथ इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क (कम्पनी बाग) में बैठे हुए थे। सुबह का समय था वे शायद किसी का इन्तजार कर रहे थे। आजाद के इलाहाबाद जाने का कारण एक व्यक्ति से कुछ रुपये वसूल करना कहा जाता है। उस व्यक्ति से कई बार रुपये मांगे जा चुके थे किन्तु वे महाशय टालमटोल कर रहे थे। रुपयों की तादाद कई हजार थी वह व्यक्ति रोज कहता था कि कल दूँगा, कल दूँगा। इतने में यह घटना हुई।

'आजाद' जब इस प्रकार बैठे हुए थे। एकाएक एक मोटर पार्क में आई, आजाद तथा उसके साथी के पास जहाँ दोनों बैठे बात कर रहे थे, आकर खड़ी हो गई। उस मोटर में से पुलिस सुपरिन्टेंडेन्ट मि० नाट बावर निकले और उन्होंने अपनी पिस्तौल निकालकर आजाद और उसके साथी की ओर तान दी और कहा—"हाथ ऊँचा करो" आजाद ऐसे मौकों के लिये सर्वदा तैयार ही रहते थे, उन्होंने बिजली की तरह शीघ्रता से अपनी भरी हुई पिस्तौल निकाली और [illegible] से गोली चला दी, नाट बावर ने भी गोली चलाई। आजाद की जांघ में गोली लगी, साथ-साथ नाट बावर के हाथ में गोली लगी।

उनके हाथ से अस्त्र छूट गया। हाथ से अस्त्र छूटते ही नाट बावर एक पेड़ की आड़ लेकर खड़े हो गये। उधर आजाद की पिस्तौल बराबर गोलियाँ छोड़ रही थी। गोली के बाद गोली उस पेड़ में लग रहीं थीं। यदि वह पेड़ वहां न होता तो मि० नाट बावर वहीं पर खतम हो गये होते। देखने वालों का कहना है कि आजाद की मारी हुई गोलियाँ जो पेड़ में लगीं थीं वे कुछ ही इंच के दायरे के अन्दर लगी थीं।

इधर आजाद की टांग की हड्डी टूट चुकी थी वे उठ नहीं सकते थे, उधर उनका साथी भाग गया। कहा तो जाता है कि लौट कर इस साथी ने तो यही कहा कि उसने ऐसा आजाद की आज्ञा से ही किया। और यही सज्जन लाहौर के शालिमार बाग में एक शहीद होते हुये साथी को इसी प्रकार छोड़ कर चले गये थे।

कहा जाता है कि आजाद ने उस दिन इलाहाबाद में वीर भद्र तिवारी को देखा था और देख कर ही उन्हें सन्देह हुआ था कि दाल में कुछ काला है। बाद को कुछ क्रान्तिकारियों ने ने वीरभद्र को ही आजाद की मृत्यु के लिये जिम्मेदार समझा तदनुसार एक बार कानपुर के नारियल बाजार में और दूसरी बार उरई में उस पर गोली चलाई गई। ये दोनों गोलीकाण्ड असफल रहे। दूसरे गोलीकाण्ड में कानपुर के श्री रमेशचन्द्र गुप्त को १० साल की सजा हुई।

आजाद की टांग टूट चुकी थी वे भाग नहीं सकते थे। इतने में एक बगल की झाड़ी से पुलिस इन्सपेक्टर ठाकुर विश्वे-श्वर सिंह ने उन पर गोली चलाई। 'आजाद' ने लेटे ही लेटे

गोली का जवाब गोली से दिया। एक गोली कहते हैं कि ठाकुर के जबड़े को भेदती हुई चली गई। थोड़ी देर में आजाद को गोली से चारों तरफ से भून डाला गया। कहा जाता है कि उनकी मृत्यु के बाद भी पुलिसवालों को उसके पास जाने में भय लगता था। पास में जाने की हिम्मत न होती थी। मृत्यु के बाद भी केवल सन्देह के वशीभूत होकर पुलिसवालों ने बन्दूक और तमन्चों के कई फायर किये, तब कहीं वे पास फटक सके।

इस तरह 'आजाद' का अन्त हुआ। आजाद ने अपने वचनों की अन्तिम समय तक रक्षा की उसे साम्राज्यशाही अपनी सारी शक्ति लगाकर भी न पकड़ सकी और जीवित हाथ न आ सका। वह एक सेनापति था और ऐसा वैसा सेनापति नहीं, वह अजेय सेनापति था। आजाद हमारे देश के एक महावीर योद्धा थे वह निर्भय था, उसमें अपूर्व कर्म, शक्ति, महान् त्याग और अदम्य साहस था। वह क्रान्ति युग का अन्तिम सम्राट कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। वह ऐसा था जिससे सरकार सदैव सशंक रही। जबसे उसने रण शयन किया तब से क्रान्तिकारी आन्दोलन एक तरह से ठप्प हो गया। उसका महान् व्यक्तित्व था। उसकी जिन्दगी बहुत सादी थी। विलासिता उसे छू नहीं गई थी। उसने आजीवन तपस्या का जीवन बिताया, क्या यह कठिन-तप उसने अपने स्वार्थ के लिये किया था। वह स्वतन्त्रता का पुजारी था, स्वतन्त्रता की साक्षात्-मूर्ति था और आजीवन स्वतन्त्र रह कर उसने अपना 'आजाद' नाम सार्थक कर दिया। पर उसकी अन्तिम इच्छा पूर्ण न हो सकी, वह अपनी आँखों भारत को स्वतन्त्र देखना चाहता था।

यू० पूंगी विजाया

देश-भक्त साधु श्री पूंगी विजाया एक बौद्ध धर्मनिष्ठ सन्यासी थे। हन्थवाड़ी पुलिस के द्वारा राजद्रोह में पकड़े जाकर जेल में भेज दिये गए। सरकार के विरुद्ध जनता में घृणा और असन्तोष पैदा करने के अपराध में ६ वर्ष की काले पानी की सजा दी गई।

वीर विजाया ने देश के मान पर ही अपने को बलिदान कर दिया। जब वे जेल में थे, जेल के अत्याचारों से पीड़ित होकर उनको विवश होकर अनशन करना पड़ा। उन्होंने बर्मा सरकार से यह मांग पेश की कि कम से कम हमारे धार्मिक त्योंहारों पर जेल के बन्दियों को कुछ आवश्यक सुविधाएँ दी जावें। उन्होंने अच्छे भोजन और वस्त्र मिलने के सम्बन्ध में भी अपनी मांग पेश की। सरकार से कई बार अनुरोध किया कि वह अपनी नीति में परिवर्तन करदे, परन्तु बहुत कहने और सुनने का भी कोई असर न हुआ।

वीर विजाया ने यह निश्चय किया कि सरकार को मांगों को पूर्ण करने के लिये विवश करना होगा। उसने मांगों को पूरी करने के लिये प्राणों की बाजी लगा दी। उसने सरकार के सामने दो मांगें मुख्य तौर पर रक्खीं।

पहली माँग तो यह थी कि पूंगी बन्दियों को उनके धर्मानुसार जेलों में पहिनने को पीले कपड़े दिये जावें। दूसरे धार्मिक सिद्धान्तानुसार उन्हें मास में कम से कम दो दिन उपवास करने का अधिकार दिया जाय। मांगे कितनी सीधी-साधी थीं

सरकार अपनी उदारता का परिचय दे सकती थी। किन्तु बर्मा सरकार ने इन मांगों को स्वीकार करने से साफ इनकार कर दिया। वीर विजाया ने अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहते हुए अनशन प्रारम्भ कर दिया। वह अनशन साढ़े पाँच मास तक लगातार चलता रहा और अन्त में १६४ दिन का अनशन पूरा करके १९ सितम्बर सन् १९२९ को रंगून के सेन्ट्रल जेल में अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। पूंगी विजाया की मृत्यु का संवाद उनके सम्बन्धियों को पता नहीं लगा। अब मृत्यु की खबर सारे रंगून में फैल गई। उस समय उनके सम्बन्धियों को पता लगा वे लोग लाश को लेने आये पर न जाने सरकार ने उनकी लाश को देना उचित न समझा, पर अन्त में उनके परिवार वालों को लाश दे दी गई। बर्मा के सभी समाचार पत्रों ने विजाया के लिए खेद प्रकट किया और सरकार की इस नीति की निन्दा की।

विजाया भारत का एक लाल था, उसने अपने को भारत मां की प्रतिष्ठा की वेदी पर बलिदान कर दिया। बौद्ध सन्यासी होते हुए भी उसने जो कुछ किया वह उसका अपूर्व त्याग था। वह बौद्ध समाज का प्रथम व्यक्ति था जिसने अपने को देश की स्वतन्त्रता की वेदी पर समर्पण कर दिया।

ऊधमसिंह

अपने दृढ़ अध्यवसाय और स्थिर विचारों के द्वारा संसार में कभी-कभी साधारण व्यक्ति भी लोकप्रिय और प्रसिद्ध हो गये हैं। आज हम ऐसे ही एक व्यक्ति का कुछ परिचय पाठकों के सामने रखना चाहते हैं जिसने अपने कार्य के द्वारा सारी दुनियाँ में अपना नाम अमर कर लिया। डायर हत्या करने के अपराधी के रूप में वह संसार के सामने आया, इसके जीवन पर अभी लोगों ने प्रकाश नहीं डाला है परन्तु जो भी सामग्री उपलब्ध है उसी के आधार पर हम पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के लिये थोड़ा सा संक्षेप में निवेदन करते हैं।

भारत के इतिहास में जलियाँनवाला बाग का हत्याकाण्ड प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि जनरल डायर ने जिस निर्दयता से निहत्थे लोगों पर गोली चलवा कर भयंकर कांड किया उससे सारा पंजाब ही नहीं किन्तु समस्त भारत थर्रा उठा। डायर की इस अदूरदर्शिता पूर्ण काय की सभी ने एक स्वर से निन्दा की। किन्तु सरकार ने उसके इतने कांड पर भी उसे कुछ न कहा।

अमृतसर के निकट किसी के रहने वाले ऊधमसिंह के बाप थे। इनकी माता का देहान्त इनकी छोटी ही अवस्था में हो चुका था। इनके पिता शिक्षित और राष्ट्रीय विचारों के थे। पंजाब केशरी लाला लाजपत राय के विचारों का इन पर अच्छा प्रभाव था। जन-जागृति के कार्य में प्रायः इनका विश्वास था और अपने उदार भावों को ये समय-समय पर अपने समुदाय में प्रकट भी करते रहते थे। जलियाँनवाला बाग में जब सभा हो

रही थी इनके बाप भी गए। ऊधमसिंह की अवस्था उस समय ८ या १० वर्ष की थी। यह चौथे या पांचवे दर्जे में पढ़ते थे। ऊधमसिंह घर पर ही रहे। बाद में इनके बाप लौट कर नहीं आये और जलियानवाले बाग में गोली के शिकार हुये। पिता की मृत्यु से इन्हें महान् दुःख हुआ। इनके नजदीकी रिश्तेदारों ने इन्हें समझा बुझाकर रक्खा और इनके पालन-पोषण और शिक्षण का प्रबन्ध किया। यद्यपि विवश होने के कारण कुछ कर न सके तो भी पिता की मृत्यु का इनके हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा। यह बचपन से ही बहादुर, तेज और हठीले स्वभाव के थे। जिस बात पर अड़ जाते उससे हटना जानते ही न थे। इन्ट्रेंस परीक्षा पास करने के बाद इनकी पढ़ने की ओर रुचि नहीं रही। अपने अध्ययन काल में ही पिता के बदला लेने का भाव जागृत हो चुका था। किन्तु डायर उस समय भारत में न था। इंगलैण्ड को जा चुका था। इन्होंने अपने कार्य की सिद्धि के लिये इंगलैण्ड जाने का निश्चय किया किन्तु यह किस तरह से लंदन पहुँचे इसका विशेष वृत्तान्त अभी ज्ञात नहीं हो सका है और न इन्होंने ही किसी से अपने रहस्य को प्रकट किया। इनका नाम तो उस समय सबके सामने आया जब इन्होंने सन् १९४२ में डायर को मार कर अपनी अन्तिम इच्छा पूरी की। यह पूर्ण युवा थे। २० वर्ष की कठिन तपस्या और सतत प्रयत्न के फल रूप में जो कार्य किया उसके कारण संसार ने इन्हें आश्चर्य भरी नजरों से देखा। पार्लियामेन्ट से लौटते समय इन्होंने रिवाल्वर से 'डायर' का काम तमाम कर दिया। पुलिस के द्वारा ये तुरन्त पकड़ लिये गए और इन पर इंगलैण्ड

में लगभग ६ महीने मुकदमा चला। अन्त में इन्हें फाँसी की सजा दे दी गई। इस तरह इस वीर की ऐहिक लीला खतम हुई।

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल

लार्ड कर्जन के बंग-भंग से समस्त बंगाल में क्षोभ की एक लहर फैल गई थी। सभी बंगालियों ने एक स्वर में लार्ड कर्जन के इस कृत्य की निन्दा की। किन्तु पराधीन और असहाय लोगों की कौन सुनता है। विरोध-प्रदर्शन के होते हुए बंग-भंग कर दिया गया। इस कांड से बंगाल का बच्चा-बच्चा क्षुब्ध हो उठा और सक्रिय विरोध करने के लिये बंगाल का युवक हृदय उछलने लगा। आजादी के दीवानों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी और यंत्र, तंत्र अपनी शक्ति और विचार के अनुकूल क्रान्ति का उद्योग करने लगे। इधर इन सब बातों के होते हुये भी ब्रिटिश साम्राज्यशाही अपने निश्चय से तनिक भी न डिगी और सन् १९११ में सम्राट की ओर से देहली भारत की राजधानी घोषित कर दी गई और कलकत्ते का वह वैभव जो अपने सौन्दर्य के कारण दिन पर दिन निखर रहा था, अमा की अंधेरी रात्रि में इन्दु के समान मलिन होने लगा। इस आघात से जो ठेस पहुँची उसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे विद्रोह की अग्नि युवकों के हृदय में सुलगने लगी। दिल्ली का बम-केस इसकी सूचना

मात्र थी। उसमें किसी को आघात पहुँचाने की भावना न थी। केवल शेष प्रदर्शन की दृष्टि से किया गया था। इस केस में अनेक नवयुवक पकड़े गये। इस केस का सारा दोष रास बिहारी घोष तथा एक युवक के सिर मढ़ा गया। अमीरचन्द और अवधबिहारी नामक दो युवकों को फांसी देकर इस कांड का नाटक समाप्त किया गया। किन्तु अभी तक यह बात बहुतों के लिए एक समस्या बनी हुई है कि वास्तव में उसका सच्चा स्वरूप क्या था। रासबिहारी के नाम अनेक वारंट गिरफ्तारी के निकले और हजारों का इनाम उनको पकड़ने के लिये घोषित किया किन्तु वह तो फरार हो चुके थे। किसी तरह भी पुलिस के चंगुल में न आये। भारत की पुलिस ने तथा सरकार की लाड़िली खुफिया पुलिस ने बहुत ही सरतोड़ परिश्रम किया कि रासबिहारी का पता लग जाय किन्तु वह वीर किसी तरह हाथ न आ सका। पुलिस की ओर से सड़कों पर, स्टेशनों पर और अखबारों में उनके बड़े-बड़े चित्र चिपकाये और छपाए गये किन्तु सारे प्रयत्न विफल गये। दिल्ली षडयन्त्र केस के शुरू होने के समय लोगों का और सरकार का ख्याल था कि शायद रासबिहारी, लाला हरदयाल एम० ए० के पास हैं किन्तु हरदयाल जी उस समय अमेरिका में थे। रासबिहारी उस विपत्ति काल में भी सन् १९१५ तक भारत में ही रहे। कहा जाता है कि यों तो रासबिहारी कभी एक स्थान पर नहीं रहे तो भी उनका अधिक निवासी काशी होता था। वहीं से वे निरन्तर संगठन और केन्द्रों की स्थापना का कार्य करते रहे। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल भी उसी समय

काशी में रहते थे। इनका काशी आना किस प्रकार हुआ और कब से यह यहां रहते थे स्मृति गर्भ में है। किन्तु इस नवयुवक में जिसकी आयु उस समय १८ या २० वर्ष की होगी। एक क्रान्ति की ज्वाला विद्यमान थी। अचानक रासबिहारी से मुलाकात हुई और कुछ ही समय में उनके विश्वस्त और प्रिय पात्र बन गये। इनकी कार्य शैली, उत्साह और लगन को देखकर रासबिहारी इनपर पूरा भरोसा करने लगे थे और काशी तथा काशी से बाहर का सारा संगठन का भार इनके ऊपर छोड़ दिया था। वे नायक की भांति सबका सूत्र संचालन कर रहे थे, साथ ही साथ जो पेंचीदा मसले आ जाते थे उनको सुलझाते भी थे किन्तु यह सब कार्य इतनी गुप्त ढंग से होता था कि कानों कान किसी को बहुत समय तक पता ही नहीं चला।

इस बीच में एक घटना और हो गई। एक जहाज जिसका नाम 'कोमा गाता मारू' था भारत से कुछ सिक्ख यात्री अमेरिका के लिये गये, कैनाडा में उनको जहाज से उतरने नहीं दिया गया। इस कारण सिक्खों के हृदय में गहरी चोट लगी। कैनाडा और कैली फोर्निया में रहने वाले सिक्खों को भी अंग्रेजों के इस व्यवहार से बड़ा दुःख हुआ और उनके हृदय भी अपने भाइयों के इस अपमान से तिलमिला उठे। सिक्खों के दल के दल भारत में लौट कर आने लगे। आते हुये रास्ते में उन्होंने जगह-जगह विद्रोह की अग्नि फैलानी शुरू की। सरकार को उनकी गतिविधि का ज्ञान हो गया। और सिक्ख लोग भारत आते-आते गिरफ्तार कर लिये गये और लगभग ३०० के करीब

सिक्ख मुल्तान जेल में भेजकर बन्द कर दिये गये। भारत के विप्लववादी इस अवसर की प्रतीक्षा में थे और सोच रहे थे कि सिक्खों के आते ही हम एक बहुत बड़ा काम कर सकेंगे। उनकी धारणा थी कि फौज में यदि विद्रोह की भावना जागृति हो गई तो क्रान्ति का बहुत बड़ा काम आसान हो सकता है। परन्तु आशा पर तुषारापात हो गया, किन्तु फिर भी कार्य संगठन का चलता ही रहा और श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने इस उद्देश्य से पंजाब की यात्रा की और वहां का संगठन किया और उन्हें आवश्यक सामग्री और साहित्य की सहायता करते रहे। १९१५ ई० में ये काशी षड्यन्त्र-केस में गिरफ्तार हुये और १९१६ में आजन्म काले पानी की तथा सारी सम्पत्ति जब्त होने का दण्ड मिला। सन् १९२० में सम्राट के घोषणा पत्र के कारण छोड़ दिये गये। इन्होंने 'बन्दी जीवन' नामक दो भागों में एक पुस्तक प्रकाशित की उसमें इन्होंने उत्तरीय भारत में 'क्रान्ति' का बड़ा रोचक वर्णन किया है। उस समय की क्रान्ति क्यों विफल हुई इसका भी वर्णन किया है। ये संगठन के बड़े पक्षपाती थे आवेश में आकर किसी काम को कर बैठने के अनुकूल न थे। इनकी धारणा थी कि जो काम किया जाय, वह सफल होना चाहिये। ये अपने जीवन भर संगठन और क्रान्ति के साहित्य की रचना में लगे रहे। इसके फलस्वरूप इन्हें आजीवन कष्ट उठाना पड़ा। आर्थिक संकट तो मानों इनका सहचर बन चुका था। किन्तु वीरपती अपने अटल विश्वास और विचारों से तनिक भी न डिगा। भारत के स्वतन्त्र संग्राम में इन वीरों का बड़ा त्याग और अत्यो-

त्सर्ग है। यद्यपि श्री सान्याल इस समय जीवित नहीं हैं किन्तु उनके आजीवन भगीरथ प्रयत्नों का भावी भारत सुख से सानन्द उपभोग करेगा।

अमर शहीद मणीन्द्रनाथ बनर्जी

इस जीवनी के लेखक श्री सतीशकुमार श्रीवास्तव हैं। श्री सतीश जी अमर शहीद मणीन्द्रनाथ बनर्जी के परिवार से अत्यधिक सम्बन्धित हैं। शहीद मणीन्द्र की माँ श्रीमती सुनयनी देवी अपने बच्चों के साथियों को अपने सगे बच्चों से भी अधिक प्यार करती हैं। माँ हमेशा कहती है कि मैं भारतमाता की आजाद सन्तान की हैसियत से मरना चाहती हूँ। माँ की अन्तिम अभिलाषा भारतमाता को स्वतन्त्र देखने की है।

अमर शहीद मणीन्द्रनाथ बनर्जी का जीवन परिचय जानने के पहिले उनके वंश का परिचय प्राप्त करें। मणीन्द्र के पिता स्वर्गीय ताराचन्द बनर्जी काशी के एक प्रमुख डाक्टर और प्रतिष्ठित कांग्रेस सेवक थे। मणीन्द्र के पितामह स्वर्गीय हरप्रसन्न बनर्जी रिटायर्ड मजिस्ट्रेट थे। मणीन्द्र की माता वीर, प्रसूता श्रीमती सुनयनी देवी अब भी जीवित हैं जो इस समय भी मुल्क की मूक सेवा कर रही हैं। बंगाल को नंगा और भूखा मरता देखकर आज भी आंसू बहाया करती हैं। भारत

को आज ऐसी ही माताओं की आवश्यकता है। मणीन्द्र आठ भाई थे मणीन्द्र की माता ने अपने दूध के साथ-साथ प्रत्येक बच्चे के हृदय में देश-प्रेम, देश-सेवा का पाठ बैठा दिया है, जिसका माता को गर्व है "कि माता ही बच्चों को चाहे तो शेर और चाहे तो गीदड़ बनाए" उन्हीं दिनों अँगरेजों की कूटिनीति बंगाल के टुकड़े-टुकड़े कर रही थी। बंगाल ही नहीं प्रत्येक भारतीय इस विभेदक नीति को अच्छी तरह समझ रहा था। उधर बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन की आग चारों तरफ भड़क रही थी।

माता सुनयनी बंगाल के सरकारी वकील श्री रजनीकान्त बनर्जी की पौत्री होते हुए भी स्वदेशी चीजों को अपनाया। माता ने अपने घर पर आनेवालों के लिये यह नोटिस लगा दी कि "वह व्यक्ति जो स्वदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल नहीं करता उसे अन्दर घुसने की इजाजत नहीं है।" माता की इस आज्ञा को परिवार के हर व्यक्ति ने सिरोधार्य किया, यहां तक कि श्री रजनीकान्त बनर्जी ने पौत्री की आज्ञा मान कर सरकारी वकालत छोड़ दी, और स्वदेशी चीजों का स्तेमाल करने लगे। उस समय से लेकर आज तक माता स्वदेशी ही वस्तुओं का इस्तेमाल करती हैं। सन् २० में जब गांधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ा तो मां ने अपने सबसे बड़े पुत्र श्री प्रभासकुमार बनर्जी को उसमें हिस्सा लेने की आज्ञा दी। सन् ३२ में तो उन्होंने अपने दूसरे पुत्र श्री अमियकुमार बनर्जी को भी सत्याग्रह करने के लिए बाध्य किया। सन् ४२ में माँ के चारों लड़के पकड़ लिये गये। लेखक को भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है, माँ के दो लड़के श्री

मोहितकुमार बनर्जी और श्री बसंतकुमार बनर्जी के साथ रहने का। १० सितम्बर सन् ४२ की बात है, मोहितकुमार और मैं अन्य दो राजनैतिक कैदियों के साथ फतेहगढ़ जेल भेजे जा रहे थे। माँ को हमारे तबादले की खबर पाँच बजे लगी। हमारी गाड़ी सात बजे जाती थी, माँ दौड़ी हुई आई, हम लोगों को देखकर कहने लगी बेटा! मेरी फिकर मत करना तुम लोग भारतमाता की संतान हो, जाओ घबड़ाना मत, देखना चेहरे पर सिकन न आने पावें।

इसी माँ ने भारत के महान क्रान्तिकारी अमर शहीद श्री मणीन्द्रनाथ को जन्म दिया है। जो १६३४ के २० जून के दिन फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल के एक अज्ञात कोने में क्रान्ति का एक महान् पुजारी उठ गया। वह महान् इस अर्थ में नहीं था कि वह यशस्वी था, बल्कि इस अर्थ में था कि उसकी कुर्बानी महान् थी। १६२७ में काकोरी षडयंत्र के सिलसिले में चार होनहार नौजवानों को—सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह और अशफाकउल्ला को—फांसी हो गई। इनमें से श्री राजेन्द्र लाहिड़ी काशी के थे, और एक क्रान्तिकारी की हैसियत से श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी ने उनके आधीन काम किया था। इस कारण जब राजेन्द्र बाबू को फांसी हुई तो मणीन्द्र के दिल को बहुत भारी ठेस लगी। मणीन्द्र ने सोचा कि इस प्रकार सजा देकर सरकार ने भारत के नौजवानों को चुनौती दी है, और इस प्रकार नौजवानों से यह कहा गया है कि वे क्रान्तिकारी मार्ग को न अपनावें। इस कारण मणीन्द्र ने चुनौती स्वीकार कर ली। अपने तमंचे में केवल दो कारतूस लेकर उन्होंने जनवरी

१९२८ को काशी के मारवाड़ी अस्पताल के सामने तत्कालीन डी० एस० पी० जितेन्द्र बनर्जी पर हमला कर दिया। वे समझते थे कि यही व्यक्ति फाँसियों के लिए जिम्मेदार है। उन्होंने बहुत पास से गोली चलाई। गोली पेड़ू में घुस गई। तीन दिन तक तो जितेन्द्र बनर्जी का इतना बुरा हाल था कि समझा जाता था कि वह नहीं जियेंगे; पर अन्त में वह बच गये! मणीन्द्र को दस साल की सजा हो गई; यद्यपि जिस तमंचे से उन्होंने गोली चलाई थी उसे पुलिस बरामद न कर सकी।

मणीन्द्र पर जेल में बहुत तरह के अत्याचार किये गये उन्हें इस बात के लिए विवश किया जाने लगा कि वे अपने साथियों के नाम पुलिस को बता दें। पर सब व्यर्थ रहा। वे सेन्ट्रल जेल फतेहगढ़ भेजे गए, जहां उनके जीवन के शेष दिन व्यतीत हुए। यहां इनको जेल अधिकारियों के साथ बड़ी से बड़ी लड़ाई अकेले लड़नी पड़ी, जिसके फलस्वरूप उनको बार-बार बेड़ी और कालकोठरी की सजा दी गई तथा उन्हें मारा-पीटा भी गया। १९३४ में स्वयं 'बी' श्रेणी के होते हुए भी उन्होंने 'सी' श्रेणी वालों के लिये एक आमरण अनशन किया। उनका कहना था कि राजनैतिक कैदियों की कोई क्लास न हो। उनका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ तो था ही, इस बार के अनशन के फलस्वरूप उनका देहान्त हो गया! उनके साथ इस अवसर पर अनशन करने वालों में काकोरी केस से श्री मन्मथनाथ गुप्त तथा श्री यशपाल का नाम उल्लेखनीय है। मणीन्द्र के अंतिम समय श्री मन्मथनाथ गुप्त उनके पास थे। कहा जाता है कि वह मृत्यु के दो दिन पहले भी अपनी प्रिय माता से एक बार मिलने की इच्छा रखते

थे, किन्तु ऐसे समय उनकी माता जी को बुलाया गया जब कि मणीन्द्र केवल जेल के ही नहीं बल्कि अंग्रेजी हुकूमत के बन्धनों से दूर—बहुत दूर चले गये थे।

तो इस प्रकार मणीन्द्र बनर्जी जिये और इस प्रकार मरे। वह इस प्रकार मरे कि बहुत दिनों तक उनकी मृत्यु उनके देशवासियों के निकट अज्ञात रही।

मणीन्द्र के पिता स्व० डाक्टर ताराचरण बनर्जी काशी के एक प्रमुख डाक्टर और प्रतिष्ठित कांग्रेस सेवक थे। पितामह स्व० बाबू हरप्रसन्न बनर्जी युक्त प्रान्त के एक रिटायर्ड मजिस्ट्रेट थे। मणीन्द्र के दिल में देशसेवा की भावना भरने तथा उन्हें देश पर सब कुछ कुर्बान करने का पाठ उनकी वीर माता श्रीमती सुनयनी देवी ने पढ़ाया था। मणीन्द्र मर गये, किन्तु उनके भाई उनकी क्रान्तिकारी परम्परा को कायम रक्खे हुए जीवित हैं। मणीन्द्र आठ भाई थे, सबसे बड़े श्री जीवनधन बाबू घर की देख-भाल करते थे, जिनकी मृत्यु सन् ४४ में हो गई। मझले भाई प्रभासचन्द्र बनर्जी तो कई बार क्रान्तिकारी अभियोग में पकड़े गये। लोथियन कमीशन पर हमला करने के षडयन्त्र में तथा लाहौर केस के मुखबिर फणीघोष की हत्या करने के सम्बन्ध में भी आपको कई वर्ष तक जेल में रहना पड़ा। छोटा भाई श्री फणीन्द्रनाथ बनर्जी तथा उनकी पत्नी सुरमा देवी भी असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में कई वर्ष तक जेल में रह चुकी हैं। श्री अमिय-कुमार बनर्जी भी कई बार जेल जा चुके हैं। सन् ४२ में भी उन्हें कई वर्ष जेल में रहना पड़ा। एक भाई स्व० श्री भूपेन्द्रनाथ बनर्जी असहयोग आन्दोलन

में पकड़े गए थे। गांधी आश्रम के श्री विचित्रनारायण शर्मा वगैरह के साथ आप मेरठ जेल में थे। जेल से भग्न स्वास्थ्य लेकर निकलने के एक महीना बाद ही आपका देहान्त हो गया! सबसे छोटे दो भाई श्री मोहित बनर्जी तथा श्री बसन्त बनर्जी को तो अग्रगामी दल का सदस्य करार देकर सरकार ने सन् ४२ के अगस्त के पूर्व ही से फतेहगढ़ जेल में बन्द रखा था। करीब चार वर्ष तक वे दोनों बन्द रहे। मणीन्द्र के सबसे बड़े बहनोई काशी के प्रमुख कांग्रेसी नेता श्री तारापद भट्टाचार्य भी कई बार जेल जा चुके हैं।

जब भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास लिखा जायगा। उस समय मणीन्द्र तथा उनके भाइयों का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

तरुण शहीद राजनारायण मिश्र

हमारे देश की क्रान्तिकारी परम्परा हमारे उन तरुणों के गरम लोहू की लकीर से बनी है जो अपनी सारी महत्वाकांक्षाओं के अरमानों और सम्भावनाओं को जलती आग की भट्ठी में झोंक, अपना सब कुछ बलिदान कर, 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' के नारे देते

हुये परलोक सिधारे। वे तो चले गये परन्तु अपने पीछे वह खूनी इतिहास छोड़कर गये जो परतन्त्र राष्ट्र के तरुणों की धमनियों में उष्ण रक्त का संचार करता रहता है। उनकी स्मृतियाँ उनके कारनामें, उनका आदर्श—हमारे पथ की चिर प्रज्वलित आलोक शिखा है, वह हमारा पथ निर्देशन करती है। वह हमें उत्साहित करती है। वह हमारे बलिदानों का प्रतीक और सफलता की गारन्टी है।

कामरेड राज नारायण, खुदीराम और कन्हाईलाल, 'आजाद' और भगतसिंह की परिपाटी पर चलने वाले तरुण थे। वे जब तक जिये देश के लिये और मरे तो देश की मान मर्यादा की रक्षा में फाँसी की रस्सी को चूमकर। मरने के पहिले ८ पौंड वजन का बढ़ना इस बात का प्रमाण था कि वे मृत्यु प्रिया से गल बहियाँ डालने के लिए कितने उत्सुक थे।

जीवन अनन्त, जीवन अनादि,
जीवन अशय, जीवन गतिमय;
इसलिए अभय तरुणों का दल,
करता जीवन का क्रय-विक्रय;

× × ×

विह्वल तरुणों का मृत्यु प्रिया
से सहज समागम, प्रिय परिणय;
अन्याय, अनय पर नय की जय,
निर्भय, निःसंशय, दृढ़ निश्चय !

सामाजिक शासन व्यवस्था पर अटूट विश्वास, जनता राज कायम करने की उत्कट अभिलाषा, गुलामी से देश को मुक्त करने की असह्य बेताबी, जवानी का नशा, खुद्दारी और सरफरोशी का जनून—दीवानगी और पल्ले दर्जे की दीवानगी—राजनारायण के व्यक्तित्व की यही पहचान थी।

सम्वत् १६७६ में बसंत पंचमी के दिन गरीब कनौजिया ब्राह्मण पं० बल्देवप्रसाद मिश्र के शिशु राजनारायण का जन्म श्रीमती तुलसी देवी के गोद में हुआ राजनारायण के चार भाई और दो बहिनें थीं। माता निर्भीकता, बहादुरी और स्नेह की प्रतिमा थीं। अन्याय सहन करना उन्होंने नहीं सीखा था। राजनारायण के बड़े भाई को गांव के किसी बदमाश ने मार दिया। माँ का कलेजा न माना। प्रतिज्ञा की जब तक उस बदमाश को दण्ड न देखूँगी, अन्न जल नहीं ग्रहण करूँगी। संध्या होते-होते उस बदमाश की अच्छी तरह खबर लेकर उन्होंने अन्न ग्रहण किया। डाकुओं को मार भगाना उनके लिये मामूली बात थी।

सन् १६२१ के असहयोग आन्दोलन में वे अपनी लड़की को साथ लेकर जेल भी गई थीं। देशभक्ति, आत्माभिमान और वत्सलता की प्रतिमूर्ति माँ की कोख में जन्म लेने वाला शिशु माँ की दूध से बगावत और क्रान्ति की शिक्षा को लेकर आया था। इसलिये बड़े होने पर उसका पूरा क्रान्तिकारी रूप निखरा।

पिता गरीब और सज्जन व्यक्ति थे। किसी प्रकार चार साल गाँव की पढ़ाई समाप्त हुई। सात साल की उम्र में प्राइमरी में राजनारायण भेजा गया। उस समय १६३० का सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन जोरों से चल रहा था। बालक राज-

नारायण को आन्दोलन सम्बन्धी चर्चा सुनने में आनन्द आता था।

राजनारायण के गाँव भीषमपुर में एक आदमी रहता था। वह इन्ट्रेंस तक पढ़ा हुआ था। राजनारायण ने उससे क्रान्तिकारी नवयुवकों की लोम हर्षक कहानियाँ सुनीं। इस व्यक्ति को ६ मास का दण्ड भी मिला था और उसके ऊपर एक बम-केस भी चला था। इस बालक राजनारायण पर बहुत असर पड़ा।

उसी समय से राजनारायण ने बानर सेना का संगठन किया। सेना में ४० बानर थे। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना कपड़ों की होली जलाना, सामूहिक रूप से राष्ट्रीय गाने गाना, जुलूस निकालना, आदि इन बानरों का काम था। राजनारायण इनमें सबसे तेज बानर था क्योंकि वही इस बानरी सेना का नेता था।

मार्च १६३१ में सरदार भगतसिंह को फाँसी हुई। सारे देश में तहलका मच गया। राष्ट्र कराह उठा, देश की तरुणाई झुलस उठी। अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार सहस्रों व्यक्तियों ने प्रतिहिंसा और देशसेवा का व्रत लिया। राजनारायण कैसे पीछे रहता। उसने शपथ ली, "जब तक देह में प्राण है, ब्रिटिश हुकूमत की एक एक ईंट उखाड़ डालूँगा। चाहे इस प्रयास में फांसी की रस्सी ही क्यों न गले लगानी पड़े, उसका हृदय से स्वागत करूँगा।"

और राजनारायण का प्रण पूरा हुआ। फाँसी की रस्सी को उसने चूमा। हुकूमत की चालें हिला दीं। नौकरशाही को

मजबूत इमारत भी लड़खड़ा रही है। वह अब गिरे की तब, केवल कुछ राजनारायणों की और जरूरत है !

अब राजनारायण बड़ा हो चला था। किशोरावस्था के पहिले दिन थे। वह सीतापुर से तीन मील दूर सिकन्दराबाद नामक मिडिल स्कूल में पढ़ रहा था। वहीं एक मित्र से जान पहिचान हो गई। वह अभिन्न हो गया। दोनों एक दूसरे के जीवन-मरण के साथी बने, हाँ, जीवन और मरण के। क्रान्तिकारियों की जीवनी बगावत का प्रोग्राम यही उनकी बातचीत के विषय थे। १९२६ ई० में राजनारायण ने मिडिल पास किया।

अब आगे पढ़ाई सम्भव न थी। गरीबी और बेबसी ने राजनारायण को आगे शिक्षा प्राप्त करने से रोक दिया। साल भर मुनीमी सीखी, उसमें मन नहीं लगा तो छोड़ कर भाग आया। अब राजनारायण की अवस्था १६ वर्ष की थी। एक मास्टर साहब की सहायता से अँग्रेजी स्कूल में भर्ती हुये और पढ़ने लगे। फीस माफ थी। मास्टर साहब देश भक्त थे और वह राजनारायण की प्रतिभा और देशभक्ति के कायल थे। राजनारायण अपने गाँव के मित्र के साथ ही अँग्रेजी स्कूल में पढ़ने लगे।

सन् १९३७ में सीतापुर में प्रान्तीय नवयुवक संघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ। पहिली बार तरुण राजनारायण को प्रान्त के क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं के साथ रहने और मिलने जुलने का अवसर मिला। वहां राजनारायण को बड़ी निराशा हुई। ये तथा कथित क्रान्तिकारी उस समय कुछ भी करने के

लिये तैयार न थे। किसी ने राजनारायण को रास्ता नहीं सुझाया था।

वापस लौट कर राजनारायण ने अपने साथ के पढ़नेवाले तरुणों से मिलकर एक पार्टी बनाई। पार्टी का नाम "मातृवेदी" था। उसके १४ नियम थे और ३ प्रतिज्ञायें थीं। इन लोगों के पास उस समय तक कोई हथियार न था। खरीदने की कोशिश की परन्तु मिल न सकी।

कुछ दिनों बाद एक धनी के लड़के से झगड़ा होने के कारण राजनारायण को स्कूल से निकाल दिया गया। दूसरे स्कूल में नाम लिखा कर राज नारायण आठवीं परीक्षा पास की।

गर्मियों की छुट्टियों में राजनारायण और उसके साथियों ने किसानों में काम करना और काँग्रेस का मेम्बर बनाना शुरू किया छुट्टी खतम होने पर लखीमपुर में धर्म सभा हाई स्कूल में नाम लिखाया। जिले में एक बम पार्टी थी।

सन् ३० के आन्दोलन में जिले के पुलिस कप्तान ने जिले में बड़ा जुल्म किया था। उन्हीं के मारने के लिये इस पार्टी ने बम बनाया था। बम बनाते समय एक बम फट गया जिससे एक आदमी के हाथ की उंगलियाँ उड़ गई। इन्हीं महाशय से राज-नारायण की जान पहिचान हुई। राजनारायण ने उनसे भी बम बनाने की तरकीब पूछी थी। इसी जमाने में राजनारायण को कहीं से एक पिस्तौल मिल गई। पार्टी के लिये रुपयों की जरूरत थी। राजनारायण की पारवारिक दशा भी बहुत खराब हो गई थी। सब दानेदाने को मोहताज थे। यद्यपि राजनारायण ने यह प्रण किया था कि व्यक्तिगत वालों के लिए

वह पिस्तौल का प्रयोग कभी न करेंगे, फिर भी एक बार वे विचलित हो गए मगर अपनी स्त्री के मना करने पर वह मान गये।

कुछ दिनों बाद गांव में नव जवानों का अच्छा संगठन हो गया और सभी इस बात की राह देखने लगे कि अगला प्रोग्राम कब और कैसे शुरू होगा। उसी समय राजनारायण ने अपने एक रिश्तेदार सरकारी नौकर की पिस्तौल गायब की। बाद में पुलिस में रिपोर्ट हुई और लगभग बारह घरों में तलाशी हुई। इस समय राजनारायण ने यह उत्कर्ष समझा कि चुपचाप किसी बहाने जेल खिसक जाना चाहिये। १६ जनवरी को राजनारायण को एक स्पीच देने के कारण साल भर की सजा हो गई। पिस्तौल बरामद न होने के कारण कोई केस न चल सका।

राजनारायण जेल से छूटे तो देखा कि उनके सबसे बड़े भाई का देहान्त हो चुका था। कुछ दिनों बाद उनके पिता का भी देहान्त पुत्र-शोक में हो गया। अब घर गृहस्थी आखिरी सहारा भी खतम हो गया। सन् ४२ की गर्मी में हिन्दुस्तान की राजनीति भी बहुत गर्म हो गई थी। राजनारायण ने अपने को इस जलती भट्ठी में झोंक दिया। यद्यपि प्रसिद्ध देशभक्त नेताओं ने कोई मदद नहीं की फिर भी राजनारायण और उनके साथियों ने खुले विद्रोह की तैयारी की। पूरे जिले पर कब्जा करने का प्रोग्राम बना। हथियार इकट्ठा करने का काम राजनारायण को मिला। राजनारायण की स्त्री वीरांगना तरुणी थी। राजनारायण के प्रत्येक प्रोग्राम का उसको पता था, फिर

भी उसने कभी भी राजनारायण के मार्ग में रोड़े नहीं अटका ये। जब खतरा बहुत बढ़ गया तो राजनारायण ने अपनी सहचरी से पूछा कि उसे औरों की तरह चुपचाप जेल चला जाना चाहिये या देश की पुकार और समय की आवश्यकता के अनुसार कार्य करना चाहिये। राजनारायण ने यह भी बताया कि जो कुछ वह करने जा रहे हैं उसकी सजा में फांसी भी हो सकती है। उस देवी ने यही उत्तर दिया, "मैं आपको खोने के लिये तैयार हूँ। मेरा सौभाग्य लुट जाय, इसकी मुझे चिन्ता नहीं, मगर आप देश की पुकार को अनसुनी न करें।"

राजनारायण को इससे बल प्राप्त हुआ। सावन का महीना था। बदराया आसमान और हरियाली जमीन—रस, उल्लास और उन्माद का वतावरण था। ऐसे ही अवसर पर तो वियोग की पीड़ा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है, फिर भी उस कुल लक्ष्मी ने राजनारायण को अक्षत-रोड़ी लगा कर आरती उतार कर बिदा किया।

१४ अगस्त को राजनारायण अपने आठ साथियों के साथ घर से निकले। जेब में रिवाल्वर थी और सीने में आजादी की लगन थी। चलते समय उस स्त्री ने फिर कहा था, "पीठ मत दिखाना। हमारी यही अन्तिम इच्छा है।"

इस दल को हथियार बटोरने का काम मिला था। चार घन्टे में इन लोगों ने चार बन्दूकें इकट्ठा कर ली। न कोई झगड़ा हुआ और न कोई घटना घटी। राजनारायण के गांव में रियासत महमूदाबाद की एक तहसील थी जिसमें एक जिलेदार बीस सिपाहियों के साथ रहता था। वहां पर एक बन्दूक

थी। इस दल ने निश्चय किया कि तहसील पर कब्जा कर लेना चाहिये। पानी बरस रहा था। चारों ओर अँधियारी छाई हुई थी। जिलेदार आरामगाह में लेटा हुआ था। एक साथी चुपके से अन्दर घुस गया। सात बाहर खड़े रहे। वह साथी जिलेदार को पकड़े हुये बाहर निकला। उसकी बन्दूक की नली बाहर निकली हुई थी। राजनारायण और उनके साथियों ने समझा स्वयं जिलेदार बन्दूक ले कर आया है। फौरन ही भरी हुई बन्दूक से गोली निकल कर जिलेदार की छाती में घुस गई। जिलेदार वहीं धराशायी हो गया। उसको जमीन पर गिरते देख राजनारायण के साथी चम्पत हो गये। राजनारायण अकेले रह गये। फिर भी हिम्मत कर के वह भीतर गये। तमाम कागजों में आग लगाई और बन्दूक उठा कर चम्पत हो गये।

उधर राजनारायण के बड़े भाई एक भीड़ के साथ स्टेशन गये। वहाँ आग लगाई। नहर की कोठी जलाई और पटरी उखाड़ी। उस जलूस से पुलिस की लारी की मुठभेड़ हो गई जिसमें तीन आदमी मारे गये। चारों ओर तहलका मच गया। जिधर यह दल जाता लोग चिल्लाने लगते, 'डाकू आये, भागो भागो।'

कई दिनों तक इधर-उधर घूमने के बाद राजनारायण मजबूर होकर दिल्ली चले गये। कुछ दिनों बाद राजनारायण जब वापस आये तो देखा पुराना कप्तान निकाल दिया गया है और उसके स्थान पर नया अंग्रेज कप्तान आया है। इन्सपेक्टर जनरल स्वयं मौजूद था। फौरन ही उन्होंने राजनारायण

के गांव को फुँकवाना शुरू कर दिया। सोलह मकान खोद कर जमीन से मिला दिये गये। राजनारायण का मकान भी जमींदोज हो गया। गोली से उड़ा देने का आर्डर भी हुआ था। राजनारायण को गिरफ्तार करने के लिये चार सौ रुपये की घोषणा की गई। मारपीट, गाली-गलौज का दौर-दौरा था। औरतों के गर्भ से बच्चे तक गिराये गये। गांव पर फौजी शासन कायम हो गया। स्पेशल कोर्ट ने दस आदमियों को अड़तीस-अड़तीस साल की सजा दी। साल भर तक गांव में आर्म पुलिस का पहरा रहा। सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में राजनारायण भागकर नागपुर चले गये। वहां दफा १२९ में गिरफ्तार होकर जेल में रहे और दो महीने बाद छूट कर बाहर आ गये। वहां से दिल्ली आये। दिल्ली से मिदनापुर पहुँचे, लेकिन भण्डाफोड़ होने के डर की वजह से दिल्ली चले आये। उन्हीं दिनों गांधी जी का अनशन चल रहा था। राजनारायण सरकार विरोधी हड़ताल और जलूस निकलवाने लगे। दफा १८८ में राजनारायण को छः महीने की सजा भी हुई। छूटने पर राजनारायण बम्बई पहुँचे। वहां पर अनेकों फरार कार्य-कर्त्ता जमा थे, लेकिन वहां काम कुछ न होता था। केवल कागजी घोड़े दौड़ाये जाते थे। उस कागजी घुड़दौड़ में राज-नारायण को कोई आकर्षण न मिला। राजनारायण वहां से भी चल दिये। चारों ओर से निराश और परेशान होने के कारण राजनारायण ने सोचा कि वह साधू हो जाय। इसी फिराक में हरिद्वार, ऋषीकेश और बनारस घूमे। घूमते-घूमते वह मेरठ पहुँचे। वहां एक सज्जन ने खद्दर भण्डार में

कुछ काम दिलाने का वादा किया। उन्होंने कहा कि वे दस साल तक जेल में रह चुके हैं। राजनरायण ने उनके ऊपर विश्वास करके उन्हें अपना पूरा परिचय बता दिया। एक दिन जब राजनारायण अपने उन्हीं मित्र के साथ एक महाशय के मकान पर जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि तीन खद्दर पोश उनका पीछा कर रहे हैं। इन लोगों ने थोड़ी दूर चलने पर पीछे से हमला करके राज-नारायण को गिरफ्तार कर लिया।

राजनारायण को तरह-तरह की यातनाएं दी गई। तीन दिन तक सोने नहीं दिया गया। पीठ पर बर्फ की सिल्लियां बांधी, गुदा स्थान में मिर्च ठूँस दिया। मार-पीट तो सहज बात थी। लगातार बारह दिन तक यही व्यौहार होता रहा, लेकिन अधिकारी राजनारायण से कुछ भी पता नहीं लगा सके। दो महीने बाद केस चला। २७ जून को राजनारायण को फांसी की सजा दी गई। फांसी की सजा सुनकर राज नारायण ने 'इन्कलाब' के नारे लगाए, लेकिन दो सौ दर्शकों में से एक ने भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। रोती, बिलबिलाती स्त्री, भाभी, बहिन, बहनोई को पीछे छोड़ राजनारायण फांसी के कोठरी में चले गए। वहां से राजनारायण का तबादला लखनऊ जेल में हो गया जहाँ पर दो महीने बाद उन्हें फांसी दे दी गई।

इस प्रकार क्रान्ति के रक्त प्रज्वलित प्रदीप को नौकरशाही के क्रूर झोंकों ने सदा सर्वदा के लिए बुझा दिया, लेकिन क्रान्ति की दीप शिखा का निर्गुण नहीं होता। एक शिखा बुझने के पहिले दूसरी शिखा को प्रज्वलित कर देती है। दीप शिखाओं का यही प्रज्वलित निर्माल्य रणचण्डी के गले का हार है।

यहां ज्योति राशियाँ आजादी की राह पर चलने वाले काफिलों का मार्ग प्रदर्शन करती हैं।

यद्यपि मंजिल अभी दूर है, फिर भी साथी राजनारायण जैसे अनगिनित तरुण शहीदों का बलिदान भारतीय मानवता को अबोध गति से बढ़ते जाने के लिए प्रेरित और अनुप्राणित कर रहा है। माता के लाल! हम जब कभी भी अपनी विजय के बाद ब्रिटिश हुकूमत के प्रतिनिधियों से समझौते की बात-चीत करें, तुम्हारी तड़पती हुई लाश हमारी आँखों में नाचती रहे, यही कामना है।

हमारे अमर "शहीदों की टोली" हिन्दुस्तान की संघर्षालु आत्माओं की राम कहानी है जिसके एक-एक अक्षर गरम लोहू की बूंदों से लिखे गये हैं। हमारी कौम का यह गाढ़ा लोहू निष्फल न जायेगा!